



प्रेम की अद्भुत शक्ति

जीने की कला



स्वामी जगदात्मानन्द



जीने की कला

स्वामी जगदात्मानन्द

अनुवादक
रामकुमार गौड़



अद्वैत आश्रम

(प्रकाशन विभाग)

५ डिही एण्टाली रोड • कोलकाता ७०००१४

प्रकाशक

स्वामी तत्त्वविदानन्द

अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम

मायावती, चम्पावत, उत्तराखण्ड, हिमालय

कोलकाता स्थित प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित

Email: mail@advaitaashrama.org

Website: www.advaitaashrama.org

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण, नवम्बर २००४

तेरहवाँ पुनर्मुद्रण, अप्रैल २०१६

3M3C

ISBN 978-81-7505-264-2

मुद्रक

ट्रायो प्रोसेस

कोलकाता ७०० ०१४

प्रकाशकीय

सभी लोग जन्म लेते हैं और जीवन-यात्रा का निर्वाह करते हैं, परन्तु सबका जीवन सफल और सार्थक नहीं कहा जा सकता। जीने की कला के अभाव में व्यक्ति सब कुछ होते हुए भी सुख-शान्ति और परमार्थ का लाभ नहीं कर पाता।

जीने की कला से सम्बन्धित मूलभूत बातों को सहज रूप से प्रस्तुत करने हेतु रामकृष्ण संघ के एक विद्वान संन्यासी स्वामी जगदात्मानन्द जी ने कन्नड़ भाषा में दो भागों में एक पुस्तक लिखी थी, जो विगत अनेक वर्षों से अतीव लोकप्रिय रही। हाल ही में उसका अंग्रेजी अनुवाद भी 'Learn to Live' नाम से चेन्नै स्थित रामकृष्ण मठ द्वारा प्रकाशित किया गया है।

उक्त पुस्तक का पहला भाग 'जीना सीखो' के नाम से हम पहले ही प्रकाशित कर चुके हैं। उसका दूसरा भाग वाराणसी के श्री रामकुमार गौड़ द्वारा हिन्दी में अनूदित तथा रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, के स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा सम्पादित होकर 'विवेक-ज्योति' मासिक के सितम्बर २००१ से सितम्बर २००४ ई. के ३७ अंकों में 'जीने की कला' शीर्षक के साथ धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। इस लेखमाला की अति

लोकप्रियता को देखते हुए, अब हम इसे पुस्तकाकार में प्रस्तुत कर रहे हैं। पुस्तक का नामकरण तथा पुनः सम्पादन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। उनके हम विशेष आभारी हैं। श्रीमती मधु दर ने इसके प्रूफ-शोधन आदि में विशेष सहायता की है। इनके भी हम आभारी हैं।

आशा है नयी पीढ़ी के युवकों, विशेषकर छात्रों के मार्गदर्शन में यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

१ नवम्बर, २००४ ई.

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

भूमिका	१५
समर्पण	२९
अध्याय १ : छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	३१
चिन्तामुक्त रहो	३३
चिन्ता का फन्दा	३३
तनाव का बोझ	३४
मौन-व्यथा	३५
तनाव से संकट	३६
अलसर चिन्ता का फल है	३७
मन और देह दोनों का ही ध्यान रखो	३८
मन में उद्भव	३९
नरक का द्वार	४१
काटो नहीं, फुफकारो	४४
यमराज के मन में दया नहीं है	४८
दुःख और मृत्यु	४९

दुःख के विषय में हमारी प्रतिक्रिया	५१
अटल, अपरिहार्य	५२
प्रिय भिक्षुओ	५४
जब ज्ञानालोक का उदय होता है...	५५
नेताओं की अज्ञानता	५६
इसका उत्तर यहाँ है	५७
मन की अथाह शक्ति	५८
कालजयी सरल उपचार	६०
मन की शक्ति : एक महान सम्पदा	६२
सच्चा धर्म और मन	६५
मन का टॉनिक	६७
विश्वास से सफलता	७१
विश्वास भय को खा जाता है	७२
भय का भण्डार	७४
भय : एक रक्तपिपासु दैत्य...	७४
भय के परिणाम	७५
भय के विभिन्न प्रकार	७६
भय तथा आतंक के प्रभाव	७८
चिन्ता का मकड़जाल	७९
भय : एक चुनौती	८१
ईश्वर का भय	८२
भयग्रस्त देबू	८४
भय का मूल	८५
संजय पिन निगल गया	८६
काल्पनिक भय	८७
तनुजा का भय	८८
सदमे द्वारा तबाही	९०

जटिल स्वभाव के माता-पिता	९२
नया क्षितिज	९४
मनश्चित्र	९४
निर्भय विजेता भय का घास बना	९५
भैरव के साथ निर्भय वार्तालाप	९७
हतबुद्धि प्रेतात्माएँ	९९
डटकर सामना करो	१००
भय को प्रश्रय न दो	१०१
भगवत्कृपा से रक्षा	१०२
भालू से सामना	१०४
अभ्यास से भय का नाश करो	१०५
कठिन परिस्थितियों का खरल	१०७
एक अन्य घटना	११०
धन से सुख-शान्ति नहीं मिलती	११२
संशय का विष	११४
मैं क्या करूँ?	११७
अभी आरम्भ कर दो	११८
निरन्तर दुःख	१२०
सुख की मृग-मरीचिका	१२१
आर्थिक समस्याएँ	१२३
सफलता का रहस्य	१२८
आपसी सम्बन्ध जोड़ना	१३३
सबके संरक्षक	१३८
कर्तव्य-पालन : आध्यात्मिक जीवन का चरमबिन्दु	१३९
एक पवित्र स्मृति	१४२
संसार कराह रहा है !	१४४
श्रद्धा या विश्वास ही दवा है	१४५

वैज्ञानिकों का समर्थन	१४८
नेताओं का दृष्टिकोण	१५०
जड़ पर कुठाराघात	१५४
अन्धविश्वास?	१५५
परम तत्त्व	१५७
सभ्यता की बर्बरता	१५७
कैसा अधःपतन !	१६०
ज्ञान का स्वर	१६२
विश्वास की स्थापना	१६४
राष्ट्र के समक्ष आदर्श	१६६
शक्ति-परीक्षण	१६७
चिन्ताएँ मिटें, हृदय और मन खिलें	१६८

अध्याय २ : प्रेम की अद्भुत शक्ति	१६९
प्रेम का आकर्षण	१७१
समर्पण में ही जीत है	१७२
रहस्य क्या है?	१७३
रूपान्तरण का अग्रदूत	१७४
प्रेम का स्वरूप	१७६
तुम्हारा आदर्श	१७८
प्रेम की विजय	१७९
सेवा की भावना	१८१
आत्मीयता की सीमाएँ	१८२
प्रेम की दुर्लभता	१८४
प्रेम की शक्ति	१८७
प्रेम का स्पन्दन	१८७
वैज्ञानिकों का अज्ञान	१८८

प्रेम का जादू	१८९
निःस्वार्थता की कसौटी	१९१
माँ का भावुकतापूर्ण प्रेम	१९३
प्रेम : पारिवारिक जीवन का प्राण	१९४
दिव्य प्रेम का खजाना	१९७
मातृत्व का सर्वोच्च आदर्श	१९९
करुणा का सागर	१९९
प्रेम ही परम आनन्द है	२०४
आधुनिकता की तड़क-भड़क	२०५
विज्ञान का दुरुपयोग	२०७
हिंसा का दानव	२०९
विज्ञान का भयावह चेहरा	२१०
विनष्ट नैतिक मर्यादाएँ	२१३
भौतिकता हमें कहाँ ले जाएगी?	२१६
स्वेच्छाचारिता की उपासना	२१८
आधुनिकतावादियों का विचार	२२०
इतिहास की शिक्षाएँ	२२१
नैतिक उत्साह	२२३
सुस्पष्ट विरोधाभास	२२७
पुरातन ढूँठ पर नयी कोपलें	२२९
आध्यात्मिकता : प्रेम का स्रोत	२३१
लाखों माताओं के प्रेम से युक्त एक हृदय	२३१
परदुःख-कातर हृदय	२३३
करुणा का विकास करो	२३४
अहिंसा की अभिव्यक्ति	२३६
परन्तु साँपों से मत खेलो	२३८
द्वेष-भाव रूपी दोष	२३९

ईर्ष्या की आग	२४०
शत्रुता का दुश्क्र	२४३
क्रोधोन्माद की अग्नि	२४५
राख से ढँका अंगार	२४५
प्रेम से जीतो	२४६
असम्भव नहीं	२४७
प्रतियोगिता द्वेष-भाव पैदा करती है ...	२५०
अंग्रेजों की नीति	२५२
प्रेम से सहानुभूति पैदा होती है	२५६
सकारात्मक दृष्टिकोण का महत्त्व	२५७
झूठे आरोपों पर ध्यान न दो	२६०
आत्मालोचन : एक कसौटी	२६३
कार्यकुशल बनो, साहसी बनो	२६५
प्रेम सबसे बड़ा इलाज है	२६९
अध्याय ३ : अविश्वसनीय परन्तु सत्य	२७१
विचित्र किन्तु सत्य !	२७३
दृश्य और अदृश्य सत्य	२७४
एक के भीतर दूसरा व्यक्ति	२७६
क्या मृत्यु के बाद जीवन है?	२८०
मृत्यु के बाद फिर जी उठना	२८२
देह यहाँ, पर देहधारी अन्यत्र	२८४
स्वप्न नहीं, बल्कि सच्चाई	२८६
मृतक महिला का पुनर्जन्म	२८७
मृत्यु बनारस में, पुनर्जन्म पेरू में !	२८८
जन्म और उसके पूर्व	२९०
पिछले जन्म की भाषा	२९४

सम्मोहन का उपयोग	२९५
पिछले जन्म की स्मृति	२९८
वह सूचना लेकर वापस आयी	२९९
देहान्तरण	३०२
तुम मर नहीं सकते !	३०५
पारलौकिक अनुसन्धानों का योगदान	३०६
क्या हमारे दो शरीर होते हैं?	३०७
भारत में यह उपेक्षा क्यों?	३११
विस्मृत सत्य	३१२
सत्य की खोज का राजमार्ग... ..	३१५
चमत्कारों का रहस्य	३१९
सार्वभौमिक नियम	३२०

अध्याय ४ : जैसी करनी, वैसी भरनी ३२३

एक तथ्यपरक बात	३२५
समाचारों का मौन विस्फोट	३२५
एडगर कैसी, ईसामसीह का भक्त	३२७
चिकित्सक का उपहार	३२८
समर्थ गुप्तचर	३२८
कोई संयोगमात्र नहीं	३२९
सेवा का जीवन	३३०
पिछले जन्मों के द्रष्टा	३३१
उसकी शक्ति का उद्भव	३३३
पुनर्जन्म क्रमविकास का सूचक है	३३४
अटलांटिस : जलमग्न होने से पूर्व का संसार	३३४
विज्ञान-युग का पुनः उदय	३३६
आकाशीय विवरण	३३७

कारण और कार्य की सुसंगति	३३९
कर्म : महत्त्व और मूल्य	३४०
लौटा हुआ कर्म	३४१
प्रतीकात्मक कर्म	३४३
क्रिया और प्रतिक्रिया के तीन क्षेत्र ...	३४३
कर्म वापस लौट आते हैं	३४५
भूल-चूक की त्रुटियाँ	३४७
साक्ष्य और प्रमाण	३४७
निराशावादी मत बनो	३४८
आनुवंशिकता गौण है	३४९
कर्तव्य : आध्यात्मिक जीवन का सहायक ...	३५१
पारिवारिक जीवन का रहस्य	३५३
बच्चों के बारे में	३५५
संयोग से होनेवाले दुर्भाग्य	३५६
नया दृष्टिकोण	३५७
परम सत्य	३५९

अध्याय ५ : प्रार्थना से कायाकल्प ३६३

ईश्वर से निवेदन	३६५
ईश्वर को पुकारना	३६६
प्रार्थना के प्रकार	३६७
प्रभु के समक्ष हृदय को खोल देना ...	३६८
प्रार्थना का मूल तत्त्व : तीव्र व्याकुलता ...	३६९
विनम्र याचना	३७०
ईश्वर तुम्हारी प्रार्थना का उत्तर देंगे ...	३७२
नेत्रज्योति वापस मिल गई	३७५
चलते रहो, चलते रहो	३७७

हर साँस में प्रार्थना करो	३७८
भगवान द्वारा बालिका की पुकार का उत्तर ...			३७९
दिव्य नशा	३८१
आन्तरिक व्याकुलता	३८३
गृहस्थ भी भगवान को पा सकते हैं	...		३८५
छोड़ काम, पकड़ो राम	३८६
प्रयत्न सफल होता है	३८८
सांत्वना के शब्द	३८९
प्रार्थना कैसे करें?	३९२
भगवान भक्त के हृदय में निवास करते हैं			३९३
भगवत्-सान्निध्य का अभ्यास	३९३
ध्यान कैसे करें	३९७
आध्यात्मिक जागरण	३९९
आन्तरिक बल का भण्डार...	४००
'मैं' नहीं, 'तू'	४०१
भगवान क्या सचमुच हैं?	४०२



भूमिका

वर्तमान सामाजिक और नैतिक परिवेश किसी भी व्यक्ति को बड़ी आसानी से भविष्य के बारे में निराशावादी बना सकता है। अत्यधिक विकसित, शक्तिशाली तथा सभ्य माने जानेवाले राष्ट्र जन-विनाश के ऐसे हथियारों के निर्माण एवं संग्रह में एक दूसरे से होड़ कर रहे हैं, जो पलक झपकते ही समग्र संसार का विनाश कर देने में सक्षम हैं। जन-विनाशक हथियारों के निर्माण में अरबों रुपये खर्च किए जा रहे हैं। जोनाथन शेल अपनी पुस्तक 'The Future of Earth' ('पृथ्वी का भविष्य') में बताते हैं कि मानव-समाज बड़ी लाचारी के साथ आपदा के कगार से लटक रहा है। यदि कुछ ही दशकों पूर्व हिरोशिमा का सर्वनाश कर देनेवाले बम की तुलना आधुनिकतम हथियारों से की जाए, तो वह बम वर्तमान हथियारों की संहारक-शक्ति की तुलना में दस लाखवाँ भाग भी नहीं था। तो भी कई राष्ट्र ऐसे हथियारों का अधिकाधिक संग्रह करते जा रहे हैं। जोनाथन शेल बड़ी कटु टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि इसके विरुद्ध किसी जनविरोध का अभाव यह प्रदर्शित करता है कि लोग मानवीय कल्याण की भावना अथवा स्वयं अपने ही कल्याण की बात को बिलकुल ही विस्मृत कर चुके हैं। मानव के भीतर का दानव इतनी

तेजी से बढ़ता जा रहा है कि वह दिन दूर नहीं जब जीवित लोग मृतकों से ईर्ष्या करने लगेंगे ।

वैसे इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि सम्पूर्ण मानव-जाति के कल्याण हेतु प्रयासरत और मानवता की उन्नति हेतु रचनात्मक कार्यक्रम चलानेवाले कुछ संगठन मनुष्य के अब भी विद्यमान सदगुणों के जीवन्त साक्षी हैं । संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं की ऐसी अनेक शाखाएँ हैं, जो भूखों को भोजन प्रदान करने, रोग-निवारण, कर्मचारियों के हित-संरक्षण, संस्कृति, कला तथा शिक्षा की उन्नति और विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित आपदाओं से ग्रस्त लोगों को राहत प्रदान करने में निरत हैं ।

परन्तु ऐसा लगता है मानो आसुरी-शक्तियाँ आधुनिक विज्ञान की शक्तियों पर अधिकार जमाकर उनका साधिकार प्रयोग करते हुए अच्छाई की समस्त शक्तियों के मार्ग में रोड़े अटकाने पर तुली हुई हैं । जरा आतंकवादियों की उन गतिविधियों के बारे में तो सोचिए, जिनके कारण हजारों निर्दोष लोग मारे जाते हैं । एक ओर तो हथियारों पर प्रभूत धनराशि व्यय की जाती है, जो न केवल पूर्णतः अनुत्पादक अपितु घोर विनाशात्मक उद्देश्यों के लिए व्यय की जा रही हैं । दूसरी ओर, लोभी व्यक्तियों का दल समूचे विश्व में मिलावटी खाद्यान्न, साहित्य तथा फिल्मों में अश्लीलता और नशाखोरी को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा देकर अकूत धन कमा रहा है ।

पारिवारिक और नैतिक मूल्य स्वार्थपरायणता की चिता पर जलकर खाक होते जा रहे हैं । भविष्य के नेता, हमारे युवजन, आसुरी शक्तियों से प्रलोभित हो रहे हैं और समाज सर्वत्र विघटित होता दिख रहा है ।

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की उपेक्षा, इन्द्रिय-सुखों को अति महत्त्व देनेवाले भौतिकतावादी आदर्श, सुखवाद को बढ़ावा देनेवाली

तर्क-भावना और प्रौद्योगिकी का दुरुपयोग - ये सब मिलकर मानवता को घोर दुर्भाग्य की ओर खींचकर ले जा रहे हैं। अपनी आत्मा को खोकर विश्व-विजय से क्या लाभ? यदि मनुष्य अपने स्वयं के मन पर ही नियंत्रण न रख सके, तो उसके द्वारा कम्प्यूटरों या अदभुत अन्तरिक्ष-यानों पर नियंत्रण करने में सफल होने से क्या लाभ?

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में स्वामी विवेकानन्द ने चेतावनी दी थी - 'भौतिकवाद और उससे उत्पन्न क्लेश भौतिकवाद से कभी दूर नहीं हो सकते। ... सारा पाश्चात्य विश्व मानो एक ज्वालामुखी पर स्थित है, जो कल ही फूटकर उसे चूर-चूर कर सकता है। केवल आध्यात्मिक तथा नैतिक संस्कृति ही राष्ट्र में गलत प्रवृत्तियों में सुधार ला सकती हैं।' यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि इस चेतावनीपूर्ण उद्गार के बाद कुछ दशकों के दौरान ही दो विश्वयुद्धों ने मानवता का घोर विनाश किया और करोड़ों लोगों को धरती से मिटा दिया।

जब तक जीवन और वास्तविकता के प्रति हमारे मूलभूत दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं आता, तब तक सुख-प्राप्ति के साधनों तथा वस्तुओं के प्राचुर्य के बावजूद, सच्चा सुख एवं स्थायी सन्तुष्टि सर्वदा हमारे साथ आँखमिचौनी ही खेलती रहेगी। क्यों? इसलिए कि भोग-सुख इन्द्रिय-उत्तेजना का परिणाम है, जबकि सच्चा आनन्द इन्द्रियों के सम्पर्क से स्वतंत्र और दीर्घस्थायी होता है। यह अन्तर से, हृदय की गहराई से उत्पन्न होता है। सुख स्वार्थ या अहं-केन्द्रित संवेगों पर आधारित होता है, जबकि आनन्द अहं से परे जाकर तथा अन्य लोगों के हित-साधन से प्राप्त होता है। इन्द्रिय-सुख कष्टप्रद प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं, जबकि आनन्द शान्ति एवं सन्तोष प्रदान करता है।

वेदान्त के अनुसार हमारे सच्चे स्वरूप के विषय में अज्ञान ही हमारे सभी दुःखों का कारण है। सामान्यतया हम अपने शरीर तथा

मन से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। यह तादात्म्य ही अहंकार अर्थात् मिथ्या या निम्नतर अहं की सृष्टि करता है। परन्तु आत्मा ही हमारा सच्चा स्वरूप है, जो शरीर तथा मन, दोनों से परे है। हमारे द्वारा अनुभूत सभी सुखों का सच्चा स्रोत आत्मा ही है। परन्तु इसे न जानने के कारण ही हम बाहरी वस्तुओं तथा व्यक्तियों में इस सुख को ढूँढ़ते रहते हैं। यदि हम सच्चा सुख, सच्ची सन्तुष्टि तथा स्थायी शान्ति पाना चाहते हैं, तो हमें निम्नतर अहं से ऊपर उठकर उच्चतर अहं - अपनी सच्ची आत्मा, अपनी आन्तरिक चेतना के मूल केन्द्र को ढूँढ़ना होगा। यह आत्मविश्लेषण, संयम, निःस्वार्थ सेवा, प्रार्थना, जप तथा ध्यान, अर्थात् आध्यात्मिक साधना के पथ पर चलने से प्राप्त होता है। असन्तोष, जीवन-निरर्थकता, अकेलापन, चिन्ता, अपराध-बोध तथा मृत्यु-भय की समस्याओं का एकमात्र समाधान अपने सच्चे स्वरूप की उपलब्धि में ही है।

मानव का विकास तब तक अधूरा रहेगा, जब तक वह अन्तर्मुखी होकर निष्ठापूर्वक अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानने का प्रयास नहीं करता। विज्ञान बाह्य जगत का विशेष अध्ययन करता है तथा मनुष्य के बारे में भी काफी ज्ञान जुटाता है। विज्ञान शाश्वत मूल्यों की खोज को भी बढ़ावा दे सकता है। परन्तु आध्यात्मिक अनुभूति विज्ञान की सीमा के परे है। इसके लिए एक बिलकुल भिन्न साधन की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक उन्नति के साधन हैं - निःस्वार्थ सेवा, मानसिक पवित्रता, ईश्वरोपासना, प्रार्थना, ध्यान और नैतिक आचारों का पालन। इस प्रक्रिया में कोई शार्टकट नहीं है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने इस विषय पर व्यापक शोध किया था। चेतन और अचेतन मन की सीमाओं से परे जाकर उन्होंने आध्यात्मिक मुक्ति पाने का ठोस उपाय ढूँढ़ निकाला था। यदि आध्यात्मिकता और सांसारिकता के बीच सन्तुलन

बिगड़ जाए, तो व्यक्ति के जीवन की सुख-शान्ति का मूलोच्छेद हो जाएगा ।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, अंग्रेजी-राज के आगमन के साथ ही, भारत में पाश्चात्य भौतिकवादी विचारों तथा मान्यताओं का प्रवेश हुआ । वर्षों के उपनिवेशवादी शासन के प्रभाव से हम विदेशी विचारों तथा मान्यताओं का अन्धानुकरण करने लगे । परन्तु स्वतंत्रता-आन्दोलन के समय नेतागण राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित थे तथा उन्होंने हमारी राष्ट्रीय परम्परा के वैशिष्ट्य को सुरक्षित रखने की प्राणपण चेष्टा की । भारत ने लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था को अपना लिया है । हमें अनुभव हो रहा है कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के मार्ग में अनेक चुनौतियों का सामना करना होगा । हम जानते हैं कि देश के सभी लोगों को साक्षर बना पाना ही कितना कठिन है । इसे अलग से बताने की जरूरत नहीं कि जनमानस में शुभ विचारों के बीज बोना और लोगों को सत्कर्मों का जीवन जीने हेतु प्रेरित करने का कार्य कितना अधिक कठिन है ।

स्वाधीनता-पूर्व समाज के गणमान्य, प्रबुद्ध और शिक्षित लोग राष्ट्रवाद की भावना से अनुप्राणित थे और देश को स्वतंत्र कराने के लिए अपना खून बहाने तथा अंग्रेजों की गोलियों का सामना करने को तैयार थे । उनमें से अनेक नेता अपना सर्वस्व गँवाकर कारावास में दिन बिताते रहे । उन नेताओं द्वारा जीवनचर्या के रूप में स्वीकृत सेवा और बलिदान के आदर्श स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिज्ञों और नेताओं द्वारा शीघ्र ही विस्मृत कर दिए गए । यह बताते हुए, कि यदि इन उच्च आदर्शों को त्याग दिया गया, तो कैसी स्थिति आ जाएगी, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने भविष्यवाणी की थी - 'हम ज्योंही स्वाधीनता प्राप्त करेंगे, त्योंही चुनाव तथा उसके फलस्वरूप भ्रष्टाचार, अधिकारियों की हेकड़ी, प्रशासन की अक्षमता आदि लोगों

के जीवन को नरक बना देंगे। लोग उस न्यायप्रिय, कुशल, ईमानदार तथा शान्तिपूर्ण शासन का सुखद स्मरण करेंगे, जिसे वे पहले देख चुके हैं। एकमात्र सांत्वनादायी बात यह होगी कि हम अपमान तथा दासता से मुक्त हो चुके होंगे। केवल एक उदार सार्वजनिक शिक्षा के द्वारा ही हम एक बेहतर जीवन की आशा कर सकते हैं। केवल ऐसी शिक्षा से ही देश के नागरिक बचपन से सदाचार, ईश्वर में विश्वास, प्रेम तथा शान्ति जैसे मूल्यों को आत्मसात् कर सकेंगे। इसके अभाव में व्यापक अन्याय और धन का अपव्यय होगा। यदि लोग परस्पर प्रेम करने में आनन्द का बोध करें, ईश्वर में विश्वास अर्जित करें तथा न्याय-भावना से रहें, तो संसार कितना सुखी हो सकता है। इन सिद्धान्तों के अभ्यास हेतु अन्य देशों की तुलना में भारत-के पास प्रचुर शक्ति है।'

पुरानी पीढ़ियों के बड़े-बूढ़ों ने सपना देखा था कि ईश्वर में विश्वास, आपसी प्रेम तथा सद्भाव, सदाचरण आदि आध्यात्मिक मूल्यों का बचपन से ही अभ्यास करने से विश्व-शान्ति की स्थापना सम्भव है। क्या इन आशाओं की पूर्ति हेतु आज हमारे देश में स्थिति अनुकूल है?

क्या आसन्न संकटपूर्ण स्थिति की जानकारी हमारे युवकों को सचेत करेगी और उन्हें रचनात्मक परियोजनाओं में भाग लेने को प्रेरित करेगी? १९वीं शताब्दी के अन्त में ही स्वामी विवेकानन्द ने भारत के शिक्षित वर्ग को चेतावनी दी थी - 'जब तक करोड़ों लोग भूखे व अनपढ़ रहेंगे, तब तक मैं हर उस व्यक्ति को विश्वासघाती कहूँगा, जो उन्हीं के खर्च पर शिक्षित होकर उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देता ! जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया और अब अकड़कर चलते हैं, यदि वे अपने भूखे देशवासियों के लिए कुछ नहीं करते, तो वे घृणा के पात्र हैं।

‘सबसे पहले स्त्रियों का उद्धार करना होगा; जनसाधारण को जगाना होगा। तभी तो भारत का सच्चा कल्याण होगा।

‘मैं जीवन भर काम करता रहा हूँ; कम-से-कम काम करने का प्रयत्न तो करता ही रहा हूँ। मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असम्भव है। अतः भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवाद अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाए। त्याग और सेवा भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं; इनकी गति तीव्र करो, तो बाकी सब अपने आप ठीक हो जाएगा।

‘प्रत्येक मनुष्य तथा प्रत्येक राष्ट्र को महान बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं – सदाचार की शक्ति में विश्वास, ईर्ष्या और सन्देह का परित्याग तथा सत्कर्म करने में प्रयत्नशील लोगों की सहायता करना।

‘सर्वप्रथम तो हमें इस ईर्ष्यारूपी कलंक को धो डालना चाहिए। किसी से ईर्ष्या मत करो। भले काम करनेवाले प्रत्येक व्याक्ति को सहारा दो। तीनों लोकों के जीव मात्र के लिए शुभ कामना करो। विशाल बनना, उदार बनना और क्रमशः सार्वभौम भाव में उपनीत होना – यही हमारा लक्ष्य है। अन्य किसी बात की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल प्रेम, निश्छलता और धैर्य की।

‘लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्रिमंत्र से दीक्षित होकर, भगवान के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर, गरीबों, पतितों तथा पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर, इस सम्पूर्ण भारत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र उद्धार के

सन्देश, सेवा के सन्देश और समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे ।

‘भारत तभी जागेगा, जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर, मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे, जो निरन्तर निर्धनता तथा अज्ञान के अगाध सागर में डूबते जा रहे हैं ।’

क्या इस पीढ़ी के शिक्षित लोगों द्वारा इन सुझावों को स्वीकार करने और उन्हें कार्यान्वित करने की कोई सम्भावना है? क्या वे इन्हें भावुक उद्गार तथा शब्दाडम्बर कहकर त्याग नहीं देते हैं? इनके प्रति क्या उनके मन में इस प्रकार के विचार नहीं आते – ‘इन आदर्शों को स्वीकार कर लेना क्या क्रान्ति की भावना के विरुद्ध नहीं? क्या ये आदर्श वर्तमान संसार के लिए प्रासंगिक हैं? क्या उनमें मात्र शब्दाडम्बर का ही गुण नहीं है?’

तथाकथित शिक्षित लोग चाहे जो भी कहें, पर सच्चे विद्वानों द्वारा व्यक्त विचार बिलकुल भिन्न हैं । आधुनिक समाज-शास्त्रियों का स्पष्ट मत है कि धर्म या अध्यात्म ही संस्कृति की सच्ची बुनियाद है । उन कुछ राजनीतिक विचारकों से उनका मतभेद है, जो कहते हैं कि धर्म किसी काल में महत्त्वपूर्ण सामाजिक शक्ति रहा होगा, पर आधुनिक युग में वह एक जीवाश्म मात्र रह गया है । ‘Inquiries into Religion and Culture’ (‘धर्म और संस्कृति की जाँच-पड़ताल’) नामक पुस्तक में क्रिस्टोफर डाउसन के ये शब्द ध्यातव्य हैं, ‘धर्म ऐसी व्यक्तिगत भावना का मसला नहीं है, जिसका समाज की स्थूल वास्तविकताओं से कुछ लेना-देना न हो, अपितु इसके विपरीत यह सामाजिक जीवन का प्राण तथा प्रत्येक जीवन्त संस्कृति का मूल है । हमने बस अभी-अभी समझना शुरू किया है कि कैसे किसी समाज का धर्म उसकी

प्राणशक्ति के साथ अन्तरंगता तथा गहराई के साथ जुड़ा रहता है। धार्मिक भावना ही वह जोड़नेवाली शक्ति प्रदान करती है, जिससे समाज तथा संस्कृति सहबद्ध रहते हैं। विश्व की महान सभ्यताएँ किसी महान धर्म को एक तरह के सांस्कृतिक उत्पाद के रूप में पैदा नहीं करती, अपितु परम सत्य तो यह है कि धर्म की नींव पर ही महान सभ्यताएँ आश्रित रहती हैं। जिस समाज का धर्म नष्ट हो गया है, वह देर-सबेर अपनी संस्कृति भी खो बैठता है।' सोरोकिन और टॉयन्बी के भी ऐसे ही विचार हैं।

एक सामान्य व्यक्ति के लिए भी यह समझ पाना कठिन नहीं होगा कि प्रत्येक सभ्यता के उद्भव तथा विकास के पीछे एक आस्था का केन्द्र होता है। किसी भी पुनरुत्थान या पुनर्जीवन की प्रक्रिया में मानव-हृदय में सामंजस्य के भाव को उत्पन्न करना भी सम्मिलित होना चाहिए। मनुष्यों के बीच आपसी सहयोग के बिना सभ्यता, शान्ति, उन्नति आदि कुछ भी सम्भव नहीं है। सहयोग ही वह बन्धन है जो सबको जोड़े रखता है। श्रद्धा का एक सामान्य केन्द्र ही इस सहयोग का मूल आधार है। आत्मा या ईश्वर ही इस श्रद्धा का सारतत्त्व है। ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करना, अपनी स्वार्थपरायणता को दूर करते हुए अपने उदात्त चरित्र तथा आचरण के द्वारा इसे दूसरों में संचरित करना - ईश्वरीय श्रद्धा के पुनर्जीवन में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। इससे प्रत्येक व्यक्ति एक उच्च आदर्श हेतु कार्य करने के लिए अन्य लोगों के साथ जुड़ने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। इतिहास-बोध रखनेवाले समझ सकते हैं कि कैसे हमारे देश में सामाजिक उत्थान और कायाकल्प की प्रत्येक घटना के पीछे महान आध्यात्मिक हस्तियों का योगदान रहा है।

अब तक हमने जीवन का केवल आधा हिस्सा ही देखा है। दूसरा अर्धांश हमारी सुपरिचित दृष्टि के परे - भौतिक अस्तित्व के परे

अन्धकार में छिपा हुआ है। हम जैसे सामान्य प्राणी इस सत्ता के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। 'नदी' शब्द सुनते ही हम इसके उद्गम, इसके दोनों तट, इसके तटों पर स्थित भवनों और इसके समुद्र-संगम की कल्पना कर सकते हैं। यह ठीक है, परन्तु यही नदी का सम्पूर्ण चित्र नहीं है।

नदी का एक अन्य पहलू भी है। हालाँकि यह अदृश्य है। सूर्य के ताप से समुद्र का जल वाष्प में परिणत होता है। वायु इस वाष्प को पर्वत-शिखरों पर ले जाती है। वही वाष्प पर्वत-शिखरों पर बरसकर जल के रूप में नदी में प्रवाहित होते हुए पुनः समुद्र में मिल जाता है। इसी तरह हमारी जीवनधारा में भी अनेक अदृश्य शक्तियाँ क्रियाशील हैं। इस पृथ्वी पर जन्मा व्यक्ति समझता है कि यह जागतिक अस्तित्व ही जीवन का सर्वस्व है और मृत्यु सब कुछ समाप्त कर देती है। परन्तु कुछ लोग यह जानते हैं कि शरीर का नाश होने पर भी उसमें स्थित आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। जिन लोगों ने इस सत्य की अनुभूति की है, उनके लिए अभौतिक सत्ता तथा आत्मा का अस्तित्व केवल विश्वास या कल्पना की वस्तु नहीं रह जाते। ये तो अनुभूति के आधार पर सत्यापित किए जा सकनेवाले सत्य बन जाते हैं। लगभग ६००० वर्षों पूर्व भी हमारे ऋषिगण जानते थे कि मनुष्य यह दृश्यमान देहमात्र नहीं है, अपितु वह शरीर को वस्त्र के समान पहने हुए है। वे जानते थे कि प्राणी अपरिहार्य नियमों के अनुसार इस पृथ्वी पर आता और फिर विदा हो जाता है। यह पुस्तक विज्ञान की नवीन खोजों के आलोक में इसी विषय का विवेचन करती है। दुर्भाग्यवश, कर्म-सिद्धान्त को अयुक्तिसंगत, अवैज्ञानिक तथा अन्धविश्वास मात्र माननेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है। भ्रमपूर्वक ऐसा मान लिया गया है कि जो लोग इन बातों पर जितने जोरदार ढंग से आक्रमण करेंगे, वे उतने

ही अधिक बुद्धिमान हैं। तथापि यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि किसी भी विषय का समग्र तथा विस्तृत अध्ययन किए बिना ही उसकी आलोचना करना वैज्ञानिक दृष्टिकोण का कदापि द्योतक नहीं है। इस पुस्तक में प्रस्तुत विचार ऐसे लोगों के लिए नहीं हैं जो जागते हुए भी सो रहे हैं।

श्रद्धावान लोग इस पुस्तक में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अपने विश्वासों को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं। मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि सत्य को देखने से इनकार करनेवाले लोगों के तर्कों के द्वारा पाठकों को अनावश्यक रूप से विक्षुब्ध नहीं होना चाहिए।

विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों, दुःखों तथा रोगों से पीड़ित लोगों की मदद करना एक सदगुण या सत्कर्म माना जाता है। 'दुःख या कठिनाइयाँ कर्मों का ही परिणाम हैं और यदि लोग अपने पूर्व के दुष्कर्मों के कारण दुःखी हैं, तो हम उसमें कैसे हस्तक्षेप कर सकते हैं? उन्हें अपने कर्मों के फल भोगने दो' - कर्म-सिद्धान्त कभी ऐसे उपेक्षापूर्ण विचार का पोषण नहीं करता। पीड़ित लोगों की मदद न करना पाप करने के समान ही है। पीड़ित लोगों के लिए भी बेहतर होगा कि वे दूसरों को गाली देने में समय गँवाने की अपेक्षा, वर्तमान समस्या से उबारने हेतु भगवान से प्रार्थना करने की चेष्टा करें। भलीभाँति समझ लेने पर कर्म-सिद्धान्त हमें वैज्ञानिकता के नाम पर भौतिकवाद का अनुसरण करने से रोकता है; हमारी धार्मिकता को अक्षुण्ण रखते हुए हमें कट्टरता एवं अन्धविश्वास का गुलाम होने से बचाता है; हमें जीवन की कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना करने में समर्थ बनाता है और हमारे दृष्टिकोण में परिपक्वता लाकर हमारे भीतर शौर्य-भाव लाता है। एडगर कैसी ने समान असंख्य उदाहरणों से इस सार्वभौमिक नियम की पुष्टि होती है। जिन संगठित धार्मिक शक्तियों ने पहले वैज्ञानिक विचारों के प्रसार का प्रतिरोध किया था, वे

ही पाश्चात्य देशों में कैसी के विचारों को दबाने का प्रयास कर रही हैं। इतने से ही समझा जा सकता है कि वहाँ ऐसे अध्ययनों को चला पाना कितना कठिन है।^१

सचमुच, कुछ ऐसे आलोचक हैं जो कर्म-सिद्धान्त की गलत व्याख्या करते हैं और हमारी जनता में यदा-कदा दिखाई पड़नेवाले भाग्यवाद तथा अकर्मण्यता के लिए उसी को जिम्मेदार ठहराते हैं। वैसे कुछ लोग तो प्रत्येक सिद्धान्त का ही गलत अर्थ लगाते हैं और अपने स्वार्थ के लिए उसका दुरुपयोग करते हैं। स्वार्थपरायण लोगों के ऐसे छिछले उदाहरणों के आधार पर किसी सिद्धान्त के सत्य या मिथ्या होने का निर्णय नहीं लेना चाहिए। एडगर कैसी द्वारा अपने दुर्लभ अतीन्द्रिय अनुभूतियों की सहायता से दिया गया नया प्रकाश निश्चय ही जीवन के प्रति एक नवीन अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकता है। जीना सरमिनारा द्वारा लिखित 'Many Mansions' ('अनेक आवास') नामक पुस्तक पढ़ने के बाद, विगत पच्चीस वर्षों के दौरान मैंने ऐसी बहुत-सी सामग्री एकत्र की है, जिसकी मदद से मैंने इस पुस्तक में कर्म तथा पुनर्जन्म के सार्वभौमिक नियम का विवेचन किया है। जब तक हम जीवन में सुखों और दुःखों की उत्पत्ति के मूल बिन्दु

^१ परन्तु ऐसे प्रयास निश्चय ही विफल हो जाएंगे। एन्ड्र्यू मेलाविले ने कहा था, 'सत्य की खोज करनेवाले व्यक्ति को यातना का भय दिखाया जा सकता है, मूर्ख कहकर उसकी हँसी उड़ाने की चेष्टा की जा सकती है; लेकिन इससे सत्य में कोई बदलाव नहीं आ जाता। सत्य को सूली पर लटका देने या देश से निष्कासित कर देने की शक्ति किसी में नहीं है। सत्य पर आक्रमण किया जा सकता है, उसे विलम्बित किया जा सकता है, उसे दबाया जा सकता है, उसकी हँसी उड़ाई जा सकती है, परन्तु समय इसका बदला ले ही लेता है और अन्त में सत्य की ही विजय होती है। मनुष्य को इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि कहीं वह सत्य के विरुद्ध तो नहीं लड़ रहा है।' ('द गॉस्पेल ऑफ मार्क', विलियम बर्कले, बंगलोर)

को नहीं खोज पाते और उनको नियंत्रित करनेवाले नियमों को नहीं समझ लेते, तब तक हम जीवन के तात्पर्य तथा उद्देश्य को नहीं समझ सकते। और जिस जीवन का हम तात्पर्य ही न समझ पाएँ, वह भला जीवन ही क्या?

इस पुस्तक में कुछ मूलभूत प्रश्नों का विवेचन करने का प्रयास किया गया है, यथा - विज्ञान की सीमाएँ, आदर्शों का महत्व, निःस्वार्थ प्रेम की शक्ति, मन को शान्त करने के उपाय, चरित्र-गठन की पद्धति, नैतिकता की नींव, सुख तथा दुःख का मूल कारण, चमत्कारी घटनाओं की पृष्ठभूमि, प्रार्थना, उपासना तथा ध्यान का रहस्य, व्यक्तिगत विकास और सामाजिक कल्याण की उपलब्धि के साधन और ईश्वर तथा धर्म का स्वरूप। इसके साथ ही इसमें आज के लोगों द्वारा उठाए जानेवाले कुछ सम्भावित सन्देहों के निराकरण का भी प्रयास किया गया है।

सर्व-शक्तिमान प्रभु के प्रति इस विनम्र प्रार्थना के साथ ही मैं अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा।

ईश्वर की कृपा से सभी लोगों, विशेषकर, युवकों में, जीवन के उच्चतर-लक्ष्य का बोध उत्पन्न हो। उनके आशीर्वाद से सभी लोगों में आपसी सामंजस्य, समझ, न्याय, शान्ति तथा प्रीति का उदय हो।



समर्पण

स्वामीजी ! जब हम अन्धकार में विचरण कर रहे थे,
तो आपने हमारा हाथ पकड़कर
हमें धन्यता एवं अमृतत्व के पथ पर चलाया ।
आपके - 'उठो, जागो' - आह्वान के प्रत्युत्तर में
हमने जय और पराजय -
दोनों में ही समभाव रखना सीखा ।

आपने चिरन्तन आनन्द से हमारे पथ को आलोकित किया
और इसके प्रकाश से हमारे भय एवं दुःख को दूर किया ।

आपने हमें उदात्त जीवन के रहस्य बताए
अपने मार्गदर्शन के लिए हम आप ही पर आश्रित हैं ।

आपका प्रेम सर्वग्राही है ।
आपकी कृपा अहैतुक है ।

हे प्रभो ! आपकी जिस प्रेरणा ने इस लेखन
में मार्गदर्शन किया,
उसके लिए मेरा विनम्र आभार स्वीकार कीजिए ।



अध्याय १

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

क्रोध से भ्रम उत्पन्न होता है। भ्रम से स्मृतिलोप, स्मृतिलोप से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश हो जाने के फलस्वरूप व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।

— भगवद्गीता

चिन्ता, क्रोध, भय आदि आपके रक्तसंचार, पाचन और स्नायु-तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। ये नकारात्मक भावनाएँ आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। मैंने किसी व्यक्ति को कठिन परिश्रम के फलस्वरूप मरते हुए नहीं देखा, पर मैंने अनेक लोगों को मानसिक तनाव तथा चिन्ताओं के दुष्प्रभाव से मरते हुए देखा है।

— डॉ. चार्ल्स मेयो

चिकित्सक सबसे बड़ी गलती यह करते हैं कि वे मन के इलाज का प्रयास किए बिना ही शरीर की चिकित्सा का प्रयास करते हैं। मन तथा शरीर सहबद्ध हैं और उनका पृथक्-पृथक् उपचार नहीं किया जाना चाहिए।

— प्लेटो

चिंता मुर्दे को जलाती है; परन्तु चिन्ताएँ व्यक्ति को जिन्दा ही जला डालती हैं।

— एक भारतीय कहावत

पेट का अलसर इस बात पर निर्भर नहीं करता कि आप क्या खा रहे हैं, बल्कि इस बात पर कि आपको कौन-सी चिन्ता खा रही है।

— डॉ. जोसेफ एफ. मॉन्टेग

बीमारी, विफलता या कष्ट से भयभीत होना मानो अचेतन मन में ऐसे बीज बोना है, जिनसे शरीर तथा मन में रोगी मनोभावों, विशुद्ध विचारों, भ्रामक मनोदशाओं और गलत कृत्यों की फसल तैयार होगी।

अचेतन मन से किसी भी बुरे संस्कार को दूर करने के लिए उसके स्थान पर उसके ठीक विपरीत अच्छे संस्कार उत्पन्न करना होगा। केवल मानसिक शक्ति, प्रतिरोध या नकारने के द्वारा बुरे संस्कारों को दूर नहीं किया जा सकता है; अच्छे संस्कार उत्पन्न कीजिए और बुरे संस्कार अपने आप ही चले जाएँगे।

— क्रिश्चियन डी. लारसन

आप दुःखी तभी हो सकते हैं जब आपके पास सुखी या दुःखी होने के लिए खाली समय हो।

— बर्नार्ड शॉ

बुरी-से-बुरी अवस्था को स्वीकार कर लेने से ही मन की सच्ची शान्ति प्राप्त होती है।

— लिन युतांग

चिन्तामुक्त रहो

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के इस युग में हमारा जीवन जटिल हो गया है और तनाव हमारे जीवन का एक अभिन्न अङ्ग बन गया है। हम राजनीतिक विवादों के दलदल में फँस गए हैं। जीविका-निर्वाह तथा आत्मरक्षा हेतु हमें सर्वत्र तीव्र प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। छिपे या खुले तौर पर विभिन्न धार्मिक वर्गों, जातियों और तबकों के बीच हिंसात्मक संघर्षों ने हमारा सन्तुलन बिगाड़ डाला है। इन परिस्थितियों में आन्तरिक शान्ति तथा मानसिक सन्तुलन को बनाए रखने की पद्धति का ज्ञान न होने पर चिन्ता और तनाव हमें निश्चय ही अभिभूत कर डालेंगे। मानसिक विक्षोभों का व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। समूचे विश्व के स्नायु-रोग-चिकित्सक इस बात को प्रमाणित कर चुके हैं। चिन्ता, तनाव तथा भय के एकत्र होने तथा अन्ततः भयावह रोगों में परिणत हो जाने के पूर्व, उन्हें उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही उखाड़ डालना अच्छा है। जब ऐसी कोई बीमारी अबाध रूप से बढ़ने लगती है, तो हम असहाय होकर चिकित्सक के पास दौड़ने लगते हैं। यदि हम कुछ मूल्यों और सिद्धान्तों के अनुसार अपना जीवन यापन करना सीख लें, तो हम चिन्ता और तनाव के इन गम्भीर परिणामों से बच सकते हैं। घर में आग लग जाने के बाद कुआँ खोदने का प्रयास कितना मूर्खतापूर्ण है। अतएव चिन्ता के प्रसार को रोकने के लिए हमें आज ही उपयुक्त कदम उठाना होगा।

चिन्ता का फन्दा

एक बार मेरे एक मित्र ने एक विचित्र बीमारी के बारे में बताया, जिससे वह ग्रस्त था। उस समय सहसा उसका सिर चकराने लगा था

और उसे कई बार उलटी हुई। बिस्तर से उठने के प्रयास में उसे कष्ट महसूस होने लगा। औषधियों से कोई लाभ नहीं हुआ। विचित्र बात यह है कि वह बीमारी, जिससे उसके चिकित्सक लोग इतने भ्रमित हो गए थे, जितनी जल्दी शुरू हुई, कुछ समय बाद उतनी ही शीघ्रता से लुप्त भी हो गयी। बाद में पता चला कि इसका कारण अतिशय दुश्चिन्ता थी। वह बीमारी तब प्रकट हुई, जब उसे पता चला कि उसका मित्र गम्भीर रूप से दुर्घटनाग्रस्त होकर अस्पताल में भर्ती है। फिर उसने ज्योंही सुना कि उसका मित्र अब खतरे से बिलकुल बाहर है, तो उसकी वह विचित्र व्याधि लुप्त हो गयी। इस घटना के पीछे क्या रहस्य था? उसकी चिन्ता इस बात से शुरू हुई कि उसके मित्र ने उसकी गारंटी पर बैंक से एक बड़ा कर्ज ले रखा था। वह इस बात को लेकर चिन्तित था कि यदि मित्र का देहान्त हो गया, तो वह उस कर्ज को कैसे चुकाएगा। परन्तु उसका मित्र ज्योंही स्वस्थ हुआ, त्योंही वह उस चिन्ता से मुक्त हो गया और बीमारी के लक्षण भी चले गए।

वाल्मीकि मुनि कहते हैं - 'एक विषधर सर्प एक बालक को डसकर मार डालता है, पर चिन्ता मनुष्य को जकड़कर उसका विनाश कर डालती है। दुःखी, चिन्तित तथा हताश व्यक्ति चाहे जो भी करे, अन्ततः वह स्वयं को ही बरबाद कर डालता है।'

तनाव का बोझ

श्री अनन्त राव एक बड़ी कम्पनी के उपप्रबन्धक थे। वे एक दक्ष तथा जिम्मेदार अधिकारी के रूप में जाने जाते थे और अन्ततः उन्हें महाप्रबन्धक बना दिया गया। इस कार्य में उनकी सहायता हेतु अनेक लोग नियुक्त थे; तथापि प्रबन्धक बनने के पन्द्रह दिनों के भीतर ही वे दिल की तेज धड़कन और भय से पीड़ित होने लगे।

रात में उन्हें अच्छी नींद भी नहीं आ पाती थी। चिकित्सकों ने बताया कि उनके कार्यभार में अत्यधिक वृद्धि के कारण ही ऐसा हुआ है। महत्वपूर्ण निर्णय लेने हों या असहयोगी कर्मचारियों का सामना करना हो, वे सर्वदा स्वयं को थका हुआ तथा परिस्थितियों से तालमेल बिठा पाने में असमर्थ पाते थे। वे स्वीकार ही नहीं कर पाते थे कि ये उनकी बीमारी के मनोवैज्ञानिक लक्षण हैं। परन्तु उनके चिकित्सकों का निश्चित मत था कि मानसिक तनाव ही इसका एकमात्र कारण था। चिकित्सकों के परामर्श पर वे छुट्टी लेकर चले गए। उनकी अनुपस्थिति में एक अन्य अधिकारी ने दक्षतापूर्वक उनका कार्य संभाल लिया। उसने सभी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न किया तथा समस्याओं को निपटाया। बाद में छुट्टी बिताकर लौट आने पर श्री राव को अपने कार्य के संचालन में कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई और वे स्वस्थ हो गए।

डॉ. अलेक्सिस कैरेल ने ठीक ही कहा है, 'जो व्यवसायी चिन्ताओं से निपटना नहीं जानते, वे अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते हैं।'

मौन-व्यथा

सुजाता एक अच्छे खानदान की, उच्च शिक्षा प्राप्त तथा सदाचारी युवती थी। उसके पति सुयोग्य और अच्छे पद पर कार्यरत थे। विवाह के शीघ्र बाद ही उसे पता चला कि उसके पति शराबी हैं। उसे काफी दुःख हुआ, पर वह हताश नहीं हुई। उसने अपने पति की यह आदत छुड़ाने के लिए साहस तथा धैर्यपूर्वक प्रयत्न किया। दो वर्षों तक लगन के साथ वह अपने इस प्रयास में जुटी रही, परन्तु पड़ोसियों के व्यंग-बाणों को सह पाना उसके लिए असह्य हो उठा। जब उसका पति सुरापन करके घर आता और उसके साथ बुरा बर्ताव

करता, तो वह अवसाद से टूट जाती। निराशा के घने बादल क्रमशः उसके मन तथा जीवन को तमसाच्छन्न करने लगे। सुखद भविष्य का उसका स्वप्न चूर-चूर हो गया। वह शरीर के दर्द, अनिद्रा तथा थकावट से पीड़ित हो गयी। ये सभी चिन्ता के दुःखद उपहार हैं। संकट से मुक्ति और मानसिक शान्ति बनाए रखने के लिए धैर्य तथा साहस का आश्रय लेने की जरूरत है। तो फिर उपाय क्या है? ऐसे उत्कृष्ट गुण हम कहाँ से प्राप्त करें?

तनाव से संकट

रमेश एक उत्साही युवा कर्मचारी था। वह कपड़े की एक दुकान में प्रातः से सायंकाल तक निष्ठापूर्वक कार्य करता था। एक दिन गलत सूचना या सन्देह के आधार पर उसका मालिक क्रोध में उस पर चिल्ला उठा, 'यह मूर्खतापूर्ण कार्य तुमने ही किया है!' वस्तुतः रमेश की कोई गलती नहीं थी। वह मालिक को समझा-बुझाकर उसकी गलतफहमी दूर करना चाहता था, पर उसका मालिक बीच में ही गरज पड़ा, 'चुप रहो। बातें मत बनाओ। मैं सब कुछ जानता हूँ।' ग्राहकों तथा सहकर्मियों के सामने ही रमेश का यह अपमान हुआ। अपमान का यह घूँट वह किसी प्रकार पी तो गया, परन्तु उसका मन अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठा। उसने किसी तरह ग्राहकों का हिसाब-किताब तो पूरा कर लिया, परन्तु बाद में चक्कर आ जाने से उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह बैठ गया, नहीं तो जमीन पर गिर पड़ा होता। यह मानसिक आघात का मामला था।

विचार तथा भावनाएँ शरीर पर अपने चिह्न तथा संस्कार छोड़ जाती हैं। मानसिक वृत्तियाँ अच्छा स्वास्थ्य या बीमारियों के लक्षण हैं। बुरे विचार नकारात्मक बदलाव लाते हैं, और भले विचार हितकर परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। यह कोई कल्पित कथा या धार्मिक

उपदेशकों की सामान्य रूढ़ोक्ति नहीं है, अपितु वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित तथ्य है।

अलसर चिन्ता का फल है

सन् १९५६ में रूसी वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि चिन्ता के फलस्वरूप ही पेट में अलसर (घाव) होते हैं। निरन्तर भय, तनाव तथा चिन्ता का शरीर पर भयानक प्रभाव होता है। इनके फलस्वरूप रोग से शरीर की रक्षा करनेवाली श्वेत रक्त-कणिकाओं का काफी ह्रास हो जाता है। इसके विपरीत, सकारात्मक चिन्तन, प्रसन्नता, मानसिक बल और आनन्द से श्वेत रक्त-कणिकाओं में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि होने लगती है। नकारात्मक भावनाएँ हमें ठेस पहुँचाती हैं। चिन्ताएँ बढ़ जाने पर पेट के अलसर से रक्तस्राव आरम्भ हो सकता है। डॉक्टर अलवारिस द्वारा मेयो क्लीनिक में किए गए प्रयोगों ने यह बात सिद्ध कर दी है।

डॉ. अलवारिस ने विभिन्न प्रकार के उदर-रोग से पीड़ित पन्द्रह हजार रोगियों का निरीक्षण किया। उन्होंने उनके पेट-दर्द का कारण ढूँढ़ निकाला। इसमें रोचक बात यह है कि लगभग बारह हजार रोगियों की पीड़ा का मूल कारण उनके शरीर में नहीं, बल्कि उनके मन में था। रोगियों की समस्या का कारण प्रदूषित जल या वातावरण आदि नहीं थे। भय, चिन्ता, असुरक्षा की भावना, ईर्ष्या और बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापन में असमर्थता ही एक साथ मिलकर उनके पेट में दर्द उत्पन्न कर रहे थे।

डॉ. जॉन शिंडलग ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। बीस वर्षों तक उन्होंने हजारों रोगियों का उपचार किया और चिन्ता, दुःख एवं तनाव के कारण हुई उनकी शारीरिक क्षति के आँकड़े एकत्र किए। अपने दीर्घकाल के अनुभव की सहायता से उन्होंने नकारात्मक

विचारों से मुक्त होने में रोगियों की मदद की। उनके मतानुसार हमारी आधी बीमारियों का मूल हमारे मन में ही विद्यमान है। डॉ. पीटर ब्लेथ ने अपनी 'Stress Disease: The Growing Plague' ('तनाव-सम्बन्धी रोग : एक बढ़ती महामारी') नामक पुस्तक में माना है कि कुछ निम्नलिखित बीमारियाँ मनोदैहिक गड़बड़ियों के कारण होती हैं - उच्च रक्तचाप, दिल का दौरा, मधुमेह, दमा, गठिया-वातरोग, आधासीसी, मस्तिष्क में रक्त-अवरोध, एलर्जी, भूख न लगना, घेंघा, त्वचा की बीमारियाँ, आदि। हममें से अधिकांश लोग नकारात्मक विचारों और भावनाओं के हानिकारक प्रभावों को जानते तक नहीं हैं। सुखी, उपयोगी और सार्थक जीवन जीने के लिए हमें चिन्ता तथा भय से छुटकारा पाना होगा।

मन और देह दोनों का ही ध्यान रखो

कल्पना करो कि एक रोगी चिकित्सक के पास जाकर अपनी बीमारी का वर्णन करता है। चिकित्सक यदि महसूस भी करे कि उस रोगी की समस्याएँ दैहिक न होकर मनोवैज्ञानिक हैं, तब भी वह इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं कह सकता। चिकित्सक द्वारा चिन्ता, भय तथा द्वेष को घटाने और विश्राम करने की सलाह को कोई भी रोगी सहज ही स्वीकार नहीं करेगा। रोगी की सामान्य प्रतिक्रिया होगी - 'यह चिकित्सक मुझे औषधि के बजाय केवल सलाह दे रहा है। इसकी भला किसे जरूरत है?' चिकित्सकों को अपने रोगियों के दैहिक तथा मानसिक - दोनों ही प्रकार के स्वास्थ्य के प्रति सजग रहना चाहिए। स्नेहपूर्वक देखरेख के साथ रोगी का इलाज करने पर चिकित्सकों की सहायता कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। वर्षों पूर्व ही प्लेटो ने सुझाव दिया था कि चिकित्सकों को अपने रोगियों के दैहिक तथा मानसिक - दोनों ही आयामों की ओर ध्यान देना चाहिए।

चिकित्सक के लिए रोगी की सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि, उसके विश्वास तथा बाल्यकालीन अनुभव आदि चीजों का ज्ञान आवश्यक है। इनका मूल्यांकन करने के बाद चिकित्सक अपने रोगी को उन नकारात्मक भावनाओं के हानिकारक प्रभाव के बारे में स्पष्ट रूप से समझा दे, जिनसे रोगी का मन और शरीर अचेतन रूप से आक्रान्त हैं। इसके साथ ही चिकित्सक को सकारात्मक भावनाओं की सहायता से नकारात्मक भावनाओं को दूर करने का उपाय भी बता देना चाहिए। यह सम्पूर्ण उपचार है, जिसे मनो-चिकित्सा के नाम से जाना जाता है, पर इसमें समय लगता है। एक रोगी के ऐसे उपचार में लगभग बीस घण्टों की जरूरत पड़ती है। अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी, जहाँ एक चिकित्सक एक दिन में औसतन २३ रोगियों का इलाज करता है, ऐसी चिकित्सा सबको सुलभ नहीं है, क्योंकि इसमें समय और समर्पण के भाव की जरूरत होती है।

मन में उद्भव

भय, क्रोध तथा चिन्ताएँ अनेक रोगों का प्रत्यक्ष कारण होती हैं। रोगों की निम्न सूची उनकी प्रतिशत मात्रा दर्शाती है -

रोग	प्रतिशत
१. गर्दन का दर्द	७५%
२. गले की सूजन	९०%
३. पेटिक अलसर	५०%
४. पित्ताशय का दर्द	५०%
५. गैस्ट्राइटिस (आंत्रशोथ)	९९%
६. चक्कर आना	८०%
७. सिरदर्द	८०%

८. कब्ज

७०%

९. थकावट और दुर्बलता

९०%

नकारात्मक भावनाएँ हानिकारक रसायनों को उत्पन्न करती हैं। अधिकांश लोग इससे अनभिज्ञ रहते हैं और अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करते। इसीलिए वे बारम्बार पीड़ित होते रहते हैं। क्रोधित होने पर हमारी भौहें तन जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं और स्वर कटु हो जाता है। इन लक्षणों को तो हम देखते हैं, पर शरीर-विज्ञानी हमें यह भी बताते हैं कि ये दैहिक लक्षण क्यों प्रकट होते हैं। रक्तचाप और दिल की धड़कन की गति भी बढ़ जाती है। हमारे फिर शान्त होने तक ये परिवर्तन बने रहते हैं। क्रोध हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाता है। इससे मस्तिष्क की रक्त-कोशिकाएँ फट सकती हैं और हृदय-गति रुक सकती है। ये दोनों ही अवस्थाएँ घातक सिद्ध हो सकती हैं। किसी के लिए भी लम्बे समय तक क्रोधित या दुःखी रह पाना सम्भव नहीं है। इन दोनों में से कोई भी भाव लगातार बना रहे, तो अपूरणीय क्षति हो सकती है। मानव-शरीर इन भावनाओं के हानिकारक प्रभावों को लम्बे काल तक नहीं झेल सकता। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो क्रोध या अपमान के भाव को प्रकट नहीं करते, बल्कि मुस्कुराकर सह लेते हैं। तथापि ये भावनाएँ उनके अचेतन मन को प्रभावित कर जाती हैं। ऐसे लोग अचेतन मन में ठेस तथा अपमान पहुँचानेवाले के प्रति कटुता का पोषण करते हैं। क्रोध, द्वेष या अपमान की यह मौन स्वीकृति भी उतनी ही हानिकारक है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कुछ दुःख, कष्ट, तनाव आदि के अनुभव होते हैं। एक औसत व्यक्ति के पास उनका सामना करने की शक्ति होती है। उन्नत वैज्ञानिक खोजों के इस युग में अपनी समय

तथा शक्ति बचाने के हमारे पास अनेक उपाय हैं। इस तीव्र गतिमान युग में सैकड़ों वर्षों पूर्व के लोगों के समान धैर्य और मनःशान्ति की आशा करना कठिन है। पर अपने पूर्वजों के धैर्य का स्मरण हमारे लिए उपयोगी है। इसे स्मरण रखने से हमें अपने जीवन में जल्दबाजी तथा तनाव को संयमित करने में आसानी हो सकती है। मानव शरीर में अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य बिठाने की क्षमता विद्यमान है। उदाहरणार्थ, हवाई अड्डे के समीप रहनेवाले लोग प्रारम्भ में हवाई जहाज के उड़ने और उतरने के समय होनेवाले शोरगुल से विक्षुब्ध होते हैं, पर कुछ दिनों बाद वे इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि इस शोर के बावजूद वे भलीभाँति सो लेते हैं; फिर भी उनमें कुछ चिड़चिड़ापन रह ही जाता है। शहरों में रहनेवालों को बस पकड़ने के लिए प्रायः घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। देर तक कतार में खड़े-खड़े वे प्रायः अधीर हो उठते हैं। सड़क के किनारे चलनेवाले पैदलयात्री को देखकर तेज गति के कार-चालक क्रोधित हो जाते हैं। कभी-कभी सहकर्मियों के साथ गरम वाद-विवाद, तर्क-वितर्क और बातचीत से हमारी मानसिक शान्ति छिन जाती है। पत्नी और बच्चों के साथ मतभेद प्रायः घरेलू संघर्ष में बदल जाते हैं। मानव-शरीर मशीन नहीं है। यह भावनाओं और मनोभावों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकता। मगर क्रोध तथा घृणा के हानिकार प्रभावों का बोध होने पर मनुष्य संयम का अभ्यास करने लगता है। यदि वह स्वयं पर विजय प्राप्त कर ले, तो संसार के साथ अपना सामंजस्य बैठाना सीख जाता है। तब अपने आघातों को भूल जाना भी एक वरदान हो जाता है।

नरक का द्वार

भीम सिंह ने बड़े सबरे से ही दोपहर की चिलचिलाती धूप में अपने खेत पर काम किया और फिर एक सिंह के समान भूख से

पीड़ित होकर उसने अपनी पत्नी से पूछा, 'भोजन तैयार है?' पत्नी ने थोड़े उदासीन भाव से उत्तर दिया, 'आधे घण्टे ठहरो।' भीम सिंह ने चिल्लाकर कहा, 'क्या?' और फिर उसने अपने हाथ की गैती से अपनी पत्नी के सिर पर तेज प्रहार किया। पत्नी - 'ओह, मैं तो मर गयी!' - कहते हुए चीत्कार कर उठी और तत्काल काल-कवलित हुई। क्रोध शान्त होने पर भीम सिंह को अपने बर्बर कृत्य पर घोर पश्चात्ताप हुआ।

श्यामापद मुखर्जी के अधिकारी ने उन्हें कुछ कड़ी बातें सुना दी थीं और वे केवल इसी कारण नौकरी से त्यागपत्र देकर घर लौट आए। क्रोध के आवेश में श्यामापद ने कहा, 'मैंने भी अपना त्यागपत्र उसके मुँह पर फेंक दिया। मैं किसी की परवाह नहीं करता।' क्रोध शान्त होने पर वे तरह-तरह से पश्चात्ताप करने लगे। वे चिन्तित थे कि अब उनकी पत्नी तथा बच्चों का भरण-पोषण कैसे होगा! उन्होंने खेदपूर्वक स्वीकार किया कि क्रोधावेश में उन्होंने एक मूर्खतापूर्ण कार्य कर डाला था।

क्रोध के असंख्य अनर्थकारी परिणाम हैं। विश्व के समस्त महापुरुषों ने मनुष्य को क्रोध से खूब सजग रहने को कहा है। गीता में क्रोध को नरक के द्वारों में से एक बताया गया है। क्रोध का परिणाम है लड़ाई-झगड़े - जैसे को तैसा और हिंसा के बदले हिंसा। महाभारत हमें सावधान करता है कि क्रोधी व्यक्ति का किया हुआ दुष्कर्म उसे विनाश के पथ पर ले जाता है।

क्या आपने कभी क्रोध से उन्मत्त किसी व्यक्ति का विचित्र आचरण देखा है? यह आपको हास्यास्पद भी लग सकता है। मैं आपको बता दूँ कि मेरे एक परिचित क्रोधावेश में क्या करते थे। चिढ़ाने या गुस्सा दिलानेवाले लोगों को वे कहा करते, 'मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा।' वे अपने क्रोध को विभिन्न रूपों में प्रकट करते

हुए कहते - 'मैं निश्चित रूप से तुम्हारा सिर तोड़ डालूँगा ! मैं तुम्हें कतरई नहीं छोड़ूँगा ! भले ही मुझे फाँसी या निर्वासन की सजा हो जाए, परन्तु निश्चित रूप से मैं तुम्हारा खून कर दूँगा !' आप यदि उन्हें शान्त करने का प्रयास करें, तो कभी-कभी वे असम्बद्ध तुकबन्दी करते हुए कहते, 'मैं आपकी बदमिजाजी को पाँव से कुचलता हूँ।' इन क्रोधियों में ऐसे लोग भी होते हैं, जो अपने शत्रुओं को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, सर्वनाश कर डालते हैं, सब कुछ मटियामेट कर देते हैं। किसी का गला मरोड़ देते हैं। वे कटु तथा अश्लील शब्दों में ताने मारते हैं। ऐसे चिड़चिड़े लोगों के व्यवहार की कभी हँसी उड़ाने का भी प्रयास मत कीजिए। वे आप पर ही पिल पड़ेंगे। जब कोई अपने क्रोध को सीधे अभिव्यक्त नहीं कर पाता, तो प्रायः वह दूसरों से भिड़ जाता है। क्रोधित हो जाना एक खतरनाक आदत है। प्लूटार्क ने कहा था, 'क्रोध तुम्हारे मन में प्रविष्ट होने के पूर्व ही तुम्हारे विवेक को छीन लेता है और उसके लौटने के सारे दरवाजे बन्द कर देता है।' एक संस्कृत सुभाषित में कहा गया है, 'श्रेष्ठ लोगों में क्रोध क्षण भर ही रहता है और उससे निम्नतर लोगों में दो घण्टे तक रहता है, और भी निम्नतर लोगों में पूरे दिन रहता है, परन्तु दुष्टों में यह जीवन भर बना रहता है।' अतः क्रोध को हमें लम्बे समय तक बने रहने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

प्रसिद्ध अंग्रेज समालोचक डॉ. सैमुअल जॉनसन के जीवनीकार बॉसवेल का एक बार उनके किसी मित्र ने अपमान कर दिया। इस घटना से क्षुब्ध बॉसवेल ने डॉ. जॉनसन से शिकायत की। डॉ. जॉनसन ने उत्तर दिया, 'जरा सोचो, एक वर्ष बाद यह अपमान कितना महत्त्वहीन हो जाएगा।' बॉसवेल ने इस सलाह पर विचार किया और इसका गूढ़ निहितार्थ समझ गए। परवर्ती काल में उन्होंने

लिखा, 'मैंने इस सलाह पर अनेकों बार अमल किया और हर बार इससे मेरी स्नायुओं को राहत मिली ।'

अपनी परिव्रज्या के दिनों में स्वामी विवेकानन्द एक बार दो अंग्रेजों के साथ रेलगाड़ी के एक ही डिब्बे में यात्रा कर रहे थे । उनकी वेशभूषा को देखकर दोनों अंग्रेजों ने उन्हें कोई भिखारी समझ लिया और अंग्रेजी भाषा में आपस में उनकी हँसी उड़ाने लगे । अगला स्टेशन आने पर स्वामीजी को स्टेशन-मास्टर के साथ विशुद्ध अंग्रेजी में बातें करते देखकर दोनों अंग्रेज हैरान तथा लज्जित हुए । उन दोनों ने स्वामीजी से पूछा कि उनके कटाक्षपूर्ण उपहासों का उन्होंने विरोध क्यों नहीं किया । स्वामीजी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, 'मित्रो, मैं अपने जीवन में पहली बार मूर्खों से नहीं मिल रहा हूँ ।'

इस घटना में ध्यान देने की बात यह है कि उन मूर्खों द्वारा भड़काए जाने पर भी स्वामीजी शान्त ही रहे ।

काटो नहीं, फुफकारो

एक बच्चे के हाथों से उसका खिलौना छीनने का प्रयास करो - वह अपनी नाराजगी व्यक्त करेगा । क्रोध तथा नाराजगी हमारे स्वभाव में बिंधी हुई है । क्रोध एक सहज प्रतिक्रिया है । जब कोई वस्तु या घटना हमारी नाराजगी या असन्तोष के भाव को भड़का देती है, तो हम क्रोधित हो जाते हैं । इस संसार में सब कुछ हमारी इच्छा के अनुसार नहीं हो सकता । अतः अपनी इच्छाओं का नियमन तथा अहंकार को घटाना ही बुद्धिमत्ता है, क्योंकि इसी से हमें अपने क्रोध को नियंत्रित करने में मदद मिलती है । कुछ लोगों में तो क्रोध आदत का रूप धारण कर लेता है । वे हर चीज पर - यहाँ तक कि जब कौवा काँव काँव करता है, या जब वे स्वयं अपनी चीजें नहीं ढूँढ़ पाते, या थोड़ा शोरगुल होने पर, या चाय में थोड़ी चीनी कम हो जाने

पर ही चिड़चिड़ा उठते हैं। 'क्रोध में वह शेर बन जाता है' - ऐसी बातें सुनकर उनका सीना गर्व से फूल उठता है।

क्रोध तुम्हारे शारीरिक तथा मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ देता है। क्रोध तुम्हें अपने आसपास के लोगों के साथ शत्रुता का मार्ग दिखाता है। तुम्हारा स्वभावगत चिड़चिड़ापन दूसरों के मन में तुम्हारे प्रति घृणा का मूल कारण बन जाता है। लोग तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी खिल्ली उड़ाते हैं। तुम सबकी सहानुभूति खो बैठते हो। तुम दूसरों के लिए कष्ट और असुविधा के कारण बन जाते हो।

क्रोध के सम्बन्ध में तेरहवीं सदी के महान दक्षिण भारतीय सुधारक सन्त बसवेश्वर के इन शब्दों को याद रखो, 'जैसे घर में लगी हुई आग पहले घर को ही जलाती है, वैसे ही क्रोध की अग्नि पहले क्रुद्ध व्यक्ति को ही जलाती है और तब अन्य लोगों को हानि पहुँचाती है।'

परन्तु क्या हम पूरी तौर से क्रोधहीन हो सकते हैं? एक बार एक भक्त ने भगवान श्रीरामकृष्ण से पूछा, 'महाराज, यदि दुष्ट लोग हमें हानि पहुँचाने में तत्पर हो जाएँ, तो भी क्या हमें कुछ प्रतिक्रिया न करके निष्क्रिय रहना चाहिए?' श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'संसार में रहते हुए दुष्टों का सामना करने के लिए थोड़ी-बहुत कठोरता भी आवश्यक है, परन्तु किसी के प्रति बदला लेने के भाव से कुछ नहीं करना चाहिए।'

क्रोध दिखाए बिना इस संसार में रह पाना कठिन है। समाज में दुष्ट लोग भी हैं, उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाए? श्रीरामकृष्ण ने सलाह दी कि दुष्टों के प्रति थोड़ा क्रोध दिखाना आवश्यक है, परन्तु उन्हें घृणा करना हानिकारक है। इस बात को समझाने के लिए उन्होंने एक कथा सुनायी -

'चरवाहों के कुछ बच्चे एक चरागाह में अपनी गायें चराया करते थे। वहीँ एक विषधर सर्प भी रहता था। सर्प के डर से सभी लोग

सजग रहते थे। एक दिन एक ब्रह्मचारी उस रास्ते से गुजर रहे थे। बच्चे दौड़कर उनके पास गए और बोले, “महाराज, उधर से मत जाइए, वहाँ एक विषधर सर्प रहता है।” ब्रह्मचारी ने कहा, “बेटा, मुझे उसका क्या डर है? मैं साँप का मंत्र जानता हूँ।” ऐसा कहते हुए वे चरागाह में उसी ओर आगे बढ़ते गए। ब्रह्मचारी को देखकर वह साँप फन फैलाकर तेजी से उनकी ओर आने लगा। साँप जब पास आ गया, तो उन्होंने मंत्रोच्चारण किया और साँप केंचुए के समान उनके चरणों में लोटने लगा। ब्रह्मचारी बोले, “सुन, लोगों को काटकर तू उन्हें इतना कष्ट क्यों देता है? ले, मैं तुझे मंत्र देता हूँ। इसे जपेगा तो ईश्वर पर भक्ति होगी। तुझे ईश्वर के दर्शन होंगे, फिर यह हिंसावृत्ति न रह जाएगी।” यह कहकर ब्रह्मचारी जी ने साँप को मंत्र दिया। मंत्र पाकर साँप ने गुरु को प्रणाम किया और पूछा, “प्रभो, मैं क्या साधना करूँ?” गुरु ने कहा, “इस मंत्र का जप कर और हिंसा छोड़ दे।” चलते समय ब्रह्मचारी जी फिर आने का वचन दे गए।

‘इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। चरवाहे बालकों ने देखा कि साँप अब काटता नहीं। वह ढेले मारने पर भी गुस्सा नहीं होता और एक केंचुए की तरह हो गया है। एक दिन चरवाहों ने उसके पास जाकर पूँछ पकड़कर उसे घुमाया और वहीं पटक दिया। साँप के मुँह से खून बह चला, वह बेहोश पड़ा रहा, हिल-डुल तक न सकता था। चरवाहों ने सोचा कि साँप मर गया और वे वहाँ से चले गए।

‘काफी रात हो जाने पर साँप होश में आया और धीरे-धीरे अपने बिल के भीतर गया। वह बुरी तरह घायल हो गया था। उसमें हिलने तक की शक्ति नहीं रह गयी थी। बहुत दिनों के बाद, जब उसकी पीड़ा थोड़ी कम हुई, वह भोजन की खोज में बाहर निकला। मारे जाने के बाद से वह केवल रात को ही बाहर निकलता था। हिंसा तो वह करता ही न था; सिर्फ घास-फूस, फल-फूल खाकर ही रह जाता था।

‘लगभग साल भर बाद ब्रह्मचारी जी फिर आए। आते ही वे साँप की खोज करने लगे। चरवाहों ने कहा, “वह तो मर गया।” पर ब्रह्मचारी को इस पर विश्वास न हुआ। वे जानते थे कि जो मंत्र वे दे गए थे, उसके सिद्ध हुए बिना साँप की देह छूट नहीं सकती थी। इधर-उधर ढूँढ़ते हुए वे अपने दिए हुए नाम से उसे पुकारने लगे। गुरुदेव की आवाज सुनकर साँप बिल से बाहर निकल आया और बड़े भक्ति-भाव से उन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मचारी जी ने पूछा, “क्यों, कैसा है?” उसने कहा, “जी! अच्छा हूँ।” ब्रह्मचारी जी ने पूछा, “तो तू इतना दुबला क्यों हो गया?” साँप ने कहा, “महाराज, जब से आप आज्ञा दे गए, तब से मैं हिंसा नहीं करता; फल-फूल, घास-पात खाकर पेट भर लेता हूँ, शायद इसीलिए दुबला हो गया हूँ।” सत्त्वगुण बढ़ जाने के कारण वह किसी पर क्रोध न कर सकता था, इसीलिए चरवाहों द्वारा मारे जाने की बात भी भूल गया था।

‘ब्रह्मचारी जी ने कहा, “सिर्फ न खाने से ही किसी की ऐसी दशा नहीं होती, कोई दूसरा कारण अवश्य होगा, तू अच्छी तरह सोच तो।” अब साँप को चरवाहों की मार याद आयी। वह बोला, “हाँ महाराज, अब याद आया, एक दिन चरवाहों ने मुझे पटक-पटककर मारा था। उन अज्ञानियों को तो मेरे मन की अवस्था मालूम नहीं थी। वे क्या जानें कि मैंने हिंसा करना छोड़ दिया है!” ब्रह्मचारी जी बोले, “राम, राम, तू ऐसा मूर्ख है? अपनी रक्षा करना भी नहीं जानता? मैंने तो तुझे काटने से ही मना किया था न, फुफकारने से तुझे कब रोका था? फुफकार मारकर उन्हें भय क्यों नहीं दिखाया?”

इस प्रकार आवश्यकतानुसार दुष्टों पर फुफकारना चाहिए, भय दिखाना चाहिए, ताकि वे कहीं हमारा अनिष्ट न कर बैठें, परन्तु उनका अनिष्ट नहीं करना चाहिए।

यमराज के मन में दया नहीं है

पन्द्रह साल का एक सुन्दर और बुद्धिमान बालक था। वह कुसंग से सर्वथा दूर रहा। पढ़ाई में वह कभी पीछे नहीं रहा। वह अपने माता-पिता का इकलौता तथा परम आज्ञाकारी पुत्र था। उसके सदगुणों के कारण उसके मित्र भी उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। एक दिन वह अपने मित्रों के साथ कहीं बाहर गया। यात्रा के दौरान ही दल के नेता को सहसा ख्याल आया कि वह बालक कहीं दिख नहीं रहा है। उसकी खोज होने लगी। किसी को याद आया कि वह नदी में तैरने गया था और वहाँ से वापस नहीं लौटा। काफी तलाश करने के बाद उस बालक का शव ही मिल सका। उसके माता-पिता को सूचना दी गयी। पिता पर तो मानो वज्रपात ही हो गया। पुत्र का स्मरण करते हुए वे दुःख से अभिभूत हो गए। माता शान्त दिख रही थी। ऐसा लगा कि वे मौन-भाव से दुःख को स्वीकार रही हैं। अपने पुत्र को यात्रा पर ले जानेवाले लोगों को उन्होंने कोसा भी नहीं। इसके लिए उन्होंने किसी को दोषी भी नहीं माना। यहाँ तक कि वे अपने पति को ही सांत्वना देने लगीं। आत्मसंयम के साथ उन्होंने रिश्तेदारों को फोन किया, पुलिस को सूचित किया, अपने पति के कार्यालय में भी सूचना भेजी और साथ ही उन्होंने पुत्र के शव को शवदाह-गृह ले जाने का प्रबन्ध भी किया। जब लाश चिता पर रखी जाने लगी, केवल तभी वे दुःख सहने में असमर्थ होकर विलाप करने लगीं।

एक अन्य युवक इंजीनियरिंग का छात्र था। वह सर्वदा व्यंग-विनोद के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया करता था। उसकी बचकाना हरकतों पर डाँटते हुए उसकी माँ ने पूछा, 'तुम इतना हँसते क्यों हो? तुम्हें क्या हो गया है?' उसने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, 'कल्पना करो कि मैं कल ही मर जाऊँ और यमराज यदि मुझसे पूछें कि मैंने पृथ्वी

पर क्या किया, तो कम-से-कम मैं इतना तो कह सकूँगा कि मैंने लोगों को हँसाया ।’ अगले ही दिन वह बड़े विचित्र ढंग से शहर में साइकिल चलाते समय तेज गति से आती हुई एक ट्रक से कुचलकर मारा गया । यमराज के दूत किसी के प्रति भी दया नहीं दिखाते । कष्ट देना ही उनका खेल है ।

श्री नायर त्रिवेन्द्रम विश्वविद्यालय में मलयालम भाषा के प्राध्यापक थे । वे संस्कृत के भी अच्छे जानकार थे । परन्तु वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे । विवाह के कई वर्षों बाद उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । उनका वह पुत्र छह वर्ष की आयु में ही बीमार पड़ गया । अन्तिम साँस लेने के पूर्व उसने माँ से अपने पिता को पास बुलाने के लिए कहा । पिता के पास आने पर बालक ने तेज स्वर में एक प्रार्थना का पाठ किया, और उसके बाद काल-कवलित हो गया । श्री नायर तो स्तब्ध रह गए; उन्हें बड़ा धक्का लगा । यह घटना उनके जीवन में युगान्तकारी साबित हुई । मृत्यु ने उन्हें एक पाठ पढ़ा दिया । वे ईश्वर में विश्वास करने लगे ।

मृत्यु बिना किसी चेतावनी के चोट करती है । उस क्षण-विशेष में मनुष्य स्वयं को बिलकुल असहाय महसूस करता है । जब पलक झपकते ही जीवन की सभी आशाएँ ध्वस्त हो जाती हैं, तो वज्र-कठोर हृदय भी काँप उठता है । आज का जीवित व्यक्ति ही कल राख में परिणत हो जाता है । इससे सर्वाधिक साहसी हृदय भी टूट जाता है । प्रियजन भी उस मृत देह को ऐसे त्याग देते हैं मानो वह काष्ठ या पत्थर का हो ।

दुःख और मृत्यु

यह मृत्यु है क्या? क्या यह एक भयंकर घटना नहीं है?
उत्तर में हमारे ऋषिगण ‘हाँ’ भी कहते हैं और ‘नहीं’ भी ।

वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर बताते हैं कि अज्ञानी लोगों के लिए मृत्यु भयंकर है, पर ज्ञानियों के लिए नहीं। मृत्यु जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। परन्तु बड़ी विचित्र बात यह है कि बुद्धिमान और शिक्षित लोग भी इसके बारे में नहीं सोचते। मृत्यु के बारे में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प और सीमित है। इसके बावजूद हम बुद्धिमान और प्रबुद्ध होने का दावा करते हैं।

मृत्यु तथा परलोक के रहस्य को सुलझाने का दावा करनेवाले पुरोहित तथा धार्मिक लोग कहते हैं, 'अपने चढ़ावों तथा उपहारों के द्वारा स्वर्ग में अपनी जगह सुरक्षित करा लो और भविष्य के बारे में आश्वस्त हो जाओ।' पर वे इस गूढ़ विषय पर चिन्तन-मनन करने में लोगों को प्रोत्साहित नहीं करते।

मनुष्य अपने चारों ओर लोगों को काल-कवलित होते तथा सगे-सम्बन्धियों को यह धराधाम छोड़कर जाते हुए देखकर स्तब्ध रह जाता है। क्षण भर के लिए उसे शोक भी होता है। इसके बाद वह शायद स्वयं को सांत्वना देते हुए कहता है, 'आगे या पीछे, सबको एक-न-एक दिन तो मरना ही होगा।' परन्तु 'मृत्यु क्या है? और उसके परे क्या है?' - यह प्रश्न वह स्वयं से पूछने में प्रायः कतराया करता है। निकट के सम्बन्धियों की मृत्यु हो जाने पर वह सचमुच ही स्तब्ध रह जाता है। इस मृत्यु के फलस्वरूप वह तीव्र व्यथा का अनुभव करता है और इस वियोगजनित असहायता तथा निराशा का अनुभव करते हुए आँसुओं की झड़ी लगा देता है। परन्तु कुछ ही दिनों बाद उसका दुःख विस्मृत हो जाता है। वह फिर से अपनी दिनचर्या में डूब जाता है। और जब उसकी अपनी मृत्यु सिर पर आती है, तो वह अतीव पीड़ा तथा भय के साथ बिना किसी तैयारी के ही चल देता है। अधिकांश लोग कीड़े-मकोड़ों की भाँति मर जाते हैं। वैसे कुछ लोग कहते हैं, 'मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है, अतः उसके आने पर हमें

उसका सामना करना चाहिए ।' मृत्यु के बारे में हमारे दृष्टिकोण का सारांश बताते हुए कुबलर रॉस कहते हैं, 'यह एक ऐसा विषय है, जिससे हमारा यौन-पूजक तथा विकास-प्रेरित समाज कन्नी काटता रहता है ।' कभी-कभी कोई खास मौत हमें मृत्यु के स्वरूप की एक झलक दिखा देती है । वह व्यक्ति को अपरिहार्य का सामना करने का साहस भी प्रदान कर सकती है । ये घटनाएँ तथा अनुभव हममें साहस का भाव जाग्रत करने में सहायक होते हैं । परन्तु व्यक्ति जब तक मृत्यु के तत्त्व को नहीं समझता, तब तक भयभीत ही बना रहता है ।

एक दम्पति के एक सात वर्ष का पुत्र था । थोड़े ही दिनों की बीमारी से उसका जीवन-दीप बुझ गया । उस शोक से राहत पाने के निमित्त वे लोग दक्षिण भारत की ओर चले गए । वहाँ आजीविका के लिए उन्होंने कोई काम ढूँढ़ लिया । परन्तु माँ अपने दिवंगत पुत्र को भुला नहीं सकी । वह सोचती, 'मेरे पुत्र को भगवान ने आखिर क्यों छीन लिया?' वह अपने पुत्र के शोक से अतिशय अभिभूत थी । उसकी मनःस्थिति ऐसी थी कि सांत्वना का उस पर कोई प्रभाव न होता और तर्क-वितर्क का तो कोई सवाल ही नहीं था । एक युवा पुत्र को खोनेवाला व्यक्ति यह कहकर स्वयं को दिलासा दे सकता है, 'केवल मैंने ही तो अपना पुत्र नहीं खोया है । इस संसार में पुत्र-शोक से सन्तप्त और भी तो अनेक लोग हैं ।' वस्तुतः यह मृत्यु के साथ एक व्यावहारिक सामंजस्य तथा अपरिहार्य के साथ समझौता कर लेना है । केवल मृत्यु के सच्चे स्वरूप को समझ लेनेवाला व्यक्ति ही ऐसी परिस्थितियों में शान्त तथा साहसी बना रह सकता है ।

दुःख के विषय में हमारी प्रतिक्रिया

कठिनाइयाँ आने पर हर व्यक्ति की प्रतिक्रिया समान नहीं होती । कुछ लोग साहस तथा शान्त चित्त से दुःखों को सहते हुए जीवन का

सामना करते हैं। किसी प्रियजन का बिछोह आदि कुछ घटनाएँ तथा परिस्थितियाँ हैं जो हर व्यक्ति के जीवन में अपरिहार्य रूप से आती हैं।

पति या पत्नी में से किसी एक का देहान्त हो जाने पर बचे हुए जीवन-साथी के लिए बीमारी या मृत्यु की सम्भावना दस फीसदी बढ़ जाती है। एक साथ रहनेवाले दम्पति की अपेक्षा तलाकशुदा पतियों या पत्नियों में बीमारियाँ बारह गुना अधिक पायी जाती हैं। दुरवस्था, असहायता तथा निराशा से पीड़ितों की शारीरिक बीमारियों में अस्सी प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है। उनकी पीड़ा सहने की शक्ति भी बहुत कम हो जाती है।

दुःख और कष्ट प्रत्येक मनुष्य के जीवन का अपरिहार्य अंग हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी लोग होते हैं, जो समुचित दृष्टिकोण, प्रार्थना और सत्संग की सहायता से ऐसी स्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करके शरीर तथा मन पर पड़नेवाले उसके दुष्प्रभावों को कम करने में समर्थ होते हैं।

तथापि ऐसी संकटपूर्ण स्थितियों का सामना होने पर हममें से अधिकांश लोगों का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। तब दुर्बलमना लोग तात्कालिक रूप से अपने दुःख को भुलाने हेतु सुरा या मादक द्रव्यों का सहारा लेते हैं। वस्तुतः इससे वे और अधिक दुर्बल बन जाते हैं। आत्महत्या करनेवाले लोग उससे भी अधिक दुर्बल होते हैं। इनमें से कोई भी उपाय हमें भय, क्रोध या चिन्ता से मुक्त नहीं कर सकता। तो फिर, क्रोध, भय तथा चिन्ता के इस पाश से निकलने का क्या उपाय है?

अटल, अपरिहार्य

हर व्यक्ति के जीवन में कुछ अपरिहार्य घटनाएँ होती हैं। कुछ घटनाएँ प्रत्याशित और कुछ बिलकुल ही अप्रत्याशित होती हैं। हममें

से अधिकांश लोग अटल तथा अपरिहार्य घटनाओं का सामना करना और उनके साथ तालमेल बैठाना नहीं जानते ।

मनुष्य को निःसन्देह आशावादी होना चाहिए । उसे दुर्भाग्य की आशंका से अवसादग्रस्त होने की कतई जरूरत नहीं है । पर जीवन में सब कुछ परिवर्तन या विनाश के भय से रहित, सुचारु रूप से चलता रहेगा - ऐसा विश्वास क्या एक भ्रामक विचार मात्र नहीं होगा? केवल कल्पना-जगत में ही ऐसी पूर्ण निरापद अवस्था का अस्तित्व हो सकता है ।

प्रायः युवावस्था में ही, जब शरीर सबल तथा आत्मविश्वास प्रबल रहता है, व्यक्ति हवाई किले बनाता है और पूर्णता के सपने देखता है । पर क्रमशः विफलता, आत्मसंशय तथा दूसरों से प्रतिरोध का सामना होने पर असहायता तथा अभाव-बोध के कारण उसके पाँवों के नीचे की धरती खिसकने लगती है । इन समस्याओं में पड़कर व्यक्ति न तो सम्यक् चिन्तन कर पाता है, न दूसरों से सलाह ले पाता है और न ही चिन्ताओं से राहत प्राप्त कर पाता है । इसलिए अपरिहार्य स्थितियों का सामना करने हेतु मन की समुचित तैयारी आवश्यक है ।

आकाश सहसा काले मेघों से आच्छन्न हो सकता है और क्षण भर में ही गरज-तरज के साथ भारी वर्षा हो सकती है । क्या हम वर्षा को रोक सकते हैं? भीगने से बचने हेतु हमें अपने सिर पर छत की और बाहर जाने पर छाते की व्यवस्था करनी होगी । वन-पथ पर विचरण करते समय हम उसे कंकड़ों तथा कँटीली झाड़ियों से पूर्णतया मुक्त नहीं कर सकते, अतः पैरों में काँटों की चुभन से बचने के लिए हमें जूते पहनने होंगे । हम जीवन की कठिनाइयों, विफलताओं, अभावों, दुर्भाग्यों तथा पतनों को नापसन्द कर सकते हैं, परन्तु हम उनसे बच नहीं सकते । उनका सामना करने के लिए हमें समुचित ढंग से प्रशिक्षित होने की जरूरत है । हमें समस्या के मूल तक जाना होगा ।

सर्वोपरि हमें अपने मन पर नियंत्रण पाने और समस्याओं का शान्त भाव से तथा साहसपूर्वक डटकर मुकाबला करने हेतु जीवन के नियमों और सिद्धान्तों को भी समझ लेना होगा।

अपने मन को शान्त रखने के इच्छुक लोगों को सावधानी के साथ अनावश्यक समस्याओं से बचना चाहिए। अटल व अपरिहार्य समस्याओं का सामना करते समय अंगुत्तर-निकाय में उल्लिखित भगवान बुद्ध के निम्नलिखित वचन बड़े सहायक हैं -

‘प्रिय भिक्षुओ ! गृहस्थों, भिक्षुओं तथा नर-नारी सभी को अधोलिखित पाँच बातें सदा-सर्वदा स्मरण रखनी चाहिए -

१. वृद्धावस्था अपरिहार्य है, अटल है; इससे बचा नहीं जा सकता।

२. कभी-कभी हम बीमार भी पड़ जाते हैं। यथासाध्य प्रयास करके भी हम इससे पूरी तौर से मुक्त नहीं हो सकते।

३. मनुष्य को एक-न-एक दिन अवश्य मरना होगा; इससे बचा नहीं जा सकता। कोई व्यक्ति बड़े सहन भाव से दूसरों को परामर्श दे सकता है - “चिन्ता की क्या बात? मृत्यु के आने पर देख लिया जाएगा।” परन्तु इस शिक्षा का पालन करना आसान नहीं है।

४. हमारी सभी प्रिय चीजों में परिवर्तन, हास, नाश तथा वियोग अवश्यम्भावी है। हम इससे बच नहीं सकते।

५. हमारे विचार तथा भाव ही हमारे जीवन को आकार देते हैं। हमें अपने भले-बुरे कर्मों का फल अवश्य चखना होगा।’

प्रिय भिक्षुओ

वृद्धावस्था का चिन्तन करने से युवावस्था का दर्प भले ही पूर्णतया नष्ट न हो, परन्तु कुछ कम तो अवश्य हो जाएगा। इसी तरह, बीमारी और रोगजन्य असहायता का चिन्तन करने से हमारे

स्वास्थ्य का गर्व चला जाता है, मृत्यु का चिन्तन और अनुशीलन करने से जीवन के प्रति आसक्ति चली जाती है और अपनी प्रिय चीजों में परिवर्तन तथा उनसे होनेवाले वियोग पर चिन्तन करने से हमारा लोभ चला जाता है ।

जब मैं अनुभव करने लगता हूँ कि अपनी वर्तमान अवस्था के लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ तथा मैं ही अपना भाग्य-निर्माता हूँ, तो बुरे विचार तथा कर्म की प्रवृत्तियाँ घट जाती हैं ।

इन पाँचों बातों का चिन्तन करते-करते मनुष्य का अहंकार चला जाता है । वह लोभ व दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त होकर अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ने में समर्थ हो जाता है । तब, वह अटल व अपरिहार्य का सामना करने हेतु मनोबल प्राप्त कर लेता है ।

जब ज्ञानालोक का उदय होता है

यह समझ पाना कठिन नहीं है कि एक अज्ञात शक्ति इस संसार को चलाती है । परन्तु हम उसको प्रायः अनदेखा करते रहते हैं । हम अपने जन्म के पूर्व और मृत्यु के बाद की बातें नहीं जानते । हम अपने सुख व दुःख के कारणों को भी नहीं जानते । हम यह भी नहीं जानते कि इस पृथ्वी के सभी प्राणी कुछ सूक्ष्म नियमों द्वारा संचालित होते हैं । हम सोचते हैं कि जन्म से लेकर मृत्यु के बीच की अवधि ही महत्त्वपूर्ण है । परन्तु क्या हमारे साधारण ज्ञान के द्वारा जीवन में आनेवाली जटिल समस्याओं का समाधान ढूँढ़ पाना सम्भव है?

ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत तथा गहन होने पर हम सहज भाव से उस पथ की झलक पा लेते हैं, जिससे जीवन की अटल तथा अपरिहार्य समस्याओं का सामना किया जा सकता है ।

अज्ञान ही समस्त दुःखों का मूल कारण है । अज्ञान के दूर हो जाने पर मन स्वच्छतर तथा दृढ़तर होता जाता है । हमारे पूर्वजों का

दृढ़ विश्वास था कि वे शरीर नहीं बल्कि शरीर के निवासी (आत्मा) थे। वे लोग मृत्यु की समस्या का कैसे सामना करते थे, महान कन्नड़ लेखक एम. वी. अयंगर ने एक उदाहरण के साथ बताया है - 'मेरे सुपरिचित एक सम्प्रान्त बुजुर्ग सज्जन जीवन की अन्तिम साँसें गिन रहे थे। सम्भवतः उनके जीवन के केवल दो ही दिन शेष थे। जब मैं उनके पास बैठा, तो वे बोले, "गजेन्द्र अभी मुक्त नहीं हुआ।" उनका अभिप्राय था कि उनकी आत्मा अब भी भौतिक शरीर में आबद्ध है। उन वृद्ध व्यक्ति को मृत्यु उतनी भयावह नहीं लग रही थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि मृत्यु के माध्यम से उनके प्रभु उन्हें भौतिक शरीर के बन्धनों से मुक्त कर देंगे। वे शान्तिपूर्वक मृत्यु के क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। सम्भवतः वे मृत्यु से मिलने को उत्सुक थे।'।

अपरिहार्य का सामना करने का उनका ढंग निराला ही था।

नेताओं की अज्ञानता

शायद ही कोई इन उदात्त मूल्यों को हमारी शिक्षा-प्रणाली या हमारे पारिवारिक या सामाजिक आचार-संहिता में जोड़ने की सोचता है। फिल्मों व नाटकों के निर्माता, लेखक, शिक्षक आदि भी ऐसे विचारों की परवाह नहीं करते। हमारे सुधारक तथा राजनेता सोचते हैं कि लोगों में आपसी उत्तेजना, क्रोध या घृणा फैलाए बिना कोई अच्छा सामाजिक कार्य हो ही नहीं सकता। शोषित और निर्बल वर्गों में यह भावना घर कर गयी लगती है कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से उन्नत लोगों पर हमला या निन्दा करना ही उनके लिए आशा की एकमात्र किरण है। सच्चे धर्माचार्य इस विषय में जनता का मार्गदर्शन कर सकते हैं। परन्तु तथाकथित धार्मिक लोग भी अपने राजनीतिक मित्रों की ही भाँति अपनी श्रेष्ठता की भावना से अभिभूत रहते हैं। वे अन्य मतों व पथों के अनुयायियों की निन्दा करके समाज में

असहिष्णुता तथा हिंसा फैलाते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि सामान्य सरलमना ग्राम्य लोगों की अपेक्षा तथाकथित शिक्षित लोग चिन्ता, भय तथा बेचैनी से कहीं अधिक ग्रस्त होते हैं।

उस ज्ञान तथा शिक्षा का उपयोग ही क्या है, जो हमारे अवसाद को दूर करने में मदद नहीं कर सकती और हममें जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं उत्पन्न कर सकती? क्या यह एक उचित प्रश्न नहीं है? यदि वे लोग हमें भला और सुखी जीवन जीने हेतु प्रेरित नहीं करते, तो कम-से-कम वे हमें उग्र उत्तेजना और ईर्ष्या की नाली में तो न गिराएँ।

इसका उत्तर यहाँ है

चाहे कोई शिक्षित हो या निरक्षर, धनी हो या गरीब, अन्तर्मुखी हो या बहिर्मुखी, विवाहित हो या अविवाहित और चाहे वह किसी भी धर्म या मत का अनुयायी हो — हर व्यक्ति अपने जीवन में सुख और समृद्धि हेतु प्रयत्नशील है। हमारी समस्याएँ, चिन्ताएँ एवं व्यथाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, परन्तु अपने आन्तरिक संसाधनों के द्वारा हमें उन पर विजय प्राप्त करनी है। इस हेतु अपने दृष्टिकोणों, चिन्तन-प्रणाली तथा आचरण में बदलाव लाना आवश्यक है। घृणा, शिकायत, क्रोध और नकारात्मक दृष्टिकोण से तो हमारी समस्याएँ बदतर और दुर्जेय होती जाती हैं। सामाजिक समरसता से रहित स्वार्थपरता कभी भी शान्ति और सुख का मार्ग नहीं हो सकती। सद्गुणों के विकास तथा परिपक्वता के द्वारा ही व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। जीवन को नियंत्रित करनेवाले सूक्ष्म नियमों में विश्वास; मन, आत्मा और जीवन-लक्ष्य के बारे में स्पष्ट समझ होना जरूरी है। धैर्य तथा अभ्यास से इन विषयों का गहनतर ज्ञान प्राप्त होता है। याद रहे कि दुःख-कष्ट

इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि हमारे पास क्या है, अपितु इस पर कि हम स्वयं क्या हैं।

मन की अथाह शक्ति

मन किसी रोग को पैदा कर सकता है या उसे ठीक भी कर सकता है। धैर्य, प्रेम, सहानुभूति, उदारता, निःस्वार्थता आदि सकारात्मक गुण मानव-देह रूपी इस यंत्र के सभी अंगों को सुन्दर, स्वस्थ तथा सुखद रूप से चलाते हैं। पर नकारात्मक विचारों से भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, निराशा और स्वार्थपरता का जन्म होता है, जो पूरे शरीर को प्रभावित करके उसे रोगी कर देते हैं। तुम्हारे मन में यह बात दृढ़तापूर्वक अंकित हो जाए, इस हेतु मैं दुबारा कहता हूँ - मन किसी रोग को पैदा कर सकता है या उसे ठीक भी कर सकता है।

प्रसन्नता, शान्ति, साहस, आत्मविश्वास, संकल्प-शक्ति आदि सकारात्मक मानसिक अवस्थाएँ शरीर को स्वस्थ रखने में किसी भी टॉनिक से अधिक प्रभावकारी हैं।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा था कि जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने लिए रेशम का कोया बनाता है, उसी प्रकार मन भी अपनी आवश्यकता के अनुसार शरीर का गठन करता है।

ज्ञानियों का कहना है कि मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है।

विष और अमृत - दोनों ही विचार नामक पदार्थ से उत्पन्न होते हैं। अनेक लोग जाने या अनजाने ही विष पैदा कर लेते हैं। तथाकथित बुद्धिमान भी इस मूर्खता में फँस जाते हैं। यदि हम मन के स्वभाव तथा उसकी कार्य-प्रणाली को समझ लें, तो हम विष की जगह अमृत उत्पन्न कर सकते हैं। मन क्या है? पारिभाषिक जटिलताओं में न जाकर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि मन

एक ऐसी शक्ति है, जिसमें असंख्य विचार, भावनाएँ, कल्पनाएँ और संकल्प आदि, संक्षेप में कहें तो इच्छा, क्रिया और ज्ञान, निहित रहते हैं। यह एक सूक्ष्म और जटिल शक्ति है, जो हमारे व्यक्तित्व को आकार देती है। इस शक्ति की मदद से हम अपने भाग्य को रूपायित करते हैं। हमारे सारे कर्म तथा उपलब्धियाँ मन में निहित भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं के ही परिणाम हैं। एक प्रसिद्ध विचारक कहते हैं, 'यदि तुम एक माह तक रोजाना पाँच बार अपने विचारों का परीक्षण करो, तो पता चलेगा कि तुम किस प्रकार अपने भविष्य का गठन कर चुके हो। यदि तुम अपने कुछ विचारों को पसन्द नहीं करते, तो बेहतर होगा कि आज से ही उन विचारों तथा भावनाओं में बदलाव लाना आरम्भ कर दो।' अतः हमें अपने विचारों की दिशा में परिवर्तन लाने का प्रयास करना चाहिए। हमें अपने सभी विचारों और प्रयासों को जीवन के सम्मुख स्थापित उच्च आदर्शों के रूपायन में लगा देना चाहिए।

आजकल कंप्यूटर अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं। हमारा मन भी प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है और यह कंप्यूटर से भी अधिक उपयोगी है। यदि हम मन में स्वस्थ एवं उदात्त विचारों तथा भावों को भरते रहें, तो इसके फलस्वरूप हमें प्रसन्नता, शान्ति और सन्तोष की प्राप्ति हो सकती है। लोग इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। हमें ब्रह्माण्ड में एक व्यवस्था दीख पड़ती है, जिसे वेदों में ऋत कहा गया है। ब्रह्माण्ड की सारी चीजों को यह ऋत ही नियंत्रित करता है। सूर्य, चन्द्र, तारे, ग्रह - सभी आकाश में घूम रहे हैं। दिन और रात तथा विभिन्न मौसम आते-जाते रहते हैं। इन सबके पीछे एक सूक्ष्म व्यवस्था है। यह सुव्यवस्था केवल बाह्य जगत में ही नहीं है, हम इसे अन्तर्जगत में भी पाते हैं। दिल की धड़कन, श्वसन, रक्त-संचार, निद्रा तथा जागृति - सभी एक सुसंगत प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं। एक

उच्चतर नियम भी है, जो मनुष्य के सुख और दुःख को नियंत्रित करता है। हर सफलता के पीछे अनुशासन और व्यवस्था होती है। हमारा जीवन अनुशासित तथा व्यवस्थित रूप से संचालित होना चाहिए। मानव-मन रूपी प्रकृति-प्रदत्त इस कंप्यूटर को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसमें निष्पक्ष निरीक्षण, निःस्वार्थ दृष्टिकोण, लक्ष्योन्मुख प्रयास और आनन्द के भाव भर देने चाहिए। इसमें आलस्य, लापरवाही, एकाग्रता का अभाव, क्रोध और पूर्वाग्रहग्रस्त विचारों को भरने से यह बेकार हो जाता है। अतः मन में भरे जानेवाले विचारों तथा भावों के बारे में हमें बहुत सावधान रहना चाहिए।

कालजयी सरल उपचार

‘Edgar Casey Reader’ ग्रन्थ के ‘Health in your Design’ (‘आपकी स्वास्थ्य-योजना’) अध्याय से डॉ. रॉय कर्कलैण्ड द्वारा दिए गए उद्धरण के अनुसार रोगों को दूर करने के कुछ प्राचीन और आजमाए हुए सरल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

१. संसार के सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति, प्रेम तथा कल्याण का भाव रखने से मनुष्य आन्तरिक आनन्द तथा प्रसन्नता प्राप्त करता है और इससे शरीर में सभी पाचक एंजाइमों के उचित एवं निर्बाध निःसर्जन में सहायता मिलती है और व्यक्ति उनसे सम्बन्धित रोगों से मुक्त हो जाता है।

२. निःस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता एवं हार्दिक उदारता के भाव विकसित करके व्यक्ति शारीरिक रूप से सबल बनता है और मानसिक रूप से स्थिरता की उपलब्धि करता है और तब उसके बारम्बार बीमार पड़ने की सम्भावना नहीं रह जाती।

३. यदि कोई अहंकार त्यागकर मैत्री-भाव अपना ले और प्रसन्न रहने का अभ्यास करते हुए आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़े, तो वह आपसी घृणा-द्वेष के घावों को भर सकता है।

४. सहायता, उदारता तथा सहयोग के सदगुणों को आत्मसात् करने से व्यक्ति को आन्तरिक सामंजस्य का भाव प्राप्त होता है, जिससे उसकी नसों तथा मांसपेशियों को राहत मिलती है। इससे जोड़ों की कठोरता चली जाती है और मनुष्य को शारीरिक और मानसिक ताजगी का अनुभव होता है।

५. यदि हम दूसरों के प्रति आत्मीयता एवं विश्व-बन्धुत्व के भाव को अपने रग-रग में आत्मसात् कर लें, तो चोरी-डकैती, हत्या, अन्याय और आदर्शों का अवमूल्यन रुक जाएँगे।

६. धैर्य ही लाभकारी है - इस सिद्धान्त को अंगीकार करके यदि हम धैर्य और सहनशीलता जैसे सदगुणों का विकास करें, तो हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है, जीवन प्राणवन्त हो जाता है और धरती स्वर्ग में परिणत हो जाती है।

७. 'बातें कम, काम ज्यादा' - इस नीति का पालन करनेवाले जो लोग अनावश्यक वार्तालाप और व्यर्थ की चीजों से विरत रहकर सद्भाव के साथ अपने कर्तव्य में लगे रहते हैं, उन्हें किसी अस्पताल में रोगी बनकर बिस्तर पर लेटे रहने की नौबत नहीं आती। उनके लिए सुखी जीवन कोरा दिवा-स्वप्न नहीं, बल्कि एक वास्तविकता बन जाता है।

८. उचित निर्णय और विवेक से हमें प्रतिकूल तथा अदम्य परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

९. नियमित प्रार्थना शारीरिक स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त करती है। यह व्यक्ति के भीतर शक्ति और आत्मविश्वास का अजस्र स्रोत खोल देती है। फिर ऐसे लोग इस शक्ति और उत्साह को दूसरों में संचारित करने को प्रेरित होते हैं।

तुमने शिवलिंग देखा होगा। इसके ऊपर एक घड़े से धीरे-धीरे पवित्र जल गिरता रहता है। ठीक वैसे ही अध्यवसाय के द्वारा जब हम

अपनी भावनाओं को प्रशमित करने में समर्थ हो जाएँगे, तो हमारा मन सर्वदा प्रसन्न रहेगा और एक प्रसन्न मन किसी भी औषधि की अपेक्षा बेहतर स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है। औषधियों के सेवन से कुछ अप्रिय, प्रतिकूल प्रभावों की सम्भावना हो सकती है, परन्तु सद्-भावनाओं के विकास से स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

मन की शक्ति : एक महान सम्पदा

हमारे शास्त्र सद्भाव विकसित करने के विविध उपाय बताते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए किसी भी टॉनिक से अधिक उपकारी हैं। प्राचीन काल से ही हमारे देश के ऋषि-मुनियों ने काफी अध्ययन तथा अनुसन्धान के द्वारा सद्गुणों एवं सद्-भावनाओं के विषय में अनेक तथ्यों की खोज की है। यदि हम उन्हें अपने जीवन में नहीं अपनाते, तो शान्ति तथा आत्मविश्वास प्राप्त करने की हमारी आशा एक स्वप्न मात्र ही रह जाएगी। यह बात सर्वविदित है कि नशीले पदार्थ मन में क्षणिक स्फूर्ति तो उत्पन्न करते हैं, परन्तु ये शरीर के साथ-साथ मन को भी दुर्बल बनाकर, मनुष्य को नैतिक रूप से बरबाद कर देते हैं। शराब तथा मादक पदार्थों के आदी लोग स्वयं को, अपने परिवार को तथा अपने आसपास के समाज को दूषित कर डालते हैं। विशेषज्ञ अपने प्रामाणिक आँकड़ों से यह बात सिद्ध करते हैं।

यह सही है कि योगासन, विपस्सना आदि स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोग-निवारण की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी हैं। परन्तु योगासन का अभ्यास करनेवाले बहुत-से लोग इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि योगशास्त्र ने मन की पवित्रता को काफी महत्त्व दिया है। गलत उपायों से धनवान बना व्यक्ति, मन्दिर में भगवान को भेंट चढ़ाकर आध्यात्मिक नहीं बन सकता। अपने अन्तर में क्रोध, चिन्ता, भय, घृणा तथा ईर्ष्या के भावों को प्रश्रय देनेवाला व्यक्ति भले ही वैज्ञानिक

बारीकियों के साथ शीर्षासन का अभ्यास करे, परन्तु वह अच्छा स्वास्थ्य कायम रख पाने में समर्थ नहीं होगा। आसन का फल स्थायी न होकर, केवल क्षणिक ही होगा।

अमेरिका में दीर्घकाल तक वेदान्त के प्रचारक रहे स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी ने अपनी एक पुस्तक में अपने अनुभवों का विवरण दिया है। धर्म तथा साधना पर उनके व्याख्यानों को सुननेवाली एक महिला ने एक दिन भाषण के उपरान्त उनसे कहा, 'स्वामीजी, धर्म और साधना की अपेक्षा हमें मानसिक शान्ति तथा मनोबल को संरक्षित रखने का रहस्य जान लेना जरूरी है। यदि आप इसे प्राप्त करना सिखा दें, तो बड़ी कृपा होगी। हमें स्नायविक तनावों तथा क्षोभों के बन्धनों से खुद को मुक्त करने की परम आवश्यकता है।' अनेक लोग यह बात नहीं जानते कि मानसिक शान्ति और मनोबल को बचा रखने के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि अत्यन्त उपयोगी है।

अनेक प्रयोगों के द्वारा यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि तनाव तथा क्षोभों से राहत पाने के लिए विश्राम जरूरी है। शोध के इसी क्षेत्र में अग्रगण्य, हैस सीली, का कहना है कि सच्चे विश्राम की अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य सभी तरह के तनावों से मुक्त हो जाता है। वैसे सम्मोहन के द्वारा भी कुछ हद तक यह अवस्था प्राप्त हो सकती है, परन्तु वह क्षणिक होती है। इस अवस्था को स्थायी तौर से प्राप्त करने के लिए अध्यात्म-पथ का अनुसरण करना होगा। जब तक जीवन तथा सुख-दुःख के उद्भव के प्रति हमारे दृष्टिकोण में बदलाव नहीं आता, तब तक सच्ची शान्ति तथा विश्राम नहीं मिल सकते। अन्य साधनों से प्राप्त होनेवाला विश्राम केवल सतही और अस्थायी होता है।

पाश्चात्य विद्वान सामाजिक अधःपतन के कारण बताते हुए कहते हैं - 'भौतिकवाद की धुन हिंसावृत्ति को बढ़ावा देती है। हमारा

समाज, परिवार या अन्य किसी वस्तु पर नहीं, अपितु केवल सफलता पर ही आधारित है। सफलता के अभाव में लोग अवसाद-ग्रस्त हो जाते हैं। और अवसाद हिंसा तथा क्रूरता के पथ पर ले जाता है।'

समाज में सहयोग तथा मित्रता के स्थान पर प्रतियोगिता तथा ईर्ष्या को प्रोत्साहित करने में ही इसके सुख का मार्ग निहित है - अपने इस दृढ़ विश्वास का पुरस्कार हमें हिंसा-वृद्धि के रूप में मिलता है। स्पर्धा की भावना से आक्रामकता और विद्वेष की भावना को बढ़ावा मिलता है। स्वस्थ प्रतियोगिता अच्छी हो सकती है। इससे उत्पादन तो बढ़ सकता है, परन्तु इस वृद्धि के लिए हमें कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है! इसकी कीमत है - सामान्य जनता पर अत्याचार। वास्तव में भौतिकवादी दृष्टिकोण तथा विद्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा से परिचालित कोई भी व्यक्ति चिन्ताओं से मुक्त होकर मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यदि हम मानव के अस्थिर स्वभाव, इच्छाओं तथा कामनाओं की पूर्ति हेतु उसके संघर्ष तथा अनजाने ही उसके वासना-प्रवाह में बह जाने और उसकी असहाय अवस्था पर विचार करें, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि केवल आर्थिक तथा तकनीकी प्रगति के द्वारा मनुष्य को बेहतर बनाने की आशा नहीं की जा सकती। जर्मन दार्शनिक शॉपेनहावर ने मनुष्यों की तुलना साही नामक प्राणियों से की है। यदि अनेक साहियों को किसी संकीर्ण स्थान में ढकेल दिया जाए, तो वे एक-दूसरे के नुकीले काँटों से बिंधकर बरबाद हो जाएँगे। इसी प्रकार मानव की अति-स्वार्थपरता मानवजाति का विनाश कर सकती है। तो फिर मानव की स्वार्थपरता को कम करके उसे दूसरों को हानि पहुँचाने से रोकने का क्या उपाय है? विश्व-बन्धुत्व के भाव का आधार क्या है? इसकी प्रेरक-शक्ति क्या है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका हमें समुचित उत्तर चाहिए। वही समाज श्रेष्ठ है, जिसके सभी सदस्य अपनी स्वार्थपरता पर अधिकाधिक अंकुश लगाए रखें। ऐसे समाज में

ही एकता, शान्ति तथा सहयोग के भाव का विकास हो सकेगा। क्या आधुनिक समाज की भावना यही है? हम सर्वत्र ही अव्यवस्था, असहिष्णुता, घृणा और हिंसा का साम्राज्य देख रहे हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण है - असंयमित स्वार्थपरता। धन-सम्पदा का संग्रह, शक्ति तथा पद-प्रतिष्ठा की प्राप्ति तथा सस्ती लोकप्रियता की चाह - ये सब ही हमारे जीवन के उद्देश्य बन गए हैं। स्वेच्छाचार में लिप्त होना एक घिनौना भौतिकवादी दृष्टिकोण है और इससे स्वार्थपरता में वृद्धि होती है। अंग्रेज दार्शनिक हॉब्स ने कहा था - 'मनुष्य नैतिक आदर्शों के प्रति द्वेष रखनेवाला एक पशु मात्र है। शिक्षा तथा प्रशिक्षण देकर उसमें थोड़ा सुधार लाया जा सकता है।' यूनानी दार्शनिक प्लेटो कहते हैं, 'मनुष्य जन्म से ही विद्रोही है। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को इच्छानुसार अदृश्य होने की शक्ति मिल जाए, तो क्या कोई भी खजाना उससे सुरक्षित रह सकेगा? क्या उससे महिलाओं की लज्जा सुरक्षित रह सकेगी?' सामाजिक आक्रोश तथा बहिष्कार की आशंका और पुलिस के डण्डे के भय से ही बहुतेरे लोग भले तथा सज्जन बने रहते हैं। इन भयों के अभाव में मनुष्य अपने नैतिक मूल्यों को खो बैठेगा। दृढ़ इच्छाशक्ति तथा आत्मसंयम से सम्पन्न मुट्ठी भर लोग ही ऐसे मिलेंगे, जो किसी भी परिस्थिति में प्रलोभित नहीं होते। धर्म या आध्यात्मिक दृष्टिकोण अर्थात् ईश्वर तथा नैतिकता में विश्वास तथा सदाचार में पूर्ण निष्ठा की शक्ति ही मनुष्य को भ्रष्ट आचरण से दूर रखती है।

सच्चा धर्म और मन

सच्चा धर्म दो कार्य सम्पन्न करता है। एक तो, यह चंचल मन को प्रशिक्षित करके उसकी शक्तियों को एक उच्च आदर्श की ओर उन्मुख करता है। और दूसरा, यह मन को अन्य लोगों के साथ प्रेम

व आदर तथा सामंजस्यपूर्वक रहना सिखाता है। इस प्रबुद्ध स्वार्थ से किसी की क्षति या शोषण नहीं होता। धन और काम ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य जड़ पदार्थों का योग मात्र नहीं है। वह आत्मा है, जो अपने शरीर, मन और इन्द्रियों का उपयोग करता है। वह आत्मा ही हम सबके भीतर के 'मैं'-पन का भाव है। वह 'मैं' ही कर्ता और भोक्ता है। मनुष्य को विश्वास करना चाहिए कि वह आत्मा है और अन्य लोग भी वही आत्मा हैं। 'हम सब आत्मा हैं' - यह विश्वास हमें अपने शरीर और इन्द्रियों का दास बनाने के बजाय, उनका स्वामी बनाता है। इन्द्रिय-निग्रह से चित्तशुद्धि होती है और उससे मनुष्य आत्मसाक्षात्कार के पथ पर आगे बढ़ता है। आत्मबोध या अपने सच्चे स्वरूप की अनुभूति से समस्त दुःखों का नाश हो जाता है और व्यक्ति शाश्वत आनन्द प्राप्त कर लेता है। शास्त्रों तथा ऋषियों की यही सीख है। धर्म की शिक्षाओं का पालन करने पर वह सभी बाधाओं से हमारी रक्षा करके हमें जीवन के सनातन लक्ष्य की ओर ले जाता है। अपने सम्मुख कोई आध्यात्मिक आदर्श रखकर, उसके रूपायन हेतु प्रयत्नशील रहने पर हमारे जीवन का कायाकल्प हो जाता है। इसमें समय और सतत प्रयास की तो आवश्यकता है, परन्तु इस आदर्श की ओर बढ़ते रहने पर हम निश्चय ही शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति करेंगे और अनन्तः शाश्वत शान्ति पा लेंगे। आध्यात्मिक आदर्श के बिना किसी भी भौतिक शान्ति तथा प्रसन्नता का अनुभव क्षणिक ही है और अन्ततः उससे केवल दुःख ही उत्पन्न होता है।

मनो-दैहिक गड़बड़ियाँ मन के विक्षोभ के फलस्वरूप होती हैं और वे शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती हैं। अतएव, मानसिक स्वास्थ्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

मन की व्याधियों को दूर करने के लिए दवाइयाँ कारगर नहीं हो सकतीं। शुद्ध विचार तथा भावनाएँ ही मन को ठीक हालत में रखती

हैं। योग-दर्शन और अन्य धार्मिक परम्पराएँ सभी को दस नियमों के पालन का निर्देश देती हैं। ये हैं - अहिंसा, सत्य, चोरी न करना; ब्रह्मचर्य, संग्रह न करना, पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर से प्रेम।

मन का टॉनिक

सभी धर्मों में सत्य, ईमानदारी, उदारता तथा संयम का उपदेश दिया गया है। व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण का इच्छुक कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इन आदर्शों को अन्धविश्वास-मात्र कहकर इन्हें अनदेखा नहीं कर सकता। यहाँ तक कि कोई संशयी-बुद्धिवादी या वैज्ञानिक-दृष्टिकोण-सम्पन्न व्यक्ति भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। इन आदर्शों का लक्ष्य व्यक्तिगत उत्थान के साथ-साथ सामूहिक उत्थान भी है। ये आदर्श व्यक्ति को, न केवल सुखपूर्वक जीवन जीने, बल्कि अन्य लोगों को भी सुखी बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

दूसरों के कठोर वचनों और कृत्यों से आहत होने पर हमें कष्ट तथा पीड़ा का अनुभव होता है। वे ही वचन तथा कृत्य दूसरों को भी आहत करते हैं। अहिंसा मन का एक ऐसा सकारात्मक दृष्टिकोण है, जिसके द्वारा हम मन, वाणी तथा कर्म से सतत परहित में निरत रहते हैं। इसी तरह सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य एवं अलोलुपता जैसे अन्य सद्गुणों का अभ्यास व्यक्तिगत कल्याण के साथ सामूहिक कल्याण का भी पोषक है।

हमारे धर्मग्रन्थों में सत्य तथा ईमानदारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। महाभारत के ऋषिगण सत्य की महानता का उद्घोष करते कभी नहीं थकते। उसमें धर्मव्याध नाम के एक महापुरुष कहते हैं कि अहिंसा की जड़ें सत्य में स्थित होती हैं। सत्य की नींव के बिना वास्तविक प्रगति सम्भव नहीं है। वैज्ञानिकों ने सत्य की खोज के लिए

निरन्तर प्रयासों के द्वारा तथा उसकी गुत्थियाँ सुलझाने हेतु अपनी एकाग्र निष्ठा के द्वारा ही अद्भुत अविष्कार किए हैं। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' — 'सत्य की ही विजय होती है, मिथ्या की कदापि नहीं' — इस महान शिक्षा की सच्चाई सभी लोगों द्वारा समझी जा सकती है। गाँधीजी के लिए सत्य ही ईश्वर था। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है, 'सत्यनिष्ठ व्यक्ति मानो भगवान की गोद में बैठा है।'

बात को घुमाए-फिराए बिना यथार्थ रूप से कह देना सत्य का एक रूप है। परन्तु इसके अपवाद भी हैं। कभी-कभी हम दूसरों को आहत करनेवाले किसी अप्रिय या कटु सत्य को स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते। दिए हुए वचनों को पूरा करना सत्य का दूसरा रूप है। कर्म के प्रति समर्पण इसका तीसरा रूप है। यद्यपि सत्यनिष्ठ लोग परहित में लगे रहकर अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं, परन्तु वे अपने पथ से विचलित नहीं होते। वे अपनी ईमानदारी और वादों को कभी भूलते नहीं। सत्याचरण द्वारा ही सत्यस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। अतः सत्य हमारे व्यक्तिगत व सामूहिक जीवन में तथा हमारे सामाजिक व्यवहार में ओतप्रोत होना चाहिए। स्कूलों तथा कॉलेजों में अध्ययनरत हमारे छात्रों के हृदय में सत्य का संस्पर्श रहना चाहिए। सामाजिक कल्याण का यही एकमात्र उपाय है। इन उदात्त सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक आचरण करनेवाले किसी सत्यनिष्ठ और ईमानदार व्यक्ति को देखते ही लगता है कि वह चिन्ता, तनाव और क्रोध से मुक्त है। एक ईमानदार व्यक्ति अपने वचनों तथा कर्मों में एकरूपता लाने का प्रयास करता है। उसका विवेक पारदर्शी होता है तथा समझ सुस्पष्ट होती है। अपनी शक्तियों, दुर्बलताओं, प्रतिभाओं तथा सीमाओं के बारे में उसे कोई भ्रम नहीं रह जाता। वह सजगतापूर्वक अपने विशेष गुणों को निखारने और अपनी दुर्बलताओं तथा कमियों को घटाने हेतु प्रयत्नशील रहता है।

वह अपने सभी सगे-सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के साथ ईमानदारी का बर्ताव करता है। वह अपनी आय-व्यय का उचित हिसाब रखता है। वह अपने समस्त वादों की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है और किसी अपरिहार्य कारणों से उन्हें पूरा कर पाने में असमर्थ रहने पर वह क्षमा माँग लेता है। अनजाने में हुई अपनी गलतियों और कमियों के लिए वह बड़ों से क्षमा-याचना करता है और अत्यन्त सजग रहता है कि वैसा दुबारा कभी न हो। वह बिना पूछे दूसरों की, यहाँ तक कि अपने परिवार के सदस्यों की वस्तुओं को भी कभी स्पर्श नहीं करता। दूसरों से कुछ उधार लेने पर वह उसे यथासमय लौटा देता है। पूरे परिवार के लिए बनी किसी चीज को वह अकेले ही चोरी-छिपे कभी नहीं खाता। घर के भीतर और बाहर सर्वत्र ही, उसके व्यवहार में एकरूपता होती है। ऐसे आदर्श आचरण के फलस्वरूप मनुष्य को शान्ति मिलती है और वह मिथ्या भयों से मुक्त हो जाता है। इससे उसे सन्तोष मिलता है, उत्तरदायित्व की भावना बढ़ती है और उस व्यक्ति का चरित्र सबल हो जाता है। वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास नहीं करता, परन्तु उसका खरा चरित्र दूसरों को स्वयमेव प्रभावित करता है। अन्य लोग स्वेच्छया उसकी सहायता करने लगते हैं। लोग ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करके उसके सद्गुणों को अपनाने का प्रयास करते हैं। लोग न केवल उस पर विश्वास करते हैं, अपितु उसके अधिकाधिक संग की इच्छा भी करते हैं।

स्वच्छता, सन्तोष, साधना, स्वाध्याय या ईश्वर-प्रणिधान - ये पाँच सद्गुण मनुष्य को पूर्णता के पथ पर ले जाते हैं। व्यक्ति को शारीरिक स्वच्छता और मानसिक शुचिता - दोनों पर ही ध्यान देना चाहिए। किसे ऐसे प्रसन्न व शान्त मन की चाह नहीं होती, जो चिन्ता, दुःख, क्रोध, अहंकार तथा ईर्ष्या से मुक्त हो? क्या कोई ऐसा चंचल मन चाहता है, जो सभी काम लापरवाही से करता रहे? हम

सभी को इन्द्रियों तथा मन की एकाग्रता की जरूरत है। मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होनेवाला अध्ययन ही हमारे लिए अत्यावश्यक है। मनुष्य को श्रद्धा तथा भक्ति के साथ परम शक्ति - परमेश्वर की शरण में जाना चाहिए।

इन आदर्शों को अपने जीवन में अपनाकर हम समस्त चिन्ताओं, दुःखों तथा उनके फलस्वरूप होनेवाली मनो-दैहिक व्याधियों से मुक्त हो सकते हैं। उपरोक्त सभी सदगुणों की प्राप्ति का एक सीधा मार्ग भी है। आध्यात्मिक रूप से अति उन्नत एक वरिष्ठ संन्यासी ने एक बार सलाह दी थी, 'इस संसार में हर किसी को प्रसन्न रख पाने का मूर्खतापूर्ण प्रयत्न छोड़ दो।' 'भगवान सब कुछ देख रहे हैं' - यह दृढ़ विश्वास ही हमें सजग और सावधान बना देता है। 'ईश्वर हमारी मदद हेतु सदैव तत्पर हैं' - ऐसा दृढ़ विश्वास हमें अधिक उत्साहपूर्वक अपनी साधनाओं को जारी रखने की प्रेरणा देता है। 'ईश्वर सर्व-शक्तिमान और परम दयालु हैं' - ऐसा प्रबल विश्वास हमारी समस्त असुरक्षा-भावना तथा भय को दूर करके हमें भगवान की शरण लेने में सहायता करता है। 'ईश्वर हमारी माँ हैं तथा समस्त सुखों का एकमेव मूल हैं' - ऐसा जान लेने पर सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण चला जाएगा। जब मन स्पष्ट रूप से समझ लेता है कि ईश्वर की कृपा से सब कुछ सम्भव है, तब हम अधिक उत्साहपूर्वक उनकी अनुभूति का प्रयास करने लगते हैं। इस प्रकार ईश्वरान्वेषी साधक में उक्त दसों सदगुण प्रकट हो जाते हैं। कार्य करते समय हमारा मन वर्तमान में ही केन्द्रित रहना चाहिए। मन में अतीत या भविष्य का चिन्तन नहीं होना चाहिए। मनुष्य को ईश्वर पर निर्भरशील होना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थितियों से हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। सही समय आने पर भगवान की कृपा अवश्य होगी। हर व्यक्ति को अपना कार्य पूरी लगन से करना चाहिए और साथ-ही-साथ अपनी आध्यात्मिक साधना भी जारी रखनी चाहिए। कुछ

लोग तेजी से आगे निकल सकते हैं और कुछ पीछे छूट सकते हैं। कुछ लोगों में विशेष गुण तथा शक्तियाँ हो सकती हैं और दूसरों में उनका अभाव हो सकता है। इन भेदों के बावजूद सभी लोग भगवान की ही सन्तान हैं। इन समस्त व्यक्तिगत भेदों को भुलाकर हमें सामूहिक रूप से और दक्षतापूर्वक अपना कार्य करना चाहिए।

इस सहज परामर्श में धर्म का सार निहित है। जब तक हम अपनी सारी समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान नहीं पा लेते, तब तक मानसिक शान्ति की प्राप्ति असम्भव है।

विश्वास से सफलता

भले कर्मों से व्यक्ति को परम कल्याण तथा सफलता प्राप्त होती है - ऐसे दृढ़ विश्वास तथा आत्मविश्वास का मूल स्रोत ईश्वर पर विश्वास है। एक वैज्ञानिक और एक साधक - दोनों ही विश्वास की पूजा करते हैं। विश्वास ही जीवन है। विलियम जेम्स ने कहा है, 'विश्वास उन शक्तियों में से एक है, जिनके सहारे मनुष्य जीवित रहता है और इसके पूर्ण अभाव का अर्थ है विनाश।' विश्वास आध्यात्मिक जीवन की नींव है। यही ईश्वरीय कृपा प्राप्त करने का साधन है। विश्वास से सब कुछ सम्भव है। क्या एक ही दिन में ऐसा अचल-अटल विश्वास प्राप्त कर पाना सम्भव है?

ईश्वर के प्रति ऐसा विश्वास अर्जित करने के लिए साधक को दिन-रात, सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करते हुए, पथ की सफलता-विफलता को नजरन्दाज करते हुए, सभी सुख-सुविधाओं को त्यागकर, ज्ञान-विनय का आश्रय लेकर प्रयत्नशील रहना होगा। जैसे तैराकी सीखने के लिए जल में कूदना ही पड़ता है, वैसे ही विश्वास की प्राप्ति के लिए साधक को साधना-सिन्धु में कूदना पड़ता है। तैरने का अभ्यास करनेवाला व्यक्ति प्रारम्भिक अवस्था में भयभीत और विफल हो सकता है, परन्तु प्रारम्भिक

विफलताओं के बाद तैरना छोड़ देने से क्या कोई तैरना सीख सकेगा? इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भी सच्चा व सतत प्रयत्न जरूरी है। असफलता मिले तो भी क्या? हमें आगे बढ़ते ही जाना चाहिए। मानसिक तनावों से छुटकारा पाने हेतु हम शान्ति के सभी उपलब्ध तकनीकों का प्रयोग कर सकते हैं, पर साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्थायी शान्ति केवल आध्यात्मिक साधना से ही सम्भव है।

विश्वास भय को खा जाता है

जमीन पर रखे एक एक फुट चौड़े लकड़ी के पटरे पर एक बालक से चलने को कहो। वह निर्भय होकर उस पर चलता है। अब उसी पटरे को जमीन से बीस फीट ऊपर रखकर बालक से उस पर चलने को कहो। नीचे गिर जाने का भय उसके हृदय को जकड़ लेता है। कोई प्रोत्साहन-वाणी या पुरस्कार का प्रलोभन भी उसे उस कार्य को करने के लिए प्रेरित नहीं करता। पुरस्कार के आकर्षण के बावजूद भय उसकी इच्छाशक्ति पर हावी हो जाता है। वही बालक जो भय से मरा जा रहा था, धीरे-धीरे वही कार्य करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। थोड़ा-थोड़ा करके उस पटरे की ऊँचाई बढ़ाओ, तो बालक निर्भय होकर उस पर चलना सीख लेता है।

मन के सन्देह और भय से मुक्त होने पर विश्वास और बल प्राप्त होता है। प्रारम्भ में वह बालक उतनी ऊँचाई पर रखे हुए पटरे पर चलने से इसलिए डर रहा था, क्योंकि वह कदम लड़खड़ा जाने के भय से ग्रस्त था। परन्तु क्रमिक प्रशिक्षण ने उसे नकारात्मक भावनाओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ बना दिया और उसके स्थान पर विश्वास का भाव सुदृढ़ हो गया। बार-बार के अनुभवों के परिणाम से आत्मविश्वास आता है।

अब हम किसी व्यक्ति के आत्मविश्वास के बारे में इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि यह उसकी सकारात्मक तथा विधेयात्मक धारणाओं

का कुल योग है। पिछले उदाहरण में, बीस फीट की ऊँचाई पर खड़ा हुआ वह बालक अति भयाक्रान्त था, पर नियमित अभ्यास से उसका भय चला गया और उसकी जगह 'हाँ, यह सम्भव है' की सकारात्मक धारणा स्थापित हो गई। अतः विश्वास एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, जो बार-बार के अनुभवों तथा प्रयत्नों से दृढ़ होता जाता है। विश्वास किसी साधारण धारणा से भिन्न है। तुम विश्वास के आधार के बिना अनेक धारणाएँ रख सकते हो, परन्तु धारणाओं के आधार के बिना कभी विश्वास नहीं हो सकता। अतः विश्वास प्रायोगिक शोधों द्वारा विकसित तथा अनुभवों द्वारा सत्यापित एक रचनात्मक धारणा है। यदि उस बालक ने उतनी ऊँचाई पर चलने का आत्मविश्वास विकसित कर लिया है, तो 'मैं इतनी ऊँचाई पर चल सकता हूँ' – उसकी यह धारणा दृढ़ हो चुकी है, अतः उसमें भय के भाव नहीं आते। इसलिए विश्वास मन का एक सकारात्मक तथा विधेयात्मक दृष्टिकोण है।

हमारा मन सदैव ही भय, घृणा, निन्दा तथा कष्ट की भावना का विरोध करता है। बार-बार विफल होने की वजह से उत्पन्न कष्ट, घृणा तथा भय की भावना, तथा यह भावना कि 'मैं यह कार्य नहीं कर सकता', ही युवकों को आलसी बनाती है। हमें प्रयास करना होगा कि बच्चे कुछ उपलब्धि कर सकें तथा विफलताओं से हतोत्साहित न हों; वे बारम्बार प्रयास में प्रोत्साहित होकर अन्ततः सफलता प्राप्त करें। हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनका आत्मविश्वास दिन-पर-दिन बढ़ता रहे।

शिक्षा में आत्मविश्वास का सर्वोपरि महत्त्व है। शिक्षकों को बड़े धैर्यपूर्वक बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। क्या यह सबके लिए एक चिन्तनीय विषय नहीं है?

भय दरवाजे पर दस्तक देता है। विश्वास दरवाजा खोलकर पूछता है, 'कौन है?' वहाँ तो कोई भी नहीं है। विश्वास की आवाज सुनते ही भय सिर पर पाँव रखकर भाग जाता है।

स्वयं में विश्वास और ईश्वर में विश्वास - ये ही सफलता तथा उपलब्धि की कुंजियाँ हैं ।

भय का भण्डार

बहे जा रहे एक विशाल हिमशैल का मात्र एक छोटा-सा अंश ही जल की सतह पर दृष्टिगोचर होता है । हिमशैल का विशाल अदृश्य भाग जलमग्न रहता है । इसी भाँति हमारे मन का अल्पांश ही सतह पर क्रियाशील रहता है और शेष भाग अवचेतन में छिपा रहता है । अवचेतन मन के अधिकांश क्रिया-कलापों को हम समझ नहीं पाते । मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि हमारे अधिकांश व्यवहार, दृष्टिकोण तथा भावनाएँ इस अवचेतन मन द्वारा ही नियंत्रित होती हैं । हम प्रायः अपने भय तथा पीड़ा के कारण से अनभिज्ञ रहते हैं । उनकी जड़ें मन की गहनतर परतों में छिपी होती हैं । भय इस गहराई के अदृश्य उद्गम में रहकर हम पर शासन करता है । अचेतन या अवचेतन मन भय की आधारभूमि या भण्डार है ।

भय : एक रक्तपिपासु दैत्य

भय की कुछ ग्रन्थियाँ सभी मनुष्यों को प्रताड़ित करती हैं । बाह्य रूप से हम उनकी अभिव्यक्ति को नहीं देख सकते, पर वे अवचेतन स्तर पर पीड़ित करती हैं । सामान्य भय एक तरह से सुरक्षात्मक होता है । यह हमें सावधान करके वर्तमान और भविष्य के खतरों से आगाह कर देता है । परन्तु काल्पनिक तथा आधारहीन भय हमें कदम-कदम पर परेशान करता है और दुर्बल बनाते रहता है । यह मन में दुर्बलता लानेवाली एक बीमारी है । यह हमारी शक्ति नहीं, अपितु हमारी दुर्बलता तथा असमर्थता को व्यक्त करता है । हमारी दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलता का एकमात्र कारण भय ही है ।

कुछ देशों में लोग ऐसे विशालकाय चमगादड़ों में विश्वास करते हैं, जो रात में जाकर लोगों का खून पीया करते हैं। ये तथाकथित चमगादड़ तो केवल निद्रा के समय ही खून पीते हैं, परन्तु काल्पनिक भय जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति - तीनों ही अवस्थाओं में हमारा खून पीता रहता है।-जैसे कीटाणु और रोगाणु केवल गन्दे तथा अस्वच्छ स्थानों में ही जन्म लेते हैं, वैसे ही भय भी केवल अज्ञानी मनो में ही उत्पन्न होता है। निर्भयता भी मन की ही एक वृत्ति है। कुछ लोग बचपन से ही, अपने माता-पिता अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण, भय की इस दूषित प्रवृत्ति से ग्रस्त होते हैं। केवल कुछ विरले भाग्यवान लोग ही सदैव निर्भय रहना सीख पाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साहस, स्थिरता, बल तथा धैर्य आदि भय की दुर्बलकारी भावनाओं को दूर कर सकते हैं। एकमात्र मन ही किसी की सफलता, समृद्धि और उसके दुःख-कष्टों के लिए भी उत्तरदायी है - यह प्राचीन उक्ति आज भी उतनी ही सत्य है।

भय के परिणाम

भयग्रस्त होने पर हमारे दिल की धड़कन बढ़ जाती है, शरीर काँपने लगता है और श्वास-प्रश्वास असन्तुलित हो जाती है। हमें पसीना आने लगता है। हमारी विचार-शक्ति धूमिल हो जाती है और हम पूर्णतया हतप्रभ रह जाते हैं। ऐसी स्थितियाँ हमारे शरीर तथा मन - दोनों को ही अशक्त करके हमारे विश्वास को चकनाचूर कर देती हैं। भय से पीड़ित कोई भी व्यक्ति उचित ढंग से कार्य नहीं कर सकता। मानवता को अनिद्रा, सम्भ्रम तथा उच्च रक्तचाप आदि इसके उपहार हैं। कुछ संक्रामक भय निराधार होते हैं, तथापि वे व्यवहार में असामान्यता ला देते हैं। भयभीत लोग सभी प्रकार के जघन्य कृत्य कर बैठते हैं। एक विशेषज्ञ का कहना है कि प्रति वर्ष साँप काटने से

एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाने के कारण हजारों साँपों को निर्दयतापूर्वक मार डाला जाता है। इस क्रूर आचरण के पीछे सूक्ष्म रूप से आतंक ही कार्य करता है। भय सर्वत्र ही अपना भयावह सिर उठा रहा है। विकासशील देशों को अमेरिका से भय लगता है, अरब लोग यहूदियों से और यहूदी अरब लोगों से भयभीत हैं। श्वेत अश्वेतों से तथा अश्वेत श्वेतों से भयभीत रहते हैं। मनुष्य की स्वार्थपरता के कारण राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक - जीवन के सभी क्षेत्रों में भय का बे-रोकटोक शासन चलता है। भय से सन्देह, सन्देह से क्रोध, क्रोध से हिंसा और हिंसा से विनाश का पथ प्रशस्त होता है। भय के कारण सभी उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य हिंसक पशु बन जाता है। भय आकाश में नहीं, बल्कि मानव-मन में रहता है। यद्यपि बमों का निर्माण कारखानों में होता है, परन्तु उनका मूल मानव-मन में छिपे हुए भय में होता है। अतः इसे जड़सहित उखाड़ फेंकना होगा। किसी राष्ट्र द्वारा अनुभूत भय उसकी जनता का सामूहिक भय है। एक निर्भय महान नेता अपने साहस, पराक्रम और उदात्त आदर्शों के द्वारा मानव-समाज के भाग्य को पलट है।

क्या हमें स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी के जीवन में ऐसी महानता के दर्शन नहीं होते? जब भारतवासियों ने अंग्रेज सैनिकों की गोलियों से डरना बन्द कर दिया, तब अंग्रेजों को भारत छोड़कर वापस लौटना पड़ा।

भय के विभिन्न प्रकार

महाभारत में भीष्म पितामह कहते हैं कि राजा समकालीन समाज पर अपना प्रभाव डालता है। इसलिए नेतागण और उच्च पदस्थ लोग आम जनता के जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। वे जनसाधारण को सद्भाव, सहयोग तथा निर्भयता के आदर्शों से अनुप्राणित कर सकते

हैं। भारत पर आक्रमण करनेवाले विदेशी आक्रान्ता और भारत के बारे में अध्ययन करने आए विद्वान यात्री कुछ राजाओं के शासन-काल के दौरान भारत में प्रचलित उच्च नैतिक मानदण्डों का गुणगान कर गए हैं। पर पदलोलुप, अदूरदर्शी, जनता के प्रति सहानुभूति से रहित और अनेक बन्धनों से जकड़े हुए नेतागण भला क्या उपलब्धि दिखा सकते हैं? अपनी शक्ति के छिन जाने के भय से पीड़ित ये नेतागण जनता के मन में भय का बीजारोपण करके उनमें फूट डालते रहते हैं। वैसे हम समूचे संसार को तो नहीं सुधार सकते, परन्तु अपना सुधार अवश्य ही कर सकते हैं। कार्लाइल ने कहा था, 'यदि तुम स्वयं को बदल लो, तो संसार को कम-से-कम एक मूर्ख से छुटकारा मिल जाएगा।' यदि व्यक्तिगत जीवन से भय चला जाए, तो सामुदायिक जीवन स्वयं ही भयमुक्त हो जाएगा।

मनुष्यों को त्रस्त करनेवाले भय विभिन्न प्रकार के हैं। इनमें से कुछ हैं -

विभिन्न रोगों का भय

विषैले सर्पों का भय

भूत-प्रेतों और काले जादू का भय

आनुष्ठानिक अशुचिता का भय

निर्धनता और अपमान का भय

प्रियजनों से वियोग का भय

कारोबार में घाटे का भय

(छात्रों में) परीक्षा का भय

गलत कार्यों के लिए सजा पाने का भय

अपने ही लोगों द्वारा छले जाने का भय

ऋणग्रस्त होने का भय

सरकार द्वारा सम्पत्ति के जब्त होने का भय

चोरों और डकैतों का भय
 युद्ध तथा विनाशकारी हथियारों का भय
 प्रदूषित पर्यावरण का भय
 मृत्यु और नरक की यातना का भय

क्या तुम जानते हो कि भय का कठोर फन्दा व्यक्ति को किस प्रकार उत्पीड़ित करता है?

भय तथा आतंक के प्रभाव

नाग के उठे हुए फन तथा उसकी भयावह मुखाकृति को देखते ही चूहा भय के मारे अधमरा तथा जड़ हो जाता है। बाघ की निगाह में आते ही बन्दर इतना भयभीत हो जाता है कि सुरक्षित ऊँचाई पर होने के बावजूद उसके हाथ शिथिल हो जाते हैं और डाली छूट जाने के कारण वह बाघ के सामने गिरकर उसके मुख का निवाला बन जाता है।

एक हिरन एक लँगड़े सिंह की दहाड़ सुनता है और भयभीत होकर वह दिशा का विचार किए बिना ही सरपट दौड़ने लगता है। वैसे वह बड़ी तीव्र गति से दौड़ सकता है, परन्तु भय के कारण दिशा का विचार किए बिना दौड़ते हुए वह सिंह के ठीक सामने जा पहुँचता है।

वैसे यह तो स्वाभाविक ही है कि एक चूहा नाग से डरे, बन्दर बाघ की क्रूर दृष्टि से डरे और हिरन सिंह की दहाड़ सुनकर भयभीत हो जाए। भय पहले से ही सावधान हो जाने और आत्मरक्षा का एक साधन है। परन्तु भय का अतिरेक सुरक्षा का साधन होने के स्थान पर, उलटे घातक सिद्ध हो सकता है।

ऐसी भी घटनाएँ होती हैं, जब व्यक्ति अँधेरे में कुछ देखकर, उसकी भूत या चोर के रूप में कल्पना करके भयभीत हो जाता है।

एक व्यक्ति ने कहा, 'मैं भूत-प्रेतों के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता, परन्तु अँधेरी रात में कहीं अकेले जाने में मुझे भय लगता है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई मेरे पीछे-पीछे चल रहा हो । इसके फलस्वरूप मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।' दूसरे व्यक्ति ने कहा, 'राहु, केतु और शनि से प्रभावित तथाकथित अशुभ कालों के अनुसार चलना अन्धविश्वास तो है, परन्तु इन मुहूर्तों में मैं कोई भी शुभकार्य आरम्भ करना नहीं चाहता । क्योंकि मैं अपनी पत्नी और बच्चों की भावनाओं को आहत नहीं करना चाहता ।'

हम बचपन में कई प्रकार के भयों को आत्मसात् कर लेते हैं और वे हमारे मन में गहरी जड़ें जमाए रहते हैं । यदि हम उन्हें हटाने का प्रयास भी करें, तो भी वे हमें नहीं छोड़ते । वे निष्क्रिय भी नहीं रहते । हमारे भीतर छिपे रहकर वे प्रायः ही हमारी उन्नति की राह में बाधाएँ तथा रोड़े अटकाते रहते हैं ।

एक नया-नया साइकिल चलाना सीखनेवाला विपरीत दिशा से आ रहे वाहनों से घबराकर अपना सन्तुलन खो बैठता है और गड्ढे में गिरने से बचने का प्रयास करता है, परन्तु भय से त्रस्त वह सँभलते-सँभलते भी गड्ढे में गिर ही पड़ता है ।

परीक्षा में बैठने के पूर्व तक छात्रगण अध्ययन करते रहते हैं, ताकि कहीं वे परीक्षा-कक्ष में कुछ भूल न जाएँ । तो भी प्रश्न हल करते समय वे प्रायः कुछ महत्वपूर्ण बातों को भूल ही जाते हैं और कक्ष से बाहर निकलते ही उन भूली हुई बातों को याद करके अपनी स्मृति-लोप पर पश्चात्ताप करते हैं । परीक्षा-भय से उत्पन्न दुःख का तो अन्त ही नहीं है । इसी भय के कारण छात्रगण अनुचित साधनों का उपयोग करने लगते हैं । क्या इस भय को दूर करने का कोई उपाय नहीं है?

चिन्ता का मकड़जाल

जब भय तथा चिन्ता एक साथ क्रियाशील होती हैं, तो हमारी कल्पना के हानिकारक और खतरनाक चित्र वास्तविक रूप धारण कर लेते हैं ।

एक व्यक्ति बातचीत करने में अत्यन्त कुशल था और उस दिन उसे अपना पहला भाषण देना था। उसने एक प्रभावशाली भाषण देने का पक्का इरादा किया था और इसके लिए उसने ठोस तैयारी भी कर ली थी। अभ्यास करते समय उसने अपने परिवार के सदस्यों को भी अपना भाषण सुनाया था। अपने सर्वोत्तम वेष में सज्जित होकर, चेहरे पर मुस्कान लिए, बड़े स्वाभिमान तथा पूर्ण आत्मविश्वास से वह व्याख्यान-कक्ष में प्रविष्ट हुआ। हर व्यक्ति बड़ी उत्सुकता से उसके मुख की ओर ताक रहा था। जब उसने अपने श्रोताओं पर दृष्टि घुमाई, तो उसे लगा मानो हजारों तीक्ष्ण निगाहें उसे भेद रही हैं। उसके होंठ सूखने लगे। उसने अपने होंठों पर जीभ फेरकर अपने आप को संयत करना चाहा, परन्तु उसके चेहरे पर चिन्ता के भाव प्रकट हो गए। व्याख्यान देने के लिए खड़े होने पर अपनी घबराहट को दबाने के लिए वह एक या दो बार खाँसा भी। ठण्ड का मौसम होने के बावजूद उसे पसीना आने लगा। ४५ मिनट के लिए तैयार की गयी वक्तृता को वह १० मिनट से अधिक जारी नहीं रख सका। बोलते-बोलते वह सहसा रुक गया और अस्वस्थता का बहाना बनाकर घर लौट आया।

बाद में उसने बताया था, 'अनौपचारिक वार्तालाप के समय अपने सामने बहुत-से लोगों को देखकर मुझे जरा भी भय नहीं लगता, पर श्रोताओं के समक्ष मैं बुरी तरह घबरा जाता हूँ।'

भय और तनाव हमारे सारे कार्यों को बर्बाद कर डालते हैं। एक किसान ने हर रोज की भाँति एक दिन सुबह अपने घर के एक कोने में रखे हुए बोरे से बुवाई के लिए बीज निकाले। बीज निकालते समय उसे ऐसा लगा कि उसके पाँव की उँगली में कुछ चुभ गया है। पर उधर ध्यान दिए बिना ही वह सारे दिन खेत में काम करता रहा। शाम को घर लौटकर जब वह बचे हुए बीजों को बोरे में रखने लगा,

तभी उसमें से एक साँप निकलकर फुफकारने लगा। साँप को देखते ही उसे सुबह अपने पैर में हुई चुभन की बात याद आ गयी। उसे लगा कि उसे साँप ने ही काटा था। वह वहीं गिर पड़ा और तत्काल मर गया। वह साँप के डँसने से नहीं, बल्कि भय के कारण मरा।

भय की विभीषिका को दर्शानेवाली एक कथा है। एक बार यमराज ने अपने दूतों को पृथ्वी से ४०० जीवों को लाने का आदेश दिया। उन लोगों ने कई बीमारियाँ फैलाकर ४०० लोगों को मारने की व्यवस्था की। परन्तु जब वे लोग यमलोक पहुँचे, तो उनके साथ ४०० लोगों की जगह ८०० लोग थे। यमराज ने इस पर क्रोधित होकर अपने आदेश की अवहेलना के लिए उन्हें फटकारा। उन्होंने उत्तर दिया, 'प्रभो, हमने केवल ४०० लोगों को ही मारा था, बाकी ४०० तो भय से मर गए।'।

भय : एक चुनौती

कर्कश आवाज सुनकर शिशु भयभीत हो जाता है। चलना सीखते समय वह लड़खड़ाने तथा गिरने के भय से ग्रस्त रहता है। भय सभी की एक स्वाभाविक तथा जन्मजात प्रवृत्ति है। हमारे अस्तित्व या स्वाधीनता पर मँडरानेवाला कोई संकट या केवल उसके बारे में कोई आशंका भी हमारे मन में भय के बीज बो देती है। जीवन की समस्याओं का सामना करने में अपनी सामर्थ्य में आत्मविश्वास का अभाव भी हमें भयग्रस्त कर देता है। हीन-भावना सहज भाव से भय की ओर ले जाती है। एक बार जब कोई व्यक्ति किसी खतरे का सामना करके सफलतापूर्वक उससे बच निकलता है, तो उसमें साहस तथा आत्मविश्वास आ जाता है। एक बच्चा गिरने के भय से चलने से कतराता है, परन्तु धीरे-धीरे वह न केवल चलना, अपितु दौड़ना भी सीख जाता है। खतरे की भावना से हमें खतरे की

बाधाओं को पार करने की युक्ति निकालने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। इस दृष्टि से भय को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यह हमारे भीतर के आन्तरिक बल को जाग्रत करने का एक सुअवसर प्रदान करता है।

ईश्वर का भय

एक कहावत है कि ईश्वर का भय ही ज्ञान का मूल है। पर ईश्वर से भला कोई क्यों डरे? वस्तुतः ईश्वर से डरने की कोई जरूरत नहीं। ईश्वर तो परम प्रेमस्वरूप हैं। ईश्वर से अधिक प्रियतर हमारा कोई भी नहीं है। प्रेम का अजस्र-स्रोत भय का कारण क्यों हो?

इसकी व्याख्या इस प्रकार हो सकती है, 'एक सर्वज्ञ तथा सर्व-शक्तिमान ईश्वर विद्यमान हैं। उनके ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है। उन्हें कोई भी धोखा नहीं दे सकता। इस ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्था वे ही करते हैं। हमारे जीवन में भी एक निश्चित नियम है। जीवन में सफलता पाने के लिए हम सभी को एक निश्चित आचार-संहिता का पालन करना पड़ता है। जैसे नियमित आहार-विहार से स्वास्थ्य ठीक रहता है, वैसे ही आचार-संहिता के पालन से मानसिक बल मिलता है तथा हम सच्चे अर्थों में मनुष्य बनते हैं। हमें ईश्वरीय राज्य के नैतिक आचारों का पालन करना है - 'तुम चोरी नहीं करोगे, तुम हिंसा नहीं करोगे और तुम झूठ नहीं बोलोगे।' नैतिक आचार-संहिता का पालन न करके हम कठिनाइयों को आमंत्रित करते हैं। यदि हम समझ लें कि इन नियमों के उल्लंघन से हमारे आसपास के लोगों को नुकसान पहुँचेगा, तो हम सजग हो जाएँगे और इस उल्लंघन से होनेवाली क्षति से डरेंगे। यह सजगता, यह सावधानी भी एक तरह का भय है। यह वांछनीय है। वस्तुतः यह एक तरह की चेतावनी है। बुराई के पथ पर चलने का भय, झूठ बोलने का भय, छल-कपट का आचरण करने तथा

कर्तव्यच्युत होने का भय हमें इसके उल्लंघन से बचाता है। ऐसा भय एक प्रकार की सुरक्षा है। दुराचार का बीज बोने पर उसका फल निश्चय ही कड़वा होगा।

‘विष्णु-सहस्रनाम’ में ईश्वर को ‘भयकृत् भयनाशनः’ (अर्थात् भय को उत्पन्न करने और भय को दूर भगानेवाले) कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पापियों के लिए वे भयस्वरूप हैं, पर सज्जनों को वे भयमुक्त कर देते हैं। भगवान् नृसिंह के दर्शन-मात्र से ही हिरण्यकशिपु भयभीत हो जाता है, परन्तु प्रह्लाद जरा भी भयभीत नहीं होते। जो लोग अपनी भूलों को समझकर पश्चात्ताप करते हुए ईश्वर के शरणागत होकर उनसे क्षमा-याचना करते हैं, ईश्वर निश्चय ही उनकी सहायता करते हैं, ताकि उन्हें आत्मसुधार का मौका मिल सके। यह बिलकुल सत्य है कि ईश्वर परम दयामय हैं और वे सबकी रक्षा करते हैं, परन्तु पापी व्यक्ति को अपनी पाप-भावना से मुक्त होने के लिए दीर्घ काल तक संघर्ष करना पड़ता है। विश्वविधाता द्वारा निर्मित आचार-संहिता को जानना और उसका अक्षरशः पालन करना ही सच्चा ज्ञान है। यह ज्ञान जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। ब्रह्माण्ड तथा इसके नियमों के निर्माता के ज्ञान से उत्पन्न सजगता ही सच्चा ज्ञान है। एक वैज्ञानिक प्रकृति के सूक्ष्म नियमों तथा रहस्यों को उद्घाटित करता है, जबकि विश्व के धर्मग्रंथ, ऋषि-मुनि तथा महापुरुष हमें उचित आचरण और सच्चे धर्म के नियम प्रदान करते हैं।

हमारे देशवासी ईश्वर के बारे में विविध प्रकार के भयों से आक्रान्त रहते हैं। इस भय की जड़ प्रायः बचपन से ही अर्जित उनकी मिथ्या धारणाओं में निहित होती है। कुछ लोग भगवन्नाम का जप करते समय भी आनुष्ठानिक अशुचिता से भयभीत रहते हैं। कुछ लोग इस कारण भयभीत रहते हैं कि भगवान् कहीं उन्हें अभिशाप न दे दें। कुछ तो अपनी प्रार्थना आदि साधनाओं में कुछ त्रुटियों या

अपूर्णताओं की आशंका से ही उनका पूरी तौर से परित्याग कर देते हैं।

एक ग्रामीण के जीवन की घटना है। एक बार वह बस में चढ़ा और सीट पर बैठने के बाद शीघ्र ही बीमार होकर गिर पड़ा। सहयात्री उसकी मदद के लिए दौड़ पड़े। एक चिकित्सक ने आकर उसे सुई लगाई और जल्दी ही वह स्वस्थ हो गया। वह उठ बैठा और चारों ओर देखने लगा। वह अपनी बीमारी का दोष उस बस पर ही मढ़ने लगा। इस घटना के लिए वह बस के चालक और परिचालक को दोष देने लगा। चूँकि बस में चढ़ने के बाद ही वह बीमार पड़ गया था, अतः वह बस को ही अपनी बीमारी का कारण मानने लगा। वस्तुतः उसने एक होटल में बासी भोजन खा लिया था और विश्राम के अभाव में थकावट के कारण उसकी तबीयत खराब हो गयी, परन्तु उसे लगा कि बस ही उसकी अस्वस्थता के लिए जिम्मेदार थी। इसी प्रकार, भगवान कभी किसी को क्षति नहीं पहुँचाते। लोग केवल अपने अज्ञान, मूढ़ता तथा अन्धविश्वास के कारण ही कई तरह के झंझटों में फँस जाते हैं।

भयग्रस्त देबू

देबू इलेक्ट्रिकल फिटिंग में सिद्धहस्त एक युवक था। कुछ ही घण्टों में वह एक पूरे मकान की वायरिंग कर सकता था। एक बार उसके एक परिचित सम्भ्रान्त बुजुर्ग ने उससे कहा, 'तुम्हारे माता-पिता की मृत्यु तपेदिक (टी.बी.) से हुई थी। लगता है तुम्हें भी तपेदिक हो जाएगा।' अगले कुछ दिनों तक ये शब्द उसके मन में गूँजते रहे। इसके बाद उसे जब भी खाँसी आती, वह भयभीत हो जाता। एक पुस्तक में तपेदिक के लक्षणों को पढ़कर वह आतंकित रहने लगा। उसे लगता - मुझमें तो इसके प्रायः सारे ही लक्षण हैं। वह दूसरों से

कहता, 'मुझे भोजन में स्वाद नहीं मिलता । रोजाना शाम को मुझे लगता है कि मेरे शरीर का ताप बढ़ गया है । कुछ भी करने की इच्छा नहीं होती । मेरे दिन अब पूरे हो चले हैं ।' अगले तीन महीनों में उसके स्वास्थ्य में तेजी से गिरावट आई । जब चिकित्सक कहते कि वह बिलकुल स्वस्थ है, तो भी उसे विश्वास नहीं होता । अन्ततः चिकित्सक ने उसके सीने का एक्स-रे करके उसे रिपोर्ट दिखाते हुए कहा, 'देखो, तुम्हारे फेफड़े ठीक हैं । यह दवा खाओ, एक सप्ताह में तुम पूरी तौर से ठीक हो जाओगे ।' उसने एक तपेदिक-रोगी के एक्स-रे के साथ अपने एक्स-रे को मिलाया और तब उसे विश्वास हुआ कि वह तपेदिक की सम्भावना से मुक्त है । कुछ ही दिनों में, देबू पूर्ववत् भला-चंगा हो गया । यदि वह भय तथा सन्देह में ही डूबा रहता, तो कभी स्वस्थ न हो पाता ।

भय का मूल

भय कहाँ से उत्पन्न होता है? खतरे तथा उनसे होनेवाली क्षति की आशंका के चिन्तन का प्रभाव हमारे अवचेतन मन पर पड़ता है । भय की तीव्रता बढ़ने के साथ-साथ जब खतरे की कल्पना और भी स्पष्ट होती जाती है, तब हमारा मन इस काल्पनिक भय को वास्तविकता में बदलने लगता है ।

देबू ने पहले तो तपेदिक-ग्रस्त रोगी की अवस्था की कल्पना की । उसे भय हुआ कि उसे भी एक तपेदिक रोगी की पीड़ा भोगनी पड़ सकती है । भय और दुराशा के तीव्र चिन्तन ने उसके मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह कल्पना प्रायः वास्तविकता में ही परिणत हो गयी ।

हम उस नौसिखिये साइकिल-चालक के प्रसंग को स्मरण कर सकते हैं, जो गिर जाने के काल्पनिक भय के कारण ही अन्ततः नाली

में गिर पड़ा था। परीक्षा-भय से अपनी स्मरण-शक्ति गँवा बैठनेवाले बालक की कहानी भी ठीक ऐसी ही है। जब हम बुराइयों या दोषों का तीव्र चिन्तन करने लगते हैं, तो वे हमारे अन्तर्मन में अंकित होकर धीरे-धीरे अभिव्यक्त होने लगते हैं। भय के इस बीज का फल हमें बुरे स्वास्थ्य, कठिनाइयों तथा दुःख-कष्ट के रूप में प्राप्त होता है।

जो बातें अज्ञात रूप से अवचेतन मन में अंकित हो जाती हैं, वे एक-न-एक दिन अवश्य ही प्रकट होंगी। किसी चीज के प्रति तीव्र घृणा या तिरस्कार के भाव के साथ उसका सतत चिन्तन हमारे मन में बुरे फल देनेवाले बीज बो सकता है। यह उस बुराई की जड़ें जमाने में सहायक हो सकता है, जिसका हम उन्मूलन करना चाहते थे। जिसे हम बाहर निकाल डालना चाहते थे, वही हमें अपने आप में डुबा सकता है।

संजय पिन निगल गया

कन्नड़ भाषा की एक लघु पुस्तक 'भय - एक विश्लेषण' में डॉ. शिवराम एक घटना का वर्णन करते हैं -

'एक विचित्र घटनाक्रम में संजय नामक एक धनी युवक एक पिन निगल गया। यदि वह पिन आँतों में कहीं फँस जाती, तो इससे बड़ी भारी समस्या आ जाती। फिर ऑपरेशन आवश्यक हो जाता, जो घातक भी हो सकता था। मैंने उसे हर छह घण्टे बाद एक्स-रे कराने का निर्देश दिया, ताकि यह पता चल सके कि पिन मलत्याग के दौरान बाहर निकल गयी है या नहीं। चौथी बार एक्स-रे कराने पर उसमें पिन का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। मैंने संजय से पूछा, "क्या तुमने उस पिन के लिए मल की छान-बीन की?" संजय ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, "कौन चिन्ता करे? किसे परवाह है कि वह पिन है भी या नहीं? खैर, एक्स-रे में तो उस पिन का कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ा।"

‘वह बिलकुल आश्चर्य और निश्चिन्त था कि यदि पिन आँतों में फँसी भी हो, तो उसे शल्यक्रिया द्वारा निकाला जा सकता है। उसकी निश्चिन्तता के कारण ही भय तथा चिन्ताजनित कोई जटिलता नहीं उत्पन्न हुई। उसके निर्भय मनोभाव के कारण ही आँतों ने स्वाभाविक प्रक्रिया से मलोत्सर्जन के साथ उस पिन को बाहर निकाल दिया। यदि वह चिन्तित रहता, तो शायद भय के कारण ही वह पिन आँतों में फँस जाती।’

काल्पनिक भय

एक युवक ने अपने काल्पनिक भय की कथा को सुनाना प्रारम्भ किया, ‘आपको मेरी कहानी सुनकर हँसी आएगी, परन्तु उन दिनों मेरे भय की कोई सीमा न थी। तेज हवा चलने पर मुझे भय होता कि कहीं मेरे घर की छत ही न उड़ जाए। बादलों की गर्जना सुनकर मुझे मृत्यु के सदृश आघात पहुँचता। नरक-यातना का वर्णन सुनकर मैं मरणोपरान्त नरक-भोग की पीड़ा की कल्पना करने लगता। कर्मचारीगण यदि आदेशों के पूरा करने में विलम्ब करते, तो मैं चिन्तित हो जाता कि इन आलसी कर्मचारियों के साथ मैं कैसे काम करूँ। मुझे आशंका होती कि उन्हें किसी प्रकार का दण्ड देने पर कहीं वे मुझ पर आक्रमण न कर बैठें। मैं कल्पना करता कि मेरे चलने का ढंग देखकर लड़कियाँ मेरा उपहास करती हैं। मैं निरन्तर इस बात से चिन्तित था कि कभी कोई लड़की मुझसे विवाह करना पसन्द नहीं करेगी। मैं चिन्तित था कि ससुराल में मैं कैसा आचरण करूँगा। मैं कल्पना करता कि यदि मेरी पत्नी गाँव की होगी, तो उसके घर की ओर जानेवाली निर्जन सड़क से होकर जाते हुए डाकू मुझ पर प्रहार करके मुझे लूट लेंगे और मैं इससे आतंकित हो उठता।’

एक बार मेरे एक मित्र ने एक और घटना बताई, ‘लगता है कुछ दिन पूर्व हमारे पड़ोसी को साँप ने डँस लिया। लोगों ने कहा - “वह

साँप के डँसने के एक-आध घण्टे के भीतर ही मर गया। हमें सावधान रहना चाहिए। इस क्षेत्र में अक्सर ही साँप निकलते रहते हैं।” यह सुनकर मैं साँप के भय से अभिभूत हो गया। मैंने एक टार्च खरीद ली और शाम को नगर में आते समय सदैव उसे साथ रखने लगा। कोई आहट मिलने पर मैं भय से उछल पड़ता। बिस्तर पर सोते समय भी मुझे भय लगा ही रहता था। मैं प्रति घण्टे उठकर टार्च जलाकर चारों ओर देखता। मेरा मन साँप के भय से आतंकित था। साँप कहीं मेरे पैर में न काट ले, इस भय से मैं पैर के चारों ओर रस्सी बाँध लेता, परन्तु यदि वह सिर में डस ले, तो? मैं भय से टूट गया। छह महीनों तक मैं कहीं भी जाते समय अपने साथ टार्च ले जाता रहा, पर एक बार भी मुझे कोई साँप दिखाई नहीं पड़ा। अब मैं खुद पर शर्मिन्दा था। अपने मन को भय की अनावश्यक कल्पनाओं से भर लेने के कारण मुझे खुद पर हँसी आने लगी। मुझे लगा कि ऐसे भयों को आश्रय देकर, जिनमें से एक भी सत्य सिद्ध नहीं हुआ, मैंने कैसी मूढ़ता दिखाई है।’

पके हुए चावलों में एक कंकड़ मिल जाने का अर्थ यह नहीं कि पूरा चावल ही कंकड़ों से भरा पड़ा है। यदि दो-एक विपत्तियाँ आ जाएँ, तो इसका अर्थ यह नहीं कि सारा जीवन ही संकटमय है। यदि हममें थोड़ी तर्कशक्ति तथा विवेक हो, तो हम इस काल्पनिक भय से स्वयं को मुक्त कर सकते हैं।

तनुजा का भय

इसी प्रकार के काल्पनिक भय ने तनुजा को दो वर्षों तक त्रस्त किए रखा। वह दो बच्चों की माँ थी और सदैव उनकी सुरक्षा के बारे में चिन्तित रहती। सबेरे स्कूल जाते समय वह बच्चों को बारम्बार चेताती, ‘मोटर-गाड़ियों से सावधान रहना, अन्यथा कुचले

जाओगे ।' बच्चों के मोटरों से कुचल जाने की कल्पना उसके मन को बारम्बार व्यथित कर देती । थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह रसोईघर से निकलकर देखती कि सड़क पर कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी । इसके फलस्वरूप किसी दिन दाल में नमक नहीं पड़ता, तो कभी सब्जी बिना मसाले के रह जाती । घर के सारे कार्य अस्त-व्यस्त हो जाते । वह विचित्र भुलक्कड़पन से ग्रस्त हो गयी । हर रोज ऐसा ही होता ।

एक बार उसके पति ने उससे कहा, 'क्या तुम पागल हो गयी हो? यदि तुम्हारी आशंका सच होती, तो इन दो वर्षों के दौरान सड़क पर चलते हुए कितने ही बच्चे कुचलकर मर गए होते । तुम बेकार ही चिन्तित रहती हो ।'

तनुजा ने कहा, 'हाँ, दुर्घटनाएँ नित्य नहीं हुआ करतीं ।' और क्रमशः वह काल्पनिक भयों से मुक्त हो गयी ।

तुमने शायद पढ़ा या सुना होगा कि कुछ वर्षों पूर्व कुछ नकाबपोशों ने रात में चलनेवाली एक बस को रोककर यात्रियों का सामान लूट लिया था । यदि आज रात तुम्हें उसी मार्ग से यात्रा करनी हो, तो लूटपाट की कल्पना तुम्हारे मन को आतंकित कर देती है । तुमने पहले ही पिस्तौल लिए हुए नकाबपोशों द्वारा यात्रियों को धमकाए जाने का चित्र अखबार में देखा होगा । अब वे चित्र तुम्हारे मन में सजीव हो उठते हैं । यदि तुम्हारे पास रुपये-पैसे हैं, तो तुम उसे सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम तरीका खोजने का प्रयास करते हो, रात भर जागते रहते हो । तुम्हारे दिल की धड़कन बढ़ जाती है । बीच-बीच में तुम स्वयं को आश्वासन करने लगते हो कि यह सब भ्रम-मात्र है । परन्तु भय निरन्तर तुम्हें पीड़ित करता रहता है । अन्ततः जब बस बीच में दुर्घटनाग्रस्त हुए बिना तुम्हें गन्तव्य स्थल तक पहुँचा देती है, तब तुम राहत की साँस लेते हो ।

इस प्रकार अनेक लोग निर्मूल काल्पनिक भयों से आक्रान्त रहा करते हैं ।

सदमे द्वारा तबाही

वह किसी भी प्रकार की शारीरिक दुर्बलताओं से रहित एक स्वस्थ युवक था । सामान्यतया वह हकलाता नहीं था, पर लोगों की भीड़ देखने पर वह एक शब्द भी नहीं बोल पाता था । लम्बे असें तक कोई भी उसकी इस अक्षमता का कारण नहीं समझ सका । अन्ततः विशेषज्ञों ने उसे सम्मोहन-विद्या की सहायता से सुलाकर उसकी हकलाहट का कारण जान लिया । तीन वर्ष की आयु में जब वह अपनी माँ के साथ सड़क पर जा रहा था, तो एक मोड़ पर उसने दो कारों के बीच हुई एक भयानक भिड़न्त देखी । उसकी आँखों के सामने ही कारों में आग लग गयी और लपटों के बीच कार में फँसे लोगों को बचाने हेतु लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी । इस दुर्घटना के कारण उस संवेदनशील बालक के मन पर गहरा सदमा लगा और तब से वह जब भी लोगों की भीड़ देखता, उसकी वाक्शक्ति चली जाती । विशेषज्ञों ने उसे सम्मोहन द्वारा सुलाकर उसके मन में गहराई से बैठे भय को दूर करने का प्रयास किया और इस प्रकार उसके भीतर पुनः आत्मविश्वास पैदा किया । विशेषज्ञ उसे फुटबाल-मैच तथा सर्कस आदि दिखाने ले गए, जिनमें उसे आनन्दपूर्ण दृश्य और अद्भुत करतब देखने को मिले । धीरे-धीरे वह भीड़ के साथ आनन्दपूर्ण खेलों का संबन्ध जोड़ना सीख गया । उसके अवचेतन मन ने इस नये साहचर्य को सत्य मान लिया और क्रमशः उसकी वाक्शक्ति लौट आयी ।

एक युवती हकलाहट से बड़ी परेशान थी । मनो-चिकित्सकों को इस रोग का मूल उसके अवचेतन मन में मिला । बचपन में वह प्रायः ही अपने माता-पिता के बीच झगड़े देखा करती थी । एक बार अपने

पिता द्वारा माँ को पीटने का दृश्य देखकर उसे सदमा लग गया। यह सदमा उसके अन्तर्मन की गहराई में बैठ गया था। यह छिपा हुआ भय मन से निकल जाने पर वह हकलाहट से मुक्त हो गयी।

हमें उक्त घटना का अभिप्राय समझना होगा। इसका निहितार्थ बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इस घटना के आलोक में हम यह समझ सकते हैं कि हमारे देश में माता-पिता की अज्ञानता और परिवेश के प्रभाव से बच्चे कैसी कठोर परिस्थितियों तथा संकटों का सामना करते हैं। विभिन्न जातियों, धर्मों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं में जन्मे हमारे बच्चों का जीवन कैसा जटिल है! यद्यपि यह विषय इस भय के प्रकरण से सीधे तौर पर सम्बद्ध नहीं है, तो भी बच्चों के भावनात्मक जीवन और शिक्षा से इसका सम्बन्ध अवश्य है और इसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना यहाँ विषयान्तर नहीं है। एक बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, त्यों-त्यों वह अपने आसपास के परिवेश - घर, स्कूल तथा समुदाय के साथ उचित या अनुचित ढंग से सम्बद्ध होने लगता है। घर ही बच्चे को प्रभावित करनेवाला सर्वप्रथम और सबसे शक्तिशाली स्थान है। यदि घर का परिवेश इसके परिवार के सदस्यों, विशेषकर माता-पिता के बीच आपसी विवादों और दोषारोपणों से दूषित है, तो इसका बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर गम्भीर असर पड़ता है। हम कल्पना कर सकते हैं कि इससे बच्चे के व्यक्तित्व का विकास कितना बाधित होगा।

मान लो किसी बालक को घर, स्कूल तथा पास-पड़ोस से तिरस्कार और उपेक्षायुक्त व्यवहार मिलता है। फिर वह सहज भाव से कुसंग में पड़कर तरह-तरह के उत्पीड़न और प्रहारों का शिकार बनता है। इन भयावह अनुभवों की स्मृतियाँ उसके मन पर एक स्थायी दाग छोड़ जाती हैं। उसके मन में यह भावना घर कर जाती है कि वह सबके द्वारा अवांछित, परित्यक्त तथा उपेक्षित है। विभिन्न प्रकार के दुष्कर्मों में

लिप्त होकर उसमें अपराध-बोध आ जाता है। उसे विश्वास हो जाता है कि वह कोई भी उपयोगी कार्य कर पाने में असमर्थ है। इस प्रकार एक व्यक्ति के रूप में उसका विकास प्रभावित होने लगता है। हीन-भावना से ग्रस्त होने के कारण वह दूसरों के समक्ष अपने मनोभाव प्रकट नहीं कर पाता। वह भावी दुर्भाग्यों से डरा रहता है; असहायता, निराशा, अपराध-बोध, क्रोध तथा बदले की भावना से परिपूर्ण रहता है। ऐसे युवक आगे चलकर सहज ही असामाजिक तत्त्वों में परिणत हो जाते हैं।

जटिल स्वभाव के माता-पिता

कुछ माता-पिताओं की धारणा है कि धमकी या शारीरिक दण्ड देकर और कटु तथा कठोर भाषा का प्रयोग करके गलती करनेवाले बच्चों को सुधारा जा सकता है। कुछ अन्य माता-पिता अपने बच्चों की उचित-अनुचित हर तरह की माँगों को पूरा करके उन्हें बिगाड़ डालते हैं। बहुत-से माता-पिता सोचते हैं कि एक बार विद्यालय में प्रवेश दिलाने के बाद उनका उत्तरदायित्व पूरा हो गया और वे बच्चों को उनके अपने भाग्य पर छोड़ देते हैं। कुछ माता-पिता अपने बच्चों के प्रति अप्रत्याशित व्यवहार करते हैं – कभी तो वे उन पर लाड़-प्यार की झड़ी लगा देते हैं और माँगते ही तत्काल पैसे दे देते हैं और दूसरे ही क्षण क्रोध के आवेश में उनकी किसी भी प्रकार की सहायता से इनकार करके बच्चों के लिए एक पहेली बन जाते हैं। कुछ अन्य माता-पिता अपने बच्चों की उनके अधिक बुद्धिमान और चतुर सहपाठियों के साथ तुलना करते हुए उनकी कमियों की हँसी उड़ाते हैं और इस प्रकार उनके मन को चोट और आत्मविश्वास को क्षति पहुँचाते हैं। बहुत-से लोग बच्चों के सामने ही उनके बड़ों, सम्माननीय माता-पिता तथा शिक्षकों को बुरा-भला सुनाते हुए उनकी

कमियों की आलोचना करते हैं। कुछ अन्य लोग अपने बच्चों से असाधारण कृतित्व की अपेक्षा करते हैं और उनकी औसत उपलब्धि पर बुरी तरह निराश हो जाते हैं। माता-पिता के मन में उत्पन्न होनेवाले अन्धविश्वास, सौतेली माँ का बुरा व्यवहार और निम्न जाति में पैदा होने की हीन-भावना, अहंकार, उद्धतता, राजनीतिक संघर्ष – ये सभी बच्चों के मनों पर विभिन्न प्रभाव डाल सकते हैं।

गाँधीजी ने कहा था, 'एक उत्तम घर के समान कोई विद्यालय नहीं, और चरित्रवान और सद्गुणी माता-पिता के समान कोई शिक्षक नहीं हो सकता। आधुनिक विद्यालयों की उच्च शिक्षा ग्रामीण बालकों पर एक भार है। ये बच्चे कभी इसका लाभ नहीं उठा पाएँगे और यदि उन्हें अच्छे परिवार की शिक्षा प्राप्त हो, तो वे इस स्कूली शिक्षा का अभाव भी महसूस नहीं करेंगे।'।

हमारी यह इच्छा स्वाभाविक ही है कि हमारे विद्यालय ऐसे उत्तम परिवारों की कमी को कुछ हद तक पूरा करें। हमारी सरकार शिक्षा पर करोड़ों रुपये व्यय करती है। रूस की शिक्षा-संस्थाओं द्वारा बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर दिया गया महत्व प्रशंसनीय है। रूसी सरकार विघटित परिवारों से आए बच्चों की मानसिक समस्याओं के समाधान पर विशेष ध्यान देती है। इस निमित्त विद्यालयों में विशेष रूप से निर्मित कार्यक्रम चलाए जाते हैं। पर हमारे देश में रोजगार देनेवालों का एकमात्र उद्देश्य पैसे कमाना या धन बटोरना है। इस तरह के परिवेश में भला कौन बच्चों की समस्याओं को समझने का प्रयास करेगा? और यदि कोई समझ भी ले तो उन्हें हल करने में मदद कौन करेगा? तब तक बच्चे आपात-विरोधी परम्पराओं तथा परिवेश का तनाव झेल चुके होंगे। उनकी मानसिक स्वास्थ्य-रक्षा के कार्य की शुरुआत प्राथमिक स्कूल के स्तर से ही होनी चाहिए। समाज के पिछड़े वर्गों के बच्चों के कल्याण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना

चाहिए। बाल-कल्याण में रुचि रखनेवाले, शिक्षा पर विशेष ध्यान देनेवाले, धैर्यवान, कर्तव्यपरायण और स्नेही शिक्षकों की इस कार्य में बड़ी आवश्यकता है। ऐसे शिक्षक हमें कहाँ मिलेंगे? यदि गुलाम शिक्षा देंगे, तो केवल गुलामों के झुण्ड ही पैदा होंगे।

नया क्षितिज

क्या इस स्थिति में सुधार लाना सम्भव नहीं है? निश्चय ही सम्भव है।

सामान्यतः बाल्यकाल में सच्चे प्रेम से वंचित रहनेवाला व्यक्ति मानसिक पीड़ा भोगता है। दीर्घकालीन धैर्य और प्रेम का निर्मल प्रवाह ही उसकी दशा में सुधार ला सकता है। तब उस व्यक्ति का जीवन आनन्द का स्रोत बन जाता है। उसके जीवन में एक नये युग की शुरुआत हो जाती है। पर प्रेम कोई बाजार में बिकनेवाली चीज नहीं है। यह बहुमूल्य है, परन्तु, यह सर्वत्र विद्यमान है और हर किसी को इसकी जरूरत है। विशुद्ध प्रेम समस्त रोगों की अचूक दवा है। अगले अध्याय में हम आलोचना करेंगे कि किस प्रकार प्रेम की शक्ति से इस बीमार विश्व को सुखमय स्वर्ग में बदला जा सकता है।

मनश्चित्र

हेराल्ड शर्मन कहते हैं, 'जीवन भर, इस बात पर बल देना आवश्यक है कि अपने मनश्चित्रों के पीछे की भावनाओं की तीव्रता की मात्रा के अनुरूप ही हमें अनुभव प्राप्त होते हैं।'।

यदि आप निरन्तर दुर्घटना के विचारों में ही डूबे रहते हैं, तो आपके जीवन में दुर्घटनाएँ प्रारम्भ हो सकती हैं। यदि आप साँपों से आतंकित हैं, तो आपका साँपों से सामना हो सकता है। यदि आप बीमारी से अत्यधिक भयभीत हैं, तो इससे कुछ रोगों को स्वयमेव

निर्मंत्रण मिल सकता है। यदि आपको ऋणग्रस्त हो जाने का विचार सताता रहता है, तो सम्भव है कि आप ऐसी परिस्थिति में फँस जाएँ जो आपको ऋण लेने के लिए बाध्य करे। यदि आप भूत-प्रेतों तथा अलौकिक जीवों से भयभीत रहते हैं, तो आपको उनके बारम्बार दर्शन से परेशान होना पड़ सकता है। यदि आप अपमानित होने के भय से आशंकित रहते हैं, तो सम्भव है कि आपको अपमानित होना पड़ जाए। इन दुर्घटनाओं से बचने का सर्वोत्तम उपाय है कि ऐसे काल्पनिक भयों के चिन्तन से अपने आपको दूर रखा जाए।

साँप के आक्रमण से अपनी रक्षा के उपाय सोचना और सर्पदंश के भय से आतंकित रहना - दो अलग चीजें हैं। रोगों से बचने का उपाय करना और रोगों से आक्रान्त होने के भय का चिन्तन करना - दो अलग चीजें हैं। अपमानजनक स्थिति से बचने का उपाय सोचना और सतत अपमान से आशंकित रहना - दो अलग चीजें हैं। भूत-प्रेतों के दुष्प्रभावों से मुक्त होना और उनके द्वारा सम्भावित हानि को कल्पना करना - दो अलग चीजें हैं। भयभीत रहना वस्तुतः भयकारी वस्तु से बचने का बिना कोई उपाय किए केवल उसके निरर्थक चिन्तन में लगे रहना है। अपनी रक्षा करने का अर्थ है, उससे बचने या उपचार करने के लिए सजग प्रयत्न करना। सजग भाव से हम जो कुछ करते हैं, वह हमें बुराइयों से बचाता है; और काल्पनिक भय हमें भयंकर कठिनाइयों में फँसा देते हैं।

निर्भय विजेता भय का ग्रास बना

एक बार वैज्ञानिक प्रवृत्ति और तथाकथित निर्भय स्वभाववाले एक युवक ने अपने मित्रों द्वारा प्रस्तावित एक चुनौती स्वीकार कर ली। उसे आधी रात के समय नगर के बाहर स्थित कब्रगाह में जाकर उसके बीचों-बीच एक खम्भा गाड़ना था। वह युवक रात में कब्रों की

खोजबीन करके उनके भीतर भूत-प्रेतों की मौजूदगी का सत्यापन करने की महत्वाकांक्षा रखनेवाले निर्भय विजेता के रूप में प्रसिद्ध था। वह विश्वास के साथ अग्रसर हुआ। उसके पीछे-पीछे जानेवाले मित्र कब्रिस्तान के द्वार पर रुककर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। वह युवक कब्रगाह में गया। मित्रों ने खम्भा गाड़ने की आवाज सुनी। और थोड़ी ही देर में सब कुछ शान्त हो गया। मित्रगण उस साहसी युवक की हिम्मत की प्रशंसा करने लगे। वे उसके लौटने की देर तक प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु उन्हें एक बड़ा झटका लगनेवाला था। मित्रों ने उसे पुकारा, पर कोई उत्तर नहीं मिला। पूर्वी क्षितिज पर प्रातःकाल की अरुणिमा प्रकट होने लगी। युवकगण अपने मित्र की खोज में कब्रगाह के भीतर प्रविष्ट हुए। वह जमीन पर पड़ा दिखाई दिया। जब मित्रों ने उसके पास जाकर उसे जगाने का प्रयास किया, तो पता चला कि उसका शरीर बर्फ के समान ठण्डा था। वह कई घण्टे पूर्व ही मर चुका था।

उन लोगों को शीघ्र ही उसकी मृत्यु का कारण ज्ञात हो गया। हुआ यह था कि जमीन में खम्भा गाड़ते समय उसकी शाल का एक छोर भी खम्भे के साथ जमीन में गड़ गया था। उसे इस बात का पता ही नहीं चला। हथौड़े के प्रहारों से खम्भा गाड़ने के बाद जब वह वहाँ से चलने लगा, तो उसे लगा कि कोई उसे पीछे की ओर खींच रहा है। इस प्रकार उसे पीछे की ओर खींचनेवाला भूत के सिवा और कौन हो सकता था? वह भय के मारे ही ढेर हो गया।

खेद की बात यह है कि यदि उसने पीछे मुड़कर खींचनेवाले को देखने का प्रयास किया होता, यदि उसे अपने भय का कारण ज्ञात हो जाता, यदि उसे खूँटे में फँसी अपनी शाल दिख जाती, तो उसकी जान न जाती। हमें अपने को आतंकित करनेवाले भय के कारणों और उसके सच्चे स्वरूप का विश्लेषण करने में सक्षम होना चाहिए।

धीरज खोए बिना हमें उन भयों को जीतने का उपाय ढूँढ़ना होगा । कभी-कभी भयावह स्थितियों का सामना करना हमारे लिए अपरिहार्य हो जाता है । हमें सर्व-शक्तिमान ईश्वर की शरण लेनी चाहिए, जो हमारे सारे भयों को नष्ट कर सकते हैं । हमें सच्चे हृदय से प्रार्थना करते हुए स्वयं को उनकी इच्छा के प्रति समर्पित कर देना चाहिए ।

भैरव के साथ निर्भय वार्तालाप

पंचवटी दक्षिणेश्वर का एक निर्जन स्थान है, जहाँ श्रीरामकृष्ण ने विविध साधनाएँ की थीं । उनकी अद्वैत-साधना के गुरु, तोतापुरी, परम निर्भय थे । उनकी निर्भयता के भाव को प्रदर्शित करनेवाली एक घटना है । एक बार गहरी रात में वे वहाँ धूनी जलाकर ध्यान में बैठने की तैयारी कर रहे थे । चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था । झींगुरों और मन्दिर के ताखों में बैठे उल्लुओं की आवाज के सिवा कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा था । हवा भी शान्त थी । सहसा पंचवटी के वृक्षों की शाखाएँ हिलने लगीं और मानव-सदृश एक भीमकाय व्यक्ति वृक्ष से नीचे उतरा और तोतापुरी जी की ओर आँखें गड़ाए धीरे-धीरे धनी के पास आकर बैठ गया । उसे देख विस्मित होकर तोतापुरी ने उसका परिचय पूछा । उत्तर मिला, 'मैं देवयोनि भैरव हूँ; इस देवस्थान की रक्षा हेतु वृक्ष पर रहता हूँ ।' उससे जरा भी भयभीत हुए बिना पुरीजी बोले, 'ठीक है, तुम जो हो, मैं भी वही हूँ । तुम भी ब्रह्म के प्रकाश हो और मैं भी; आओ, बैठो, ध्यान लगाओ ।' भैरव हँसते हुए हवा में विलीन हो गया । तोतापुरी इस घटना से जरा भी विचलित हुए बिना ध्यान करने लगे । अगले दिन जब उन्होंने यह घटना श्रीरामकृष्ण को बताई, तो वे बोले, 'हाँ, वे यहीं रहते हैं । मुझे भी कई बार उनका दर्शन मिला है । कभी-कभी उन्होंने मुझे भविष्य में होनेवाली कुछ घटनाएँ भी बतायी थीं ।'

तोतापुरी उन अलौकिक जीवों के सच्चे स्वरूप को जानते थे, इसलिए वे निर्भयतापूर्वक भैरव का सामना कर सके।

पर कुछ ऐसे दुर्बल-हृदय लोग भी होते हैं, जो अपनी कल्पना में ही विचित्र भूत-प्रेतों की सृष्टि करके उनसे पीड़ित रहते हैं। कल्पना के आधिक्य से होनेवाली ऐसी गड़बड़ियों से छुटकारा पाने में मनो-चिकित्सक हमारी सहायता कर सकते हैं।

यदि कहीं भूतों से भेंट भी हो जाए, तो हमें उनसे डरने की जरूरत नहीं है। वस्तुतः वे हमें डराते नहीं हैं। बचपन में उनके बारे में सुनी हुई भयानक कहानियों के कारण ही हमें उनसे डर लगता है। हमें एक अन्य दृष्टि से भी इस समस्या को देखना चाहिए। भूत-प्रेत ऐसी जीवात्माओं को कहते हैं, जो भौतिक शरीर छोड़ने के बाद सूक्ष्म रूप में रहती हैं। यदि हम हाड़-मांसवाले मनुष्यों से नहीं डरते, तो फिर हम इन अशरीरी भूत-प्रेतों से भला क्यों भयभीत हों? हम अपने भय के कारण के विश्लेषण का प्रयत्न किए बिना बेकार ही परेशान हो जाते हैं। हम क्या, कहाँ और कैसे – जैसे प्रश्न पूछने को अग्रसर नहीं होते। स्पष्ट है कि वास्तविकता के बारे में हमारे अज्ञान के कारण ही भय आता है। भूत-प्रेतों से भयभीत रहनेवाले लोगों के भय को कुछ लोग यह कहकर खारिज कर देते हैं कि वह मानसिक दुर्बलता का शिकार है, या मनोविकार से ग्रस्त है, या अन्धविश्वासी है, आदि। ऐसे लोग भूत-प्रेतों के अस्तित्व से ही इनकार करते हैं। ये लोग भूत-प्रेतों को भ्रान्ति कहते हैं और बुद्धिवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणवाले कहलाए जा सकते हैं परन्तु ये लोग भयाक्रान्त लोगों को राहत कदापि नहीं पहुँचा सकते। उन्हें स्वयं भय के मूल का कोई ज्ञान नहीं होता और वे सर्वदा दूसरों की सुनी-सुनाई बातें तोतों की भाँति रटते रहते हैं कि 'भय तो केवल मनोवैज्ञानिक होता है' – और इस प्रकार वे दूसरों के भय को तुच्छ मानते हैं। कोई भी रोगी ऐसे लोगों के समक्ष अपनी

समस्याएँ, आशंकाएँ तथा चिन्ताएँ खोलकर नहीं रख सकता। भय के सच्चे स्वरूप को समझ लेनेवाले लोग ही दूसरों को भयमुक्त करने में मदद कर सकते हैं। वे ही भय को दूर रखना जानते हैं।

हतबुद्धि प्रेतात्माएँ

एक बार श्रीरामकृष्ण ने अपने शिष्यों को अपना एक विचित्र अनुभव बताया था। स्वामी सारदानन्द ने 'श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग' नामक अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। एक बार भक्तिमती गोपाल-की-माँ के निमंत्रण पर अपने शिष्य राखाल (बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द) के साथ श्रीरामकृष्ण उनके घर गए। भोजन के बाद वे विश्राम कर रहे थे। थोड़ी देर बाद कमरे के एक कोने से कुछ दुर्गन्ध आने लगी। शीघ्र ही उस कोने से दो बीभत्स मूर्तियाँ प्रकट हुईं। उनके शरीर से अँतड़ियाँ लटक रही थीं और वे मेडिकल कॉलेज के संग्रहालय के कंकाल-जैसे दिख रहे थे। वे विनयपूर्वक श्रीरामकृष्ण से बोले, 'आप यहाँ क्यों आए हैं? कृपया यहाँ से चले जाइए। आपके दर्शन से हमें अपनी दशा का स्मरण हो आने के कारण बहुत कष्ट हो रहा है।' एक ओर तो ये प्रेतात्माएँ श्रीरामकृष्ण से चले जाने की विनती कर रही थीं और दूसरी ओर राखाल सो रहे थे। उन प्रेतों का कष्ट देखकर श्रीरामकृष्ण ने अपना बटुआ और झोला उठाया और चलने को तैयार हुए। तभी राखाल जाग गए और श्रीरामकृष्ण से पूछने लगे, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' श्रीरामकृष्ण बोले, 'मैं तुम्हें बाद में बताऊँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने राखाल का हाथ पकड़ा और गोपाल-की-माँ से (जिनका भोजन तभी समाप्त हुआ था) विदा लेकर नाव में जा बैठे। वहाँ श्रीरामकृष्ण ने उन्हें बताया, 'उस घर में दो भूत हैं, जो अंग्रेजों द्वारा फेंकी गयी हड्डियों को सूँघकर अपना पेट भरते हैं। उस घर में अकेली रहनेवाली वृद्धा को यह बताना मैंने उचित नहीं समझा।'

भूत-प्रेतों की अपनी समस्याएँ तथा पीड़ाएँ होती हैं। वे आपकी मदद पाने हेतु आपके सम्मुख प्रकट हो सकते हैं। उनकी मुक्ति के लिए प्रार्थना के बजाय यदि आप भय से आक्रान्त हो जाते हैं, तो भूत-प्रेत निराश हो सकते हैं। जैसे मनुष्यों में दुष्ट लोग होते हैं, वैसे ही उनमें भी दुष्ट भूत-प्रेत हो सकते हैं; परन्तु उनसे भयभीत होकर हम समस्या को और भी बदतर बना डालते हैं। हमें दृढ़ता के साथ उस स्थिति का सामना करना चाहिए। समस्या का मुकाबला करना सम्भव है। उसका मुकाबला करने के लिए साधन और उपाय भी हैं। हमें व्यर्थ ही घबड़ाना और परेशान नहीं होना चाहिए।

डटकर सामना करो

बात उन दिनों की है जब स्वामी विवेकानन्द एक परिव्राजक के रूप में भ्रमण कर रहे थे। एक बार वे वाराणसी में ठहरे हुए थे। वे दुर्गा-मन्दिर से दर्शन करके लौटते हुए एक सँकरे रास्ते से होकर चल रहे थे, जिसके एक ओर दीवाल और दूसरी ओर एक बड़ा तालाब था। उस सँकरे मार्ग से होकर जाते समय उनके सामने बन्दरों का एक झुण्ड आ गया। बन्दर उन पर झपट पड़े और विकट चीत्कार करते हुए उनके पाँवों से लिपटने लगे। उन्हें पास देखकर स्वामीजी मुड़कर भागने लगे। बन्दरों ने उनका पीछा किया। उनसे बच निकलने का कोई मार्ग न था। तभी एक वृद्ध संन्यासी ने चिल्लाकर कहा, 'ठहरो और सामना करो!' स्वामीजी ने पीछे मुड़कर उत्पाती बन्दरों का सामना किया। जब उन्होंने साहसपूर्वक बन्दरों की ओर देखा तब बन्दर धीरे-धीरे पीछे हटते हुए भाग निकले।

वर्षों बाद अपने न्यूयार्क के व्याख्यान में स्वामीजी ने इस घटना का उल्लेख करते हुए इससे प्राप्त शिक्षा की ओर संकेत किया था - 'जीवन भर के लिए यह एक सीख है - जो कुछ भयानक है, उसका

सामना करो, साहसपूर्वक उसका मुकाबला करो । जब हम जीवन की कठिनाइयों से भागना छोड़ देते हैं, तो वे भी उन बन्दरों की ही भाँति पीछे हट जाती हैं । यदि हमें स्वाधीनता अर्जित करनी है, तो यह हमें भागने से नहीं, बल्कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करने से मिलेगी । कायर कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता । यदि हम भय, कष्ट तथा अज्ञान को दूर करना चाहते हैं, तो हमें उनसे संघर्ष करना होगा ।'

भय को प्रश्रय न दो

एक अन्य महत्वपूर्ण घटना पर विचार करो, जिसमें स्वामी विवेकानन्द ने प्रचण्ड साहस के साथ एक भयंकर परिस्थिति का सामना किया था । यह घटना स्वामीजी की प्रथम इंग्लैंड-यात्रा के दौरान घटी थी । एक बार जब वे अपनी एक अंग्रेज मित्र तथा मिस मूलर के साथ टहलते हुए एक खेत से होकर गुजर रहे थे, तो एक क्रुद्ध साँड़ बड़ी उग्रतापूर्वक उन लोगों की ओर आया । अंग्रेज सज्जन दौड़कर पहाड़ी के दूसरी ओर के सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए । मिस मूलर यथाशक्ति दौड़ीं और फिर आगे बढ़ने में असमर्थ हो जमीन पर गिर पड़ीं । स्वामीजी ने यह सब देखा और साँड़ से उन्हें बचाने का और कोई उपाय न देख, हाथ बाँधे उनके सामने तनकर खड़े हो गए और सोचने लगे, 'तो, अन्तिम समय आ ही पहुँचा !' बाद में उन्होंने बताया था कि उस समय उनका मन यही हिसाब करने में लगा हुआ था कि साँड़ उन्हें कितनी दूर फेंकेगा । परन्तु वह जानवर कुछ कदम पूर्व ही सहसा ठहर गया और वापस लौट गया ।

ऐसा ही साहस स्वामीजी ने अपनी किशोरावस्था में भी दिखाया था, जब उन्होंने कोलकाता की गलियों में अनियंत्रित दौड़ते हुए एक घोड़े को सहज भाव से आगे बढ़कर पकड़ लिया था और इस प्रकार उसके साथ जुड़ी बग़ी में बैठी एक महिला की प्राणरक्षा की थी । स्वामीजी ने कहा

था, 'जब कभी संकट आता है, यहाँ तक कि मृत्यु की सम्भावना होने पर भी, मेरा मन शान्त, स्थिर और निर्भय रहता है।'

अपनी मनोदशा बताते हुए एक बार उन्होंने कहा था, 'जिसने ईश्वर के चरण छू लिए हैं, उसके लिए कुछ भी भयप्रद नहीं होता।' यहाँ महाराष्ट्र के सन्त स्वामी रामदास की इस उक्ति का उल्लेख किया जा सकता है - 'महापुरुष वे हैं जो स्वयं निर्भय हैं और दूसरों में भी भय का संचार नहीं करते।'

महापुरुषों से हमारा तात्पर्य उन लोगों से है, जिन्होंने सर्व-शक्तिमान ईश्वर या सर्वव्यापी आत्मा की अनुभूति कर ली है। इस अनुभूति के दो फल हैं - मनोबल तथा निर्भयता। सच्चे भगवद्भक्त तथा ज्ञानी लोग निर्भय होते हैं। यहाँ तक कि उनके सान्निध्य में आने पर पशु-पक्षी भी निर्भयता के भाव का अनुभव करते हैं। यदि हम श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक उनकी शिक्षाओं का अनुसरण करें, तो हम भी निर्भय हो सकते हैं।

भगवत्कृपा से रक्षा

कभी-कभी अप्रत्याशित रूप से संकट का क्षण आ पहुँचता है और तब प्रायः उसका सामना करने के लिए तैयारी का कोई मौका नहीं रहता। सहसा आए हुए संकट का सामना करने के लिए एक सबल मन और उत्कृष्ट प्रत्युत्पन्न बुद्धि की जरूरत पड़ती है। इन क्षमताओं की प्राप्ति आसान नहीं है। अप्रत्याशित परिस्थितियों का कैसे सामना किया जाए? क्या कोई व्यक्ति पूर्णतया निर्भय हो सकता है? इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द के भ्रमण के दिनों की एक उल्लेखनीय घटना उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है -

'उन दिनों मैं हिमालय-अंचल के विभिन्न घरों में जाकर भिक्षाटन किया करता था। अधिकांश समय मैं ध्यान किया करता था।

भिक्षाप्राप्त भोजन अति सामान्य कोटि का रहता और वह मेरी भूख शान्त कर पाने में अपर्याप्त था। एक दिन मैंने सोचा कि मेरा जीवन ही व्यर्थ है। उस पहाड़ी क्षेत्र के लोग बहुत गरीब थे। वे अपने परिवार तथा बाल-बच्चों का ही भरण-पोषण नहीं कर पाते थे, तो भी अपने भोजन का एक अंश वे लोग मेरे लिए बचाकर रखने का प्रयास करते थे। मुझे लगा कि इस तरह का जीवन जीने योग्य नहीं है। मैंने भिक्षाटन के लिए बाहर जाना छोड़ दिया। दो दिनों तक मैं भूखा रहा। प्यास लगने पर मैं झरने से जल पी लेता था। एक दिन मैं घने वन में जाकर एक वृक्ष के नीचे ध्यान में बैठ गया। आँखें खोलने पर मैंने अपने सामने एक बड़ा-सा बाघ देखा। उसने अपनी भयंकर आँखों से मेरी ओर देखा। मैंने सोचा कि आखिरकार अब मुझे शान्ति की प्राप्ति हो जाएगी। बाघ को भी शिकार की जरूरत है। उसकी भूख मिटाकर मेरा भी जीवन सार्थक हो जाएगा। मैं आँखें बन्द करके बाघ के अपने ऊपर झपटने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ मिनट बीत गए, पर बाघ ने मेरे ऊपर आक्रमण नहीं किया। मैंने आँखें खोलीं और चारों ओर देखने लगा। बाघ जंगल की ओर वापस चला जा रहा था। मैं चकित रह गया। मैं समझ गया कि ईश्वर मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे बोध हुआ कि अभी मुझे कुछ कार्य पूरा करना है और उसके पहले मुझे इस संसार से छुटकारा नहीं मिल सकता।'

इस घटना में खतरे का कोई पूर्वाभास नहीं था। ध्यान के बाद जब स्वामीजी ने आँखें खोलीं, तो उन्होंने एक भयंकर बाघ को खड़े होकर अपनी ओर धूरते हुए देखा। स्वामीजी भयभीत नहीं हुए। वे उस बाघ को अपना शरीर भोजन के रूप में देने को तत्पर थे। बाघ द्वारा खाए जाने के लिए तैयार होकर वे ध्यान में बैठ गए। उन्होंने किसी दैवी मदद की भी अपेक्षा नहीं की। परन्तु बाघ स्वयं ही लौट गया। कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनाओं का भी सामना होता है,

जिनमें वे शक्तियाँ क्रियाशील प्रतीत होती हैं, जो प्राकृतिक नियमों के परे हैं। ईश्वर तथा अलौकिक घटनाओं में विश्वास न करनेवाले युक्तिवादी ऐसी घटनाओं को निरर्थक संयोग मात्र मान सकते हैं, परन्तु अनुभवसिद्ध लोग तथा भक्तगण उनमें ईश्वर की अदृश्य शक्ति का हाथ देखते हैं।

स्वामीजी ने कहा, 'मैं समझ गया कि ईश्वर मेरी रक्षा कर रहे हैं।' भक्तों को अनुभव होता है कि भगवान ही उनकी रक्षा करते हैं। भगवान के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि भगवान ने किसी व्यक्ति को विपत्ति में डाल दिया है, परन्तु विश्वासी लोग उसमें भी भगवान का आध्यात्मिक उद्देश्य देखते हैं।

ऐसी अनूठी घटनाएँ न केवल सन्तों या महापुरुषों के जीवन में घटती हैं, अपितु सभी युगों के सभी देशों के विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के साधारण लोगों के जीवन में भी ऐसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं।

भालू से सामना

भारत-चीन सीमा-विवाद के दौरान सैन्यबल के एक जवान ने अपने एक अनुभव का वर्णन किया था। एक शाम वह अकेले ही हिमालय-क्षेत्र में भ्रमण करने गया था। लगभग ४ किलोमीटर चलने के बाद उसने विपरीत दिशा से आते हुए एक सफेद भालू को देखा। भय के कारण उस जवान के होश उड़ गए। वह जानता था कि ये बर्फीली जगह के भालू अपने रास्ते में आनेवाले किसी भी व्यक्ति के ऊपर आक्रमण करके उसकी जान ले लेते हैं। साथ में पिस्तौल न लाने का उसे पछतावा होने लगा। उसने सोचा, 'अब मेरा अन्त आ पहुँचा है। घर और स्वजनों से दूर, इस बीहड़ में एक भालू के हाथों

मरना ही मेरे भाग्य में बदा था ।' उसने आगे बताया, 'घर के सभी लोगों के चित्र और अपने आराध्य हनुमान जी की मूर्ति मेरी आँखों के सामने घूमने लगी । मैं स्थिर होकर भालू की ओर ताकता हुआ खड़ा रहा । मुझसे करीब १० या १५ फीट की दूरी तक आए हुए उस भालू ने सहसा रुककर कुछ क्षणों तक मेरी ओर देखा और फिर चुपचाप लौट गया । भालू के लौटने का कोई स्पष्ट कारण नहीं था । मैं इस विश्वास के साथ वापस आया कि ईश्वर ने ही मेरी रक्षा की है । शिविर के बाकी लोग भी मेरे साथ हुई इस घटना को सुनकर आश्चर्यचकित रह गए ।

'दस दिनों बाद दक्षिण भारत से मुझे अपने पिता का पत्र मिला, जिसमें लिखा था, "हनुमान जी मेरे स्वप्न में प्रकट होकर बोले, 'मैंने तुम्हारे पुत्र को संकट से बचा लिया है ।' तत्काल पत्र लिखकर मुझे अपनी कुशलता सूचित करो ।'"

सन्तों, साधारण लोगों तथा भक्तों के जीवन में होनेवाले अनुभवों से यह सिद्ध है कि सर्व-शक्तिमान परमात्मा से सहायता माँगने पर कठिनाइयों और संकटों से छुटकारा पाना सम्भव है ।

श्रद्धा और भक्ति की सहायता से सभी समस्याओं का हल पाना सम्भव है । इसके लिए अध्यवसाय, सत्संग तथा अभ्यास की जरूरत होती है ।

अभ्यास से भय का नाश करो

धैर्य और अध्यवसाय के द्वारा हम किसी भी शारीरिक या मानसिक क्रिया को अपनी आदत तथा स्वभाव का एक हिस्सा बना सकते हैं ।

निम्नलिखित उदाहरण दर्शाते हैं कि किस प्रकार अभ्यास तथा अध्यवसाय के द्वारा आदतें बनती हैं ।

स्नान करने की आदत डालकर मनुष्य स्वच्छ रहता है ।
 दान की आदत डालकर मनुष्य उदार होता है ।
 ध्यान के अभ्यास से मनुष्य प्रबुद्ध हो जाता है ।
 क्षमा की आदत डालकर मनुष्य दयालु होता है ।
 हमेशा चिन्ता करते रहने से मनुष्य हताश होता है ।
 आत्मविश्वास विकसित करके मनुष्य सफलता पाता है ।
 निरन्तर भयभीत रहने से मनुष्य कायर बन जाता है ।
 सहानुभूति के अभ्यास से मनुष्य उदार हो जाता है ।

किसी व्यवहार को योजनाबद्ध रूप से कुछ काल तक जारी रखने से वह आदत में परिणत हो जाता है । किसी आदत को आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता । उसे छोड़ने से लगता है कि हमारी कोई चीज खो गयी है । किसी आदत में बाधा पड़ने से पूरे दिन का कार्य बेकार हो सकता है । अच्छे चरित्र तथा सदाचार के विकास के लिए भली आदतें बुनियाद के समान हैं । मन में बारम्बार आनेवाले विचार और भावनाएँ हमारे स्वभाव तथा चरित्र का निर्माण करती हैं । जैसे चिन्ता, प्रफुल्लता, क्रोध तथा शान्ति मन की वे दशाएँ हैं जो आदत डालने से पैदा होती हैं । निर्भयता भी एक ऐसी ही आदत है । हमारे स्वभाव का अंग बन चुकी यह आदत नियमित तथा व्यवस्थित अभ्यास का परिणाम है । यदि हम अटूट नियमितता के साथ अपने मन में निर्भयता एवं साहसपूर्ण विचारों का पोषण करें, तो क्रमशः हमारा भय लुप्त हो जाएगा और निर्भयता हमारे मन का एक स्थायी भाव हो जाएगा ।

सोचो, एक बच्चा किस प्रकार वर्णमाला लिखने की कला सीखता है । वह प्रत्येक अक्षर के घुमावों का बारम्बार निरीक्षण करते हुए और निरन्तर उसे लिखने का अभ्यास करते हुए प्रत्येक अक्षर को सीख

जाता है। किसी आदत को डालने या दूर करने के इच्छुक व्यक्ति को भी बड़े धैर्यपूर्वक अग्रसर होना होगा और धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक प्रगति करनी होगी। धैर्य खो देने पर हम किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते।

एक पंक्ति के बिन्दुओं को क्रम से जोड़कर हम वृत्तों, वर्गों, त्रिभुजों, आयतों तथा षड्भुजों के अगणित रूप बना सकते हैं। जब हम छोटे-छोटे कार्य भी एकाग्रता तथा व्यवस्थित रूप से करते हैं, तो हमारे चरित्र को एक आकार मिल जाता है।

कठिन परिस्थितियों का खरल

कठिनाइयाँ, दुःख-कष्ट तथा असहायता की दशा मनुष्य को जिस चिन्ता एवं विषाद में तपाती हैं, उसका वर्णन किसी भाषा में नहीं किया जा सकता। इस प्रसंग में हम कुछ वास्तविक घटनाओं का वर्णन करते हैं -

अपने जीवन के दुःख-दर्द को सह पाने में अक्षम तथा अति विचलित एक महिला ने कहा, 'बचपन में ही माँ की मृत्यु हो जाने से मैं अनाथ हो गयी। मैं अपने भाई तथा भाभी के उदासीन व्यवहार के अंधीन पली और बड़ी हुई। दुर्भाग्यवश मेरा विवाह एक निर्दयी व्यक्ति के साथ हो गया, जो शराबी तथा दुश्चरित्र था। अब मैं दो बच्चों की माँ हूँ। बड़ा नौ और छोटा चार साल का है। मेरे दुःख का कोई अन्त नहीं। एक ओर मैं पति के संरक्षण से वंचित हूँ, तो दूसरी ओर अपने सभी सगे-सम्बन्धियों से भी दूर हूँ। कोई भी ऐसा नहीं है, जिससे मैं या मेरे बच्चे अपने दिल की बातें कह सकें। हमने इस मधुर आशा में अनेकों वर्ष बिता दिए कि ईश्वर हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे, पर वह आशा भी अब धीरे-धीरे जा चुकी है। मेरे पति अक्सर कहते हैं, 'भगवान के लिए मेरा पिण्ड छोड़ दो। तुम्हारे रोने-

धोने पर कोई ध्यान नहीं देगा ।' वे पहले इतने क्रूर नहीं थे । पर अब तो उन्होंने मानो मुझे नरक में ही ढकेल दिया है । वे मुझे दैहिक और मानसिक रूप से मर्मभेदी पीड़ा देते हैं । इधर उनकी लम्पटता बढ़ गयी है । मेरी सारी आशाएँ भग्न हो चुकी हैं । मेरी अब और जीने की इच्छा नहीं है । यहाँ तक कि बच्चों की चिन्ता भी मुझे आत्महत्या के विचार से रोक नहीं पाती ।' क्या इस अभागिनी नारी के लिए कोई उपाय है?

एक महात्मा ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहा - 'निराश मत हो । ऐसी बात नहीं कि ईश्वर तुम्हारे दुःख-कष्टों से अनजान हैं । उनके प्रति विश्वास मत खोना । अब तक शायद तुम समझ गयी होगी कि संसार दुःखमय है । यह ऐसे लोगों से भरा है, जो ऊपर से तो ईमानदार तथा उदार हैं, परन्तु दिल से घोर स्वार्थी हैं । और यह कभी मत सोचो कि ईश्वर तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनते । तुम उनसे दिन में जो दो बार प्रार्थना करती हो, उसमें और भी उत्साह तथा भाव लाकर अश्रुपूर्ण प्रार्थना करती रहो । तुम भले ही तत्काल इसके फल का अनुभव न करो, परन्तु आगे चलकर इसका फल अवश्यम्भावी है । हर कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता । वस्तुतः केवल भगवान ही मनुष्यों को इस जीवन के दलदल से निकाल सकते हैं । अतीत को भुला दो । क्या तुम दो दिन पूर्व किए गए भोजन के स्मरण का प्रयास करती हो? अतीत की घटनाएँ तुम्हें अब भी क्यों परेशान करती हैं? बीता हुआ कल फिर वापस नहीं आता । अब से सचेत रहो और सावधानीपूर्वक अगला कदम बढ़ाओ । अपने बच्चों को प्रार्थना और उसके महत्त्व के बारे में बताओ । अपने पति के मंगल हेतु भी निष्ठापूर्वक प्रार्थना करो । इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा । इससे तुम्हारे सौभाग्य का उदय होगा । निष्ठापूर्वक अपनी साधना करो । ब्राह्म मुहूर्त में उठकर प्रभु से प्रार्थना करो । दिन भर का कार्य समाप्त

करने के बाद भी पूजाघर में जाकर प्रभु को प्रणाम करके कातर प्रार्थना करो। यदि तुम दुःख से अभिभूत हो, तो अपने भाव के अनुसार उनसे प्रार्थना करो। धीरज रखो। जल्दवाजी में उनके बारे में कोई धारणा मत बना लो। जीवन बहुमूल्य है। इस मूल्यवान जीवन को पाकर इसके लक्ष्य को मत भूलो।

‘कोई कठिनाई भी अकारण नहीं आती। ईश्वर कोई मजा लेने हेतु लोगों को परेशानी के कारागार में नहीं डालते। वे अनासक्त हैं और साक्षी के रूप में सब कुछ देखते रहते हैं। जो सच्चे हृदय से सहायता के लिए आकुल होगा, उसे सही समय पर निश्चय ही मदद मिलेगी। ईश्वर में पूरा विश्वास रखना होगा। कर्म या भाग्य के प्रभाव को नष्ट करने हेतु ईश्वर से अनुनय-विनय करना होगा। मानव-जीवन मेघाच्छन्न आकाश के समान है, जिसमें चारों ओर धुएँ तथा कुहरे के घने बादल मँडराते रहते हैं। इस संसार में कोई भी सच्चा सुख नहीं पा सकता। ऐसी सलाह देने पर लोग विश्वास नहीं करते। पर उन्हें स्वयं के अनुभवों से जीवन के बारे में सीखना है। जागतिक जीवन की तुच्छता के बारे में दृढ़ विश्वास हो जाने के बाद हम इसके प्रलोभन से मुक्त हो सकते हैं।

‘जीवन की कठिनाइयों की गाँठ को खोलना आसान नहीं है। केवल प्रार्थना और भगवन्नाम के जप से ही क्रमशः यह गाँठ ढीली हो सकती है। आध्यात्मिक जीवन में सफलता का यही सच्चा रहस्य है। यह समयसाध्य है। तुमने धैर्य के साथ कष्ट सहते हुए इतना लम्बा काल बिता दिया है। अब शान्ति पाने के आध्यात्मिक समाधान को भी आजमा कर देखो। जैसे भोजन करने के घण्टों बाद तक उसके स्वाद की डकार आती रहती है उसी तरह सम्भव है कि कुछ समय तक तुम्हें दुःखद अतीत की स्मृतियाँ परेशान करती रहें। पर इससे निराश मत होना। आनेवाले दिन अच्छे होंगे।’

एक अन्य घटना

एक ३५ वर्ष की महिला थी। रात में सबके सो जाने पर तूफान आया और उसके घर के सामने का पेड़ उखड़ गया। पति, पत्नी तथा बच्चे निद्रामग्न थे। सब लोग बाल-बाल बच गए, परन्तु वह महिला, जो पाँच बच्चों की माँ थी, पाँव पर पेड़ की एक डाल गिर जाने से घायल हो गयी। उसके कमर के नीचे के हिस्से में लकवा मार गया। सारी चिकित्सा व्यर्थ सिद्ध हुई। यह महिला उठ पाने में भी असमर्थ हो गयी। अब वह पूरी तौर से दूसरों पर निर्भर थी। उसी के शब्दों में, 'गरदन के नीचे की पीड़ा असह्य है। मेरे दुर्भाग्य का कोई अन्त नहीं। हाल ही में बुखार आ जाने से मेरी हालत और भी बदतर हो गयी। मैं पूर्णतया टूट चुकी हूँ। गरीबी की आग भी हमें झुलसा रही है। मेरी एकमात्र प्रार्थना है कि मुझे मरने दिया जाए। जीने की अब मेरी कोई इच्छा नहीं है।

'मेरी बड़ी बहन ने पूजा-अनुष्ठान तथा तीर्थयात्रा की। एक अन्य बहन ने बड़ों की सेवा करके पुण्य कमाया। परन्तु तीर्थयात्रा की बात तो जाने ही दीजिए, मुझे अपने पिता की सेवा तक का मौका नहीं मिल सका। पैरों की पूरी शक्ति चले जाने से मैं अपने पति की भी कोई सेवा नहीं कर सकती। इन कठिनाइयों के बीच अब मुझे जिन्दा ही नहीं रहना चाहिए।'

उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि जीवन इतना अधिक कठोर हो सकता था। उसके कष्टों के प्रत्यक्षदर्शी उसके रिश्तेदारों ने कहा, 'पिछले छः वर्षों से वह इस जगह से हिली तक नहीं है। वह करवट भी नहीं बदल सकती। वह जहाँ-जैसे पड़ी है, उसे वहीं-वैसे ही पड़े रहना पड़ता है। उसके पीठ में बड़े-बड़े घाव हो गए हैं। पूरे शरीर में पीड़ा होती है। उसके पति की आर्थिक दशा और भी बिगड़ गयी है। उसकी हालत इतनी खराब है कि वे लोग बच्चों को पुरस्कार के रूप

में स्कूल से मिली छोटी-मोटी चीजें भी बेचने को बाध्य हैं। यह तो एक चमत्कार-सा ही है कि इस भयानक कठिनाइयों में भी उसका पति यहाँ से भागने का कोई प्रयास नहीं करता और दिन-रात कठोर मेहनत करके बड़ी मुश्किल से आजीविका चला रहा है। अब तक काफी हानि हो चुकी है। हम लोग यथाशक्ति उनकी सहायता कर रहे हैं, ताकि हालत और बदतर न हो जाए। पर उनकी आवश्यकताओं की तुलना में हमारी सहायता कुछ भी नहीं है। यह स्पष्ट ही है कि मानवीय सहायता की सदा अपनी सीमा होती है।'

ऐसी त्रासदियों से हम स्वयं को कैसे बचा सकते हैं? एक उन्नत साधक का कहना है - 'जीवन-चक्र की गति के दौरान सुख और दुःख एक-दूसरे के पीछे आते रहते हैं। यदि लगातार कठिनाइयाँ आएँ, तो भी हिम्मत मत हारो। भक्ति तथा निष्ठा के साथ भगवन्नाम का जप करो। बीती बातों को याद करके खेद मत करो। मत भूलो कि प्रभु अपने शरण में आए हुए लोगों का परित्याग नहीं करते। चिन्तित मत हो; धैर्य रखो। वे सबकी रक्षा करेंगे, भय की कोई बात नहीं।' यह आश्वासन पूर्णतः सत्य है। हम भयभीत क्यों हों? हमारे समस्त दुःखों तथा चिन्ताओं का कोई-न-कोई कारण है। और इसी प्रकार हमारे भले कर्म भी अच्छे फल अवश्य लाएँगे। एक अटल नियम के अनुसार प्रत्येक कर्म का फल अवश्यम्भावी है। हमें सोचना चाहिए कि ईश्वर की इच्छा से ही हमारे जीवन में सारे दुःख आते हैं, ताकि हम उनकी ओर अग्रसर हो सकें। हमें साहस तथा दृढ़ संकल्प के साथ जीवन में आगे बढ़ना होगा। जैसे सोने को तपाकर उसे विशुद्ध बनाया जाता है, वैसे ही कठिनाइयों से गुजरकर जीवन को सार्थकता प्राप्त होती है।

'भय की कोई बात नहीं। सभी दुःख-कष्टों का एक ही स्थायी समाधान है और वह यह, कि हम ईश्वर के चरणों में आत्मसमर्पण कर दें। दुःख-दर्द से चीख रहे बच्चे के क्रन्दन से हर माँ द्रवित हो जाती

है। माँ स्वभाव से ही दयालु होती है। ईश्वर भी माँ के समान हैं। हमें उनके नाम का जप करते रहना चाहिए। वे सब कुछ जानते हैं। निरन्तर प्रार्थना ही चिन्ता से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है। भगवान हर भक्त की जरूरतों को जानते हैं। भावपूर्ण प्रार्थना, पवित्र विचार, स्वाध्याय तथा कर्म – ये ही मानव-हित को सुनिश्चित करने के साधन हैं।’

यह आश्वासन एक अनुभूतिसम्पन्न महापुरुष ने दिया था। उन्होंने सैकड़ों युवकों में आशा और उत्साह का संचार किया था। वे लोगों की असाध्य लगनेवाली कठिनाइयों तथा दुःख-कष्टों को देखकर बड़ी सहानुभूतिपूर्वक ईश्वर से कातर प्रार्थना करते थे। अपने निजी अनुभव के आधार पर उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रार्थना से कायाकल्प हो सकता है। काफी सोच-विचार के बाद ही वे कुछ बोलते थे। उनके स्वभाव में स्वार्थ या अहं का लेशमात्र न था।

नास्तिक, तथाकथित युक्तिवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणवाले लोगों को शायद ऐसे विचार अच्छे न लगें, पर जीवन की कठिनाइयों से पीड़ित लोगों के लिए उनके पास दिलासे का कोई शब्द नहीं होता। केवल सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक सुधार से मानवीय पीड़ा दूर नहीं हो सकती।

धन से सुख-शान्ति नहीं मिलती

जीवन में सुख-शान्ति केवल धन पर निर्भर नहीं करती। इस बात को कई उदाहरणों से प्रमाणित किया जा सकता है।

समाज के एक गणमान्य व्यक्ति कई सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं। उन्होंने जन-कल्याण के कार्य किए हैं और अपने अंचल के अनेक परिवारों को लाभ पहुँचाया है। उन्होंने एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लिया था। वे एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। उन्होंने कठोर परिश्रम से अपने परिवार की स्थिति में सुधार लाया। परन्तु अभी

हाल ही में एक भाई तथा चार पुत्र-पुत्रियों से युक्त उनके परिवार में बँटवारा हो गया है।

आज वे वयोज्येष्ठ सज्जन अपनी पत्नी, बच्चों तथा घर से दूर निवास करते हैं। वे तीव्र मानसिक तनाव तथा क्षोभ से पीड़ित हैं। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होने के बावजूद, केवल वे ही नहीं, अपितु उनके घर का हर सदस्य किसी-न-किसी मानसिक पीड़ा से त्रस्त है। आज पिता और उनकी सन्तानें मुकदमेबाजी में फँसकर अदालतों के चक्कर लगा रही हैं। ऐसा क्यों हुआ? ऐसा क्यों होता है? क्या उनके भाग्य में केवल दुःख भोगना ही बदा है? इन वृद्ध सज्जन का उद्धार कैसे हो? उनके मन की प्रसन्नता कैसे लौट सकती है? धन यदि सुख या शान्ति न ला सके, तो फिर उसकी उपयोगिता ही क्या?

कानून के एक विख्यात प्राध्यापक का एक पुत्र है। आठ या नौ वर्ष की आयु में वह बालक एक दुकान से काँच का एक टुकड़ा ले आया। बच्चे की माँ कहती है कि उसी दिन से उनका दुर्भाग्य शुरू हो गया। तब से लेकर पिछले छह या सात वर्षों तक उस बालक की मानसिक हालत स्वस्थ नहीं थी। कोई भी यह नहीं जान पाता कि वह तीन अल्सेशियन कुत्तों द्वारा सुरक्षित घरों से घड़ी या टेपरिकार्डर कैसे उठा लाता है। इससे भी विचित्र बात यह है कि उसे दूसरों के घरों के आसपास मलत्याग करने की बुरी आदत पड़ गयी। उसमें एक और भी विचित्र आदत है। वह किसी के भी घर का दरवाजा खटखटाता है और घर पर किसी के मौजूद होने पर वह कहने लगता है, 'क्षमा कीजिए, मैं यहाँ गलती से आ गया।' पर घर में किसी के न होने पर वह वहाँ से मनपसन्द चीजें उठा लेता है। वह घरों में घुसता कैसे है? वह खिड़कियों की छड़ों को आसानी से मरोड़ डालता है। चुराई हुई चीजों का वह क्या करता है? वह उन्हें कहीं छिपा देता है। वह अपने माता-पिता के प्रति भी अपशब्दों का प्रयोग करता है। एक डायरी में

वह अपने नित्य किए गए कार्यों को लिखकर रखता है। अपनी कक्षा की एक लड़की से उसने पत्राचार भी आरम्भ किया। उसे उस लड़की का विश्वास भी हासिल हो गया है। उसे सतत धूम्रपान करने की लत लग गयी है। एक मनो-चिकित्सक ने उसे सोशियोपैथ का रोगी बताया। मनो-चिकित्सक ने उसके माता-पिता को आश्चस्त किया कि प्रेम और धैर्यपूर्वक चिकित्सा करने पर उनका पुत्र कुछ वर्षों में ठीक हो जाएगा। कुछ काल बाद उसका व्यवहार असह्य हो जाने पर उसके माता-पिता ने उसे मनो-चिकित्सालय में भर्ती करा दिया। वहाँ से उसने भाग निकलने का निष्फल प्रयास किया। यहाँ तक कि एक बार उसने आत्महत्या की भी चेष्टा की। आजकल वह अपने माता-पिता को धमकी देकर कहता है, 'परीक्षा-फल घोषित हो जाने दीजिए। मैं आप लोगों को मार डालूँगा।' विशेषज्ञ कहते हैं कि प्रेम और स्नेह से इस बालक का उपचार होना चाहिए। परन्तु यह है कितना कठिन !

उस बालक की दादी कहती है, 'हाय, ये दुःखदायी बच्चे हमारे पूर्वजन्म के कुकर्मों का फल हैं। ये बच्चे हमारी नियति हैं। कोई क्या कर सकता है?' इस बालक के पिता युक्तिवादी हैं और वे अपने पुत्र के आरोग्य हेतु आधुनिक चिकित्सा में विश्वास रखते हैं। वे भगवान में या प्रार्थना में विश्वास नहीं करते। उसकी माँ अब भी यह निश्चित नहीं कर सकी है कि वह किस देवता की मनौती माने। यह बालक समूचे परिवार के लिए एक सिरदर्द बना हुआ है।

क्या वे इस कष्ट से उबर नहीं सकते? ऐसी बात नहीं कि इस समस्या का कोई हल ही न हो। जहाँ चाह, वहाँ राह।

संशय का विष

शंका तथा चिन्ता और भय तथा तनाव – ये सभी साथ-साथ लगे रहते हैं। ये अविभाज्य हैं। जब किसी व्यक्ति के मन में कोई सन्देह

घुस जाता है, तो वह विनाश की ओर उन्मुख हो जाता है। उसका जीवन एक त्रासदी बनकर रह जाता है। निम्नलिखित घटनाएँ इसका प्रमाण हैं -

दिनेश नाम का एक युवा पुलिस अधिकारी अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने परिवार और मित्रों में बड़ा लोकप्रिय था। वह अपनी पत्नी के साथ खरीददारी करने गया था। संयोगवश तभी उसके पास खड़ी एक युवती उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दी। दिनेश की श्रीमती ने इसे देखा और तत्काल अपने पति पर सन्देह कर बैठी। वह चिन्तित और ईर्ष्यालु हो गयी। उसे विश्वास हो गया कि वह युवती उसके पति की प्रेमिका है। तब से वह निरन्तर अपने पति को ताने और धमकी देकर परेशान करती रहती है। दिनेश चाहे जितना उसे समझाने का प्रयास क्यों न करे, वह उसकी बातों से आश्वस्त नहीं होती। सन्देह और ईर्ष्या से वह पागल-सी हो गयी है। कभी-कभी वह टेलिफोन मिलाकर उस महिला को धमकाते हुए कहती है, 'धन के लोभ में तुमने मेरे पति को सम्मोहित करके एक सुखी परिवार उजाड़ दिया। तुम एक दुश्चरित्र नारी हो।' दिनेश एक बार जब एक क्लब में एक महिला से बातें कर रहा था, तो उसकी पत्नी ने वहाँ पहुँचकर बड़ा हंगामा खड़ा कर दिया। बेचारा दिनेश सबके सामने अत्यन्त लज्जित हो गया। यहाँ तक कि उसने अपनी पत्नी को तलाक देने का भी असफल प्रयास किया। कभी सुखद वैवाहिक जीवन बिताने के बाद अब वह अपनी पत्नी से पीड़ित है। वह एक ऐसे विवाह-बन्धन में फँसा हुआ है, जो पति-पत्नी दोनों के लिए नरक बन गया है। क्या उसके उद्धार का कोई उपाय नहीं है?

लक्ष्मी देवी एक अविवाहित प्रौढ़ महिला हैं। उनके पास अपना निजी मकान तथा पैतृक सम्पत्ति है। उनका समय घरेलू कार्यों, पूजा, प्रार्थना तथा स्वाध्याय में बीतता है। उनकी छोटी बहन भी काफी

पढ़ी-लिखी है और वह एक कॉलेज में प्राध्यापिका है। वह भी अविवाहित है। इन दोनों बहनों का एक भाई चालीस वर्ष से अधिक आयु का है। वे उसका विवाह करना चाहती हैं, ताकि उनकी वंश-परम्परा चलती रहे, पर उन्हें अपने प्रयास में सफलता नहीं मिली। उनका अस्सी वर्ष की आयुवाला एक निकट-सम्बन्धी मनगढ़न्त बातें फैलाकर इसमें बाधा डालता रहता है। विवाह तय हो जाने के बाद हर बार वह कुछ अफवाहें फैलाकर या गलत सूचना देकर अस्तावित विवाह को रद्द करा देता है। दोनों बहनें इस दुष्ट बुद्धि के षड्यंत्रों से तंग आ चुकी हैं। उनका भाई उन्हें सान्त्वना देते हुए कहता है, 'बहनो, तुम लोग चिन्ता मत करो। मुझे अविवाहित ही रहने दो। विवाह में भला क्या रखा है?' अपनी दुर्भाग्यपूर्ण दुर्दशा का दुःख भोगते रहने के बावजूद दोनों बहनों ने आशा नहीं छोड़ी है, पर वे अपने को पूरी तौर से असहाय पाती हैं। क्या उनके दुःखों का अन्त होगा?

राजू अपनी पसन्द की एक लड़की से शादी करना चाहता है। परन्तु उसके माता-पिता उसकी पसन्द का अनुमोदन नहीं करते। किसी ने उस लड़की के विरुद्ध उनके मन में जहर घोल दिया है। वे लोग राजू को धमकी देकर कहते हैं, 'हम गुण्डों से तेरी पिटाई करवा देंगे; जादू-टोने की सहायता से तुझे अन्धा कर डालेंगे। यदि तू उस लड़की से विवाह करेगा तो हमारा अभिशाप तुम दोनों को बरबाद कर देगा।' अब राजू का दिमागी सन्तुलन बिगड़ गया है। यद्यपि कुछ लोगों ने उसे सहायता के लिए भगवान से प्रार्थना करने की सलाह दी है, पर वह ऐसा कर पाने में असमर्थ है; क्योंकि उसकी ईश्वर, प्रार्थना, धर्म आदि में जरा भी आस्था नहीं है। वह स्वयं को वैज्ञानिक प्रवृत्ति सम्पन्न कहता है। अब वह युवक अवसादग्रस्त होकर अत्यन्त निराश हो चुका है। क्या उसके लिए इस कठिनाई से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है?

मैं क्या करूँ?

कुछ लोगों का ऐसा भी अनुभव है - 'मैंने भगवान से प्रार्थना करने की चेष्टा की है, परन्तु मेरा चित्त एकाग्र नहीं होता। मेरे मन की शान्ति चली गयी है। मैं बड़ी जल्दी उद्विग्न होकर अनुचित बातें कह देता हूँ। बाद में मुझे अपनी गलती का पछतावा होता है, पर मैं स्वयं में सुधार नहीं ला सका हूँ। मैं सफलता की आशा के साथ स्वर्णिम भविष्य के सपने देखा करता था। अब मैं महसूस करता हूँ कि मैं बिलकुल ही असफल रहा। मैं नाटे कद का व्यक्ति हूँ और इस कारण लोग प्रायः मेरी हँसी उड़ाते हैं। इतने सारे अपमान और दुःख-कष्ट मैं कैसे सह सकता हूँ? अनजाने में ही मैं अनैतिकता की ओर बढ़ रहा हूँ। यदि एक दिन मैं अपराधी बन जाऊँ, तो इसमें आश्चर्य नहीं।'।

प्रार्थना, सत्संग, अच्छे तथा पवित्र ग्रन्थों का नियमित पाठ और अच्छी आदतें डालकर व्यक्ति अपने मन पर निग्रह करना सीख सकता है। धैर्य, अध्यवसाय और ईमानदारी के साथ इन निर्देशों का पालन करने पर सफलता निश्चित है। जब हम भोजन और विश्राम के लिए यथेष्ट समय निकाल लेते हैं, तो फिर यह कहना ठीक नहीं है कि अत्यधिक व्यस्त होने के कारण हम प्रार्थना करने के लिए समय नहीं निकाल पाते। निष्ठापूर्वक प्रयास करने पर हम निश्चय ही समय निकाल सकेंगे। विलियम जेम्स ने कहा है, 'हमें अपनी प्रयत्नशीलता को सजीव बनाए रखना है।' यदि हम दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ते रहे, तो हमारी प्रगति सुनिश्चित है।

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में हम आवश्यकता का अनुमान लगाकर खाद्यान्न एकत्र करते हैं। बिजली जाने की सम्भावना हो, तो लोग उस स्थिति से निपटने के लिए तैयार रहते हैं। माँ यदि कहीं दूर गयी हो, तो हम कहीं-न-कहीं अपने भोजन की व्यवस्था कर ही लेते हैं। धोबी

के न आने पर हम स्वयं ही कपड़े धोते हैं। हम घण्टों बैठकर टेलीविजन, सिनेमा आदि देखते रहते हैं। तो भी सर्व-शक्तिमान प्रभु की महिमा का चिन्तन करने के लिए हम अपने प्रतिदिन के चौबीस घण्टों में से चौबीस मिनट का समय भी नहीं निकाल पाते।

अभी आरम्भ कर दो

अपनी सीमित बुद्धि तथा अन्तर्दृष्टि के द्वारा हमारे लिए यह समझना और बता पाना कठिन है कि हम क्यों दुःख भोगते हैं और हमारे दुःख-कष्टों का क्या तात्पर्य तथा उद्देश्य है। परन्तु यदि हम कष्टों से मुक्ति पाने की सही तकनीक सीख लें तथा स्थिति से निपटने के उचित उपाय अपनाएँ, तो कष्टकारी कठिनाइयों से निश्चय ही मुक्त हो सकते हैं। अनेक लोगों ने कठिनाइयों के इस महासमुद्र को सफलतापूर्वक पार किया है। उनके पदचिह्नों का अनुसरण करके हम भी अपनी सारी परेशानियों से छुटकारा पा सकते हैं। खुली आँखों से न दिखनेवाले पदार्थ सूक्ष्मदर्शी यंत्र के द्वारा स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। खगोलीय पिण्डों तथा दूरवर्ती चीजों को केवल एक दूरदर्शी यंत्र (टेलीस्कोप) की सहायता से देखा जा सकता है। यह ब्रह्माण्ड सूक्ष्म तथा अबोधगम्य नियमों द्वारा परिचालित होता है, जिसे साधारण मानव-मन पूरी तौर से नहीं समझ सकता। सुख तथा दुःख हमारे पूर्वकृत कर्मों के परिणाम हैं। आगे के एक अध्याय में इस विषय में सविस्तार चर्चा की जाएगी। हम अपनी वर्तमान समस्या या संकट का कारण समझ नहीं सकते। परन्तु हर चीज का निश्चित रूप से एक-न-एक कारण अवश्य हुआ करता है। हमें स्मरण रखना होगा कि वर्तमान दुःख हमारे सत्कर्मों के परिणाम नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, सत्कर्मों के फल से कभी दुःख या कष्ट नहीं मिलता। परन्तु यह स्वाभाविक है कि कर्म के सूक्ष्म नियम या कार्य-कारण सम्बन्ध कभी-

कभी सामान्य लोगों को भ्रमित कर देते हैं। परन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि हर घटना इन सूक्ष्म और अनिवार्य नियमों के अनुरूप ही घटती है।

हम इस बात पर आश्चर्य कर सकते हैं कि भले तथा सज्जन लोग भी क्यों इतना दुःख भोगते हैं! सत्कर्मों में निरत सज्जनों और भगवद्भक्तों को भी अपने जीवन में दुःख क्यों भोगने पड़ते हैं - इस बात को बहुत-से लोग समझ ही नहीं पाते और इस कारण उनका भगवान पर से विश्वास उठ जाता है। ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो किसी प्रश्न का उत्तर न जानने पर यह सोचते हैं कि इसका कोई उत्तर हो ही नहीं सकता। वस्तुतः समस्याएँ चाहे जितनी जटिल क्यों न हों, उनका कोई-न-कोई समाधान तो होता ही है। मनुष्य को अपने हाथ में आनेवाले अवसरों के सर्वोत्तम उपयोग पर अधिक ध्यान देना चाहिए। घर में आग लगी हो, तो व्यर्थ की चर्चाओं में समय गँवाना निरर्थक ही नहीं, बल्कि खतरनाक भी सिद्ध हो सकता है। हमें तेजी से आग बुझाने के कार्य में लग जाना होगा। एक बच्चे का उदाहरण लें। यदि आप उसे आकाश के किसी बड़े तारे के विषय में बताएँ, तो वह मनोयोगपूर्वक सुन भले ही ले, पर वह असंख्य आकाश-गंगाओं आदि की कल्पना नहीं कर सकेगा। मस्तिष्क थोड़ा परिपक्व हो जाने पर ही वह इन चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकेगा। अनुभव तथा प्रार्थना द्वारा परिपक्व और संयमित मन ही जीवन के उच्चतर मूल्यों, आध्यात्मिक नियमों आदि की धारणा कर सकता है। हमारे आगे बढ़ने के लिए प्रबुद्ध लोगों द्वारा दिखाए गए पथ के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या है? भगवान के श्रीचरणों का स्पर्श पाकर धन्य हुए महात्माओं में विश्वास के सिवा हम और कर ही क्या सकते हैं? हमें निःसन्देह और निःसंकोच उनकी शिक्षाओं पर निर्भर रहना होगा। ईश्वर में विश्वास या प्रार्थना न करने पर हम ही घाटे में रहेंगे।

यदि हम ईश्वर को धमकी देते हुए कहें, 'यदि आप मेरे जीवन को पूर्णतया निर्विघ्न, सुचारु तथा सभी चिन्ताओं एवं समस्याओं से रहित नहीं बनाते, तो मैं आपमें विश्वास नहीं करूँगा', तो इससे उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता। दुःख-कष्ट हमें सबल बनाने और हमारे मन और हृदय को शुद्ध करने के लिए ही आते हैं। सबको समर्पण और निष्ठाभाव से ईमानदारीपूर्वक भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। इससे निश्चय ही हमारा परम कल्याण होगा। भगवान हमारा मार्गदर्शन करेंगे।

निरन्तर दुःख

हमने प्रायः 'जीवन की समस्याएँ' शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ समस्याओं से हमारा अभिप्राय भोजन, वस्त्र तथा मकान के अभाव जैसी आर्थिक कठिनाइयों से नहीं है; वैसे भारत जैसे निर्धन देश में ये समस्याएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। सम्पूर्ण समाज के सम्मिलित एवं एकनिष्ठ प्रयत्नों के द्वारा उचित सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक सुधारों को अपनाकर अकाल और अभावजन्य समस्याओं का समाधान हो सकता है। पश्चिम के कुछ राष्ट्र इन समस्याओं से सफलतापूर्वक निपट चुके हैं। पर जीवन की कुछ आधारभूत समस्याओं और गरीबी के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। इस सन्दर्भ में बताई समस्याएँ हमारे अस्तित्व से जुड़ी हैं। उन्हें बाहरी या भौतिकवादी साधनों द्वारा हल नहीं किया जा सकता। ये अस्तित्व-सम्बन्धी 'समस्याएँ' 'दुःख' कही जाती हैं। एक गरीब व्यक्ति किसी धनी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्रसन्न और सन्तुष्ट रह सकता है। यह तथ्य दर्शाता है कि हमारा दुःखबोध अथवा हमारे सुख-दुःख हमारी भौतिक सम्पत्ति पर निर्भर नहीं हैं। किसी व्यक्ति द्वारा अनुभूत दुःख की तीव्रता उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। अस्तित्व सम्बन्धी इन सीमाओं और अभाव के अर्थ में ही गौतम बुद्ध ने इस

संसार को दुःखमय बताया। रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु ऐसी समस्याएँ थीं, जिनसे बुद्ध का जीवन तथा चिन्तन काफी प्रभावित हुआ। यदि उनका केवल किसी एक भूखे व्यक्ति से सामना हुआ होता, तो वे उसे यथेष्ट भोजन दे देते और समस्या सुलझ जाती। वे गरीबी की समस्या से निपटने के लिए कृषि तथा आर्थिक हल सुझा सकते थे। पर उन्होंने मनुष्य के दुःख का मूल कारण ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया।

आप पूछ सकते हैं, 'सांसारिक साधनों की सहायता से हम मानव-जीवन की इन आधारभूत समस्याओं को हल क्यों नहीं कर सकते?' भय, चिन्ता, असन्तोष, प्रेम, घृणा आदि भावनाएँ और अनुभूतियाँ मानव-व्यक्तित्व के साथ जटिल रूप से रची-बसी हैं। ये समस्याएँ मानव के निजी अस्तित्व के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी हैं। बाह्य परिवेश, दूसरे लोग आदि हमारे दुःख-कष्ट के प्रमुख कारण नहीं हैं। इन सभी समस्याओं का मूल हमारी चेतना की गहराई में है। हमें केवल वहीं इनका समाधान ढूँढ़ना है। हमें इन सभी समस्याओं का आध्यात्मिक हल खोजना है। इसका दूसरा कोई उपाय नहीं।

सुख की मृग-मरीचिका

दुर्योधन द्वारा निष्कासित होने के बाद विदुर हस्तिनापुर छोड़कर साधु-वेश में घने जंगलों में विचरण कर रहे थे। वर्षों बाद वे श्रीकृष्ण के एक परम भक्त उद्धव से मिले। उन्होंने महाभारत-युद्ध के दौरान मारे गए लाखों लोगों का समाचार सुना। उन्होंने श्रीकृष्ण के देहत्याग तथा यदुवंशियों के विनाश के बारे में भी सुना। भाग्य के इस क्रूर और अबोधगम्य खेल से विदुर स्तब्ध रह गए। कुछ समय तक वे गहन चिन्तन में डूबे रहे। फिर वे सीधे ऋषि मैत्रेय के आश्रम में गए और अपने हृदय का दुःख उन्हें कह सुनाया -

‘लोग सुख की खोज में इधर-उधर भटकते रहते हैं; सुखी होने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यों में लगे रहते हैं। सुख पाने हेतु लोग प्राणपण चेष्टा करते हैं। परन्तु वे न केवल सच्चा स्थायी सुख प्राप्त कर पाने में असफल रहते हैं, अपितु अपने कार्यों से वे आगे चलकर असंख्य कठिनाइयों में फँसते जाते हैं। हे महर्षि! दुःख के इस दलदल से निकलने का क्या उपाय है? परेशानियों के इस बोझ से पीड़ित लोगों के लिए आपकी क्या सलाह है?’

इस प्रश्न को पूछनेवाले विदुर कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे अपने काल के महानतम चिन्तकों तथा परम ज्ञानियों में एक थे। विदुर के इस प्रश्न का ऋषि मैत्रेय ने क्या उत्तर दिया? क्या उन्होंने विदुर को कुछ प्रभावशाली बड़े लोगों से मिलने की सलाह दी? नहीं। क्या उन्होंने समाज-सुधार अपनाने को कहा? नहीं। तो क्या उन्होंने उन्हें राजनीति या अर्थशास्त्र पढ़ने की सलाह दी? नहीं। उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा। ऋषि मैत्रेय ने केवल भगवान की महिमा का वर्णन किया। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने जीवन की समस्याओं का एक आध्यात्मिक समाधान ढूँढ़ने का सुझाव दिया।

सच पूछो तो सड़े घावों को सुगन्धित पुष्पों के द्वारा ढँकने से क्या लाभ? सभी प्रकार के बन्धनों से पूर्ण मुक्ति पाना सहज नहीं है। हम अपनी मर्त्य देह तथा मन द्वारा आरोपित सीमाओं से त्रस्त रहते हैं। हम अन्य लोगों द्वारा अपने ऊपर डाले जानेवाले प्रभावों से भी पूरी तौर से बच नहीं सकते। प्रकृति के प्रकोप से उत्पन्न दुःखों से हम स्वयं को पूर्णतया मुक्त नहीं कर सकते। यहाँ तक कि जब लगता है कि किसी विशेष स्थिति में हमें कुछ राहत मिल रही है, तो अन्ततः हम अनुभव करते हैं कि वह केवल अस्थायी या आंशिक राहत ही थी। यह राहत सिर के बोझ को कंधे पर रखने की तरह ही है। इसलिए सांसारिक राहत या भौतिक समाधान अस्थायी और अपर्याप्त हैं।

तो फिर क्या जीवन की सभी समस्याओं का कोई स्थायी और पूर्ण समाधान है? संसार के सभी महान धर्मग्रन्थों और तत्त्वदर्शी ऋषियों ने घोषणा की है कि जीवन की समस्याओं का एक आध्यात्मिक समाधान है। महापुरुषों और शास्त्रों के वचनों में श्रद्धा आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला है। हमारे पवित्र धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि श्रद्धा या दिव्य विश्वास-सम्पन्न व्यक्ति परम ज्ञान प्राप्त करता है। श्रद्धा हमें नैतिक और आध्यात्मिक सद्गुणों को धारण करने हेतु प्रेरित करती है। यह मनुष्य को निम्नतर सुखों और पाशविक प्रवृत्तियों को छोड़ने हेतु प्रेरित करती है, ताकि वह अपने दैनन्दिन जीवन में अपनी अन्तर्निहित दिव्यता को अभिव्यक्त कर सके। ऐसा मनुष्य नैतिक और आध्यात्मिक जीवन के नियमों का ईमानदारी से पालन करता है और पूजा, प्रार्थना, आत्मविश्लेषण तथा ध्यान आदि के माध्यम से समस्त दुःखों और परेशानियों से मुक्त हो जाता है।

आर्थिक समस्याएँ

कुछ लोग कहा करते हैं, 'धनाभाव न होता तो मैं अद्भुत कार्य कर दिखाता।' अमेरिका में एक पत्रकार हजारों लोगों के जीवन का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लगभग ७०% चिन्ताएँ वित्तीय समस्याओं के कारण होती हैं। भारत जैसे गरीब देश में इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। आर्थिक संकट से ग्रस्त होने पर हम जीवन की समस्याओं को हल करने का साहस खो बैठते हैं। आत्मसंशय, उत्साह की कमी और थकावट हमारे मन को रौंद डालती हैं; ऊब, आलस्य तथा चिन्ता हमें सताती रहती हैं। सम्पत्ति की पूजा करनेवाले किसी समाज में गरीबी एक बड़ा अभिशाप है।

तो क्या आर्थिक समस्याओं का कोई समाधान नहीं है? क्या हमें केवल निराश होकर हाथ-पर-हाथ रखे समस्या के बारे में सोचते रहना होगा?

यह सच है कि बात-की-बात में तुम्हारी आर्थिक समस्याओं को हल कर सकनेवाला कोई जादुई सूत्र हमारे पास नहीं है। परन्तु यदि हम ईमानदारी के साथ विचार और कार्य करें, तो उन्हें हल कर पाना कठिन नहीं होगा। सम्भवतः यह समस्या तुम्हारे या तुम्हारे बड़े लोगों द्वारा संसाधनों के कुप्रबन्ध के कारण पैदा हुई हो। पर इसे हल करने का दायित्व तुम्हारा है। स्थिति से निपटने के लिए तुम्हें ईमानदारीपूर्वक प्रयास करना होगा।

मैं तुम्हें अपने एक मित्र के बारे में बताता हूँ। तीन सदस्योंवाले अपने छोटे परिवार के भरण-पोषण के लिए वह पर्याप्त धन कमाता है। वह एक सरकारी कर्मचारी है। उसे घर चलाने में ज्यादा खर्च नहीं करना पड़ता। तो भी वह हर महीने के आरम्भ में ही ऋणग्रस्त होने लगता है। फिर वह प्राप्त वेतन से पिछले महीने के कर्ज को चुका नहीं पाता। पुराना कर्ज चुकाने के लिए वह कोई नया कर्ज लेता है। इस प्रकार यह दुश्चक्र चलता रहता है। फिर झूठ बोलना जरूरी हो जाता है। मित्रों के द्वारा उधार देने से मना करने पर मित्रता पर असर पड़ता है। कभी-कभी तो उसके लिए घर की दैनिक जरूरतें भी पूरी कर पाना कठिन हो जाता है। घर में किसी के बीमार पड़ जाने या अतिथियों के आ जाने पर स्थिति दुःखदायी हो जाती है। यद्यपि सारी गलती उसी की है, तो भी वह दूसरों को दोष और समाज को अभिशाप देते हुए कहता है, 'लोगों के उद्देश्य तथा कार्य पूरी तौर से स्वार्थपूर्ण हैं।'।

ये सज्जन अच्छे और उदार हैं, पर थोड़े अपव्ययी हैं। वे उच्च जीवन-स्तर से जीना पसन्द करते हैं। वे मित्रता को महत्त्व देते हैं

अतः वे अच्छे लोगों की संगति ढूँढ़ते रहते हैं। परन्तु बचत में उनका विश्वास नहीं है। वे कर्ज लेकर भी टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर, वाशिंग मशीन आदि खरीद लेते हैं। ये सज्जन अपेक्षाकृत आसानी से आरामदेह जीवन बिता सकते थे। उनकी गलती केवल इतनी ही है कि वे बिना विचारे अपना धन ऐसी चीजों पर खर्च कर देते हैं, जो उनकी हैसियत के परे हैं। इस कारण उन्हें कर्ज का आश्रय लेना पड़ता है। इस प्रकार कर्ज और निर्धनता का दुश्क्र उन्हें पीड़ित किए रहता है।

अर्थ-व्यवस्था एक कठोर शासक है। यह किसी के प्रति दया अथवा सहानुभूति नहीं दिखाता। तुम चाहे जितना भी प्रयास करो, पर धन खर्च किए बिना रह नहीं सकते। परन्तु यदि तुम थोड़ा विचारपूर्वक और भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखकर चलो, तो तुम अपना धन इतनी तेजी से नहीं खर्च करोगे। तात्पर्य यह है कि भविष्य की जरूरतों पर थोड़ा ध्यान देना हमें अपव्यय करने से रोकता है।

वास्तविक समस्या धन के अभाव की नहीं है। महान अर्थशास्त्रियों की खोज है कि धन का ठीक-ठीक उपयोग करना ही बड़ा महत्त्व रखता है। दूसरे शब्दों में, हमें धन खर्च करने की कला सीख लेनी चाहिए। अनेक धनी लोग अपनी आय की अपेक्षा काफी अधिक खर्च कर डालते हैं और इसके फलस्वरूप अपने लिए आर्थिक संकट पैदा कर लेते हैं। और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपनी सीमित आय को भी विवेकपूर्वक व्यय करके सुखी, सन्तुष्ट तथा ऋणमुक्त रहते हैं।

इंग्लैंड में रहते समय गाँधीजी हर महीने ४५ पौंड खर्च किया करते थे। बाद में उन्होंने अपना खर्च केवल १५ पौंड तक सीमित कर लिया था।

बैंगलोर में निवास के दौरान गाँधीजी ने महादेव भाई से कहा था, 'देखो, कपड़े धुलवाने में काफी व्यय हो रहा है।' महादेव भाई ने कहा, 'मैं नित्य ४ बजे उठकर मध्य रात्रि तक कार्य करता रहता हूँ।' गाँधीजी ने कहा, 'तो फिर प्रातः साढ़े तीन बजे उठकर अपने कपड़े धो लिया करो।'।

जब गाँधीजी यरवदा जेल में थे, तब उन्हें सरकार से प्रति माह दो सौ रुपये का भत्ता मिला करता था। वे प्रति माह केवल ३५ रुपये खर्च करके बाकी राशि सरकार को लौटा देते थे। गाँधीजी ने तपोमय जीवन बिताया था। माना कि हम सबके लिए उस हद तक किफायती होना सम्भव नहीं है, लेकिन हम लोग भी कुछ हद तक तो अपना खर्च जरूर घटा सकते हैं। गाँधीजी ने अपने जीवन द्वारा हमारे सामने एक दृष्टान्त रखा था। थोड़ा-बहुत ही सही, पर क्या हमें भी उस आदर्श को अपनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए?

एक बार एक अंग्रेज ने कहा था, 'धन कमाना तो हर कोई जानता है, परन्तु लाखों में से कोई एक ही उसका सही व्यय करना जानता है।' यह एक परस्पर-विरोधी कथन लगता है, पर इसमें एक गहन सत्य छिपा है। यदि हम ईमानदारी से अपने दैनिक खर्च पर विचार करें, तो पता चलेगा कि हम कितना अनावश्यक खर्च कर डालते हैं।

हमारे एक मित्र कहा करते थे, 'मुझे यह तो दिखता है कि रुपये कैसे सिक्कों में परिणत हो जाते हैं, पर ये सिक्के कहाँ और कैसे गायब हो जाते हैं, इसका मुझे पता नहीं चलता।' बहुत समझा-बुझाकर मैंने उनसे कम-से-कम महीने भर उनके दैनिक व्यय का लेखा-जोखा रखने को राजी किया। शीघ्र ही वे समझ गए कि बिना विचारे किए जानेवाले छोटे-मोटे खर्चों से ही उनके पैसे खत्म हो जाते थे। सामान्यतः हम जिन खर्चों को महत्वहीन या नगण्य मानकर

उपेक्षा करते हैं, वस्तुतः वे ही अज्ञात रूप से हमारे बजट को असन्तुलित कर देते हैं।

नित्य डायरी लिखना बड़ा लाभकारी है। इससे हमें अपनी वित्तीय समस्याओं का कारण ढूँढ़ने में मदद मिलती है। अपनी आय के आधार पर सामान्य बजट बनाकर हम उसी के आधार पर खर्च करने की आदत डाल सकते हैं।

सर्वप्रथम तो जीवन की मूलभूत जरूरतों पर ध्यान देना होगा। रेडियो या टेलीविजन खरीदने की अपेक्षा स्नानागार की टूटी दीवाल की मरम्मत कराना अधिक जरूरी है। विलासिता को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती और न ही अपनी भावनात्मक जरूरतों की पूर्ति के लिए चीजें खरीदनी चाहिए। खर्च के पूर्व अपने से यह पूछने में अधिक बुद्धिमानी है कि क्या यह चीज सचमुच जरूरी है? परिवारों को अपनी आय के भीतर ही गुजारा करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। आपात स्थिति से निपटने के लिए हम बैंक में रखी अपनी बचत की मदद ले सकते हैं। बीमारी, दुर्घटना जैसी अप्रत्याशित या अपरिहार्य घटनाओं के लिए भी हमारे पास सुरक्षा-व्यवस्था या बीमा हो। लॉटरी, जुआ आदि धन अर्जन के सरल उपाय लग सकते हैं, पर अन्ततः वे हमें बर्बाद कर डालते हैं।

एक विख्यात बैंकर और अर्थशास्त्री एक बार युवा विद्यार्थियों की एक टोली को आर्थिक सफलता के रहस्य बता रहे थे -

१. कभी अपनी कमाई से अधिक खर्च मत करो।
२. यदि तुम्हारे ऊपर ऋण है, तो पहले उसे चुकाओ।
३. कर्ज से दूर रहो। उधार में कुछ मत खरीदो। कुछ विक्रेता प्रलोभन देते हुए कहते हैं, 'अपनी इच्छानुसार जो चीज चाहिए, ले जाइए, पैसे बाद में दे दीजिएगा।' ऐसे लोगों की चाल में मत फँसो।

४. नितान्त आवश्यक चीजों के लिए ही धन का व्यय करके अपना खर्च घटाओ। कुछ भी खरीदने के पूर्व यह विचार कर लो कि क्या उसके बिना तुम्हारा काम चल सकता है या क्या तुम उससे सस्ती चीज से अपना काम चला सकते हो।

५. जितना भी हो सके, बचत करो; और उसे बुद्धिमत्ता के साथ तथा ठीक ढंग से निवेश करने की कला सीखो।

तुम कह सकते हो कि ये बातें तो सबको ज्ञात हैं, फिर इन्हें बताने की क्या जरूरत है? परन्तु केवल जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है कि तुम अपने जीवन में इनका कितना अभ्यास करने में समर्थ हो और तुमने इसे कार्य रूप में परिणत करने का कितना प्रयास किया है। अच्छे अर्थ-प्रबन्धन के इन पाँच मूलभूत सिद्धान्तों के अभ्यास का प्रयास करो। एक वर्ष तक इन पाँच सिद्धान्तों पर चलने का प्रयास करने पर तुम्हें मेरी बातों की सत्यता समझ में आ जाएगी। इससे तुम्हारी अर्थ-व्यवस्था निश्चय ही सुधरेगी।

बेकन कहते हैं, 'धन एक अच्छा सेवक, पर बुरा मालिक है। धन के सेवक न बनकर, उसी को अपना सेवक बनाओ।'।

सफलता का रहस्य

अपने सहकर्मियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय भारतीय जीवन बीमा निगम के एक वरिष्ठ अधिकारी से एक बार मैंने उनकी सफलता का रहस्य पूछा। मैं जानना चाहता था कि क्या चिन्ता और निराशा उन्हें तंग नहीं करती? उन्होंने बताया कि एक बार हताशा के शिकार होकर भी किस प्रकार वे उसके भीषण चंगुल से सही-सलामत निकलने में समर्थ हुए थे -

'यद्यपि शुरू में एक अधिकारी के रूप में अपनी नियुक्ति से मैं प्रसन्न था, परन्तु धीरे-धीरे एक तरह के भय व चिन्ता ने मुझ पर

आधिपत्य जमा लिया। विभिन्न संगठनों में लगभग १७ साल एक कर्मचारी के रूप में कार्य करके मैंने अनुभव प्राप्त किया था। मैं कर्मचारियों के दोषों, कटुताओं, अनुशासनहीनता, अक्खड़पन आदि से परिचित था। मुझे आशंका थी कि क्या मैं उन्हें कार्य में प्रेरित करके उचित रूप से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकूंगा? अधीनस्थों को अनुशासित रख पाने में विफलता से पैदा होनेवाले सम्भावित मानसिक तनाव से भी मैं भयभीत था। मुझे लगता था कि कभी-न-कभी मेरी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ रस्साकशी अपरिहार्य हो जाएगी। प्रश्न था कि ऐसी परिस्थिति से कैसे निपटा जाएगा। मैं जानता था कि केवल बड़बोलेपन, तर्क-सामर्थ्य और वाद-विवाद की शक्ति से कोई मदद नहीं मिल सकती। प्रतिद्वन्द्वी को तर्क में परास्त कर देने से कोई लाभ नहीं। तर्क में हार जानेवाले लोग बदले की भावना रखकर विजेता को एक-न-एक दिन धराशायी कर सकते हैं। मनुष्य को विजय के बाद भी उल्लास का प्रदर्शन न करने की तथा पराभूत हो जाने पर भी पराजय-भाव अभिव्यक्त न होने देने की कला सीख लेने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के दुर्भाव को जीतने के लिए एक सकारात्मक चिन्तन-शक्ति भी विकसित करने की आवश्यकता है। मनोवैज्ञानिक युद्ध में समर्थ, बुद्धिमान, शिक्षित और सुसंगठित कर्मचारी-समूह से प्रभावशाली ढंग से निपट पाना आसान कार्य नहीं था। मैं पहले से ही यह जानता था कि यहाँ चालबाजी से काम नहीं चलनेवाला है। किसी भी चालाकी का आश्रय लेने पर, वे लोग उसे तत्काल समझ लेते हैं और उसे निष्प्रभावी बनाने के प्रयास में लग जाते हैं। लोगों के हृदय-परिवर्तन के अतिरिक्त समस्या के समाधान का कोई अन्य प्रभावशाली उपाय नहीं था। परन्तु इस कार्य का सम्पादन उतना आसान नहीं था। खैर, अपने जीवन में अब तक प्राप्त अनुभवों से मुझमें जो आत्मविश्वास

विकसित हुआ था, उसने भी मुझे दृढ़ साहस प्रदान किया। भगवान की कृपा से मैं अपने कार्य में सफल रहा।

‘मेरी सफलता का सर्वाधिक श्रेय मेरे धैर्य को जाता है। किसी कार्यालय में आनेवाली समस्याओं को हल करने में धैर्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अनेक समस्याएँ तनाव और विक्षोभ की अभिव्यक्ति होती हैं। संचित भावनाओं की अभिव्यक्ति के यथेष्ट अवसर मिलें, तो वे निकल जाती हैं। किसी उत्तेजित व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त शब्दों, वाक्यों एवं अभिव्यक्तियों को अक्षरशः नहीं लेना चाहिए। निराशा या उत्तेजना की अभिव्यक्ति के प्रत्युत्तर में क्रोधपूर्ण प्रतिक्रिया दिखाने पर समस्या बढ़ती है तथा अधिकाधिक जटिल होती जाती है। ऐसे अवसरों पर धैर्य बनाए रखना आवश्यक है। मैंने कहीं पढ़ा था, “अनेक रोगियों को उनकी बीमारी से निजात पाने के लिए चिकित्सक की नहीं, अपितु एक श्रोता की आवश्यकता होती है।” अपने मन का बोझ हलका करके और हृदय के दुःख-कष्ट दूसरों के साथ बाँटकर हम राहत महसूस करते हैं। मानसिक कष्टों के बारे में तो यह विशेष रूप से सत्य है। अनेक कर्मचारियोंवाले किसी कार्यालय में मुख्य समस्या मानवीय सम्बन्धों की है। किसी कर्मचारी द्वारा उग्र या क्रोधपूर्ण आचरण करने पर एक समस्या खड़ी हो जाती है। तर्क-वितर्क की सहायता से समस्या का कारण ढूँढ़ना बेकार है। हिंसा-भाव को निष्प्रभावी बना देने भर की ही आवश्यकता है। कर्मचारी की भावाभिव्यक्ति को धैर्य और सहानुभूतिपूर्वक सुनना ही सर्वोत्तम तरीका है। अपनी भावनाओं को प्रकट करने के बाद ही उसका क्रोध घट जाता है। समस्याओं के निदान का आश्वासन ही प्रायः समस्याओं को हल कर देता है। अगले दिन शायद उसको अपनी समस्या की याद ही न आए। इस प्रकार धैर्य के द्वारा अनेक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जा सकता है। धैर्यपूर्वक बात सुनने से पीड़ित व्यक्ति का अहंकार

शान्त हो जाता है और उसका स्वाभिमान बढ़ जाता है और निश्चित रूप से उसकी प्रतिक्रिया की तीव्रता घट जाती है। समस्या का समाधान न भी हो, पर प्रतिक्रिया आगे नहीं बढ़ती। फिर धैर्य से एक और लाभ यह है कि विरोधी के मन में विजय का भाव आ जाता है। विरोधी को जब लगता है कि उसके विचारों को बिल्कुल ही अस्वीकार नहीं किया गया है तथा उसे टाला नहीं गया है, तो इससे उसके अहं भाव को काफी सन्तुष्टि मिलती है और उसकी उत्तेजना बहुत कम हो जाती है।

‘परन्तु धैर्य की भी एक सीमा होनी चाहिए। अन्यथा वह स्वयं भी एक दुर्बलता बनकर नई समस्याएँ पैदा करेगा। धैर्य उस व्यक्ति की असहायता के रूप में व्यक्त नहीं होना चाहिए, जो कितने भी भड़कावे के प्रत्युत्तर में मौन रह जाता है। धैर्य को अनुचित मौन निष्क्रियता में परिणत होने से बचाने के लिए व्यक्ति को जानबूझकर किए गए दुर्व्यवहार, बुरी आदतों और मिथ्या दोषारोपण का विरोध करना चाहिए। यदि कोई कर्मचारी जानबूझकर या लापरवाही से अनुशासनहीनता दिखाता है, तो उसे चेतावनी अवश्य दी जानी चाहिए। धैर्य तब सार्थक होता है, जब कोई व्यक्ति परिस्थिति की जरूरतों के अनुसार कड़ी कार्यवाई करने की ताकत दर्शाता है। सकारात्मक गुण होने के लिए धैर्य को बल का द्योतक होना चाहिए। यह केवल तभी प्रभावशाली हो सकेगा। परन्तु ऐसे कठोर उपायों को अन्तिम विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

‘धैर्य के समान ही ईमानदारी भी एक आवश्यक गुण है। ईमानदारी एक महान शक्ति है। ईमानदारी का अर्थ है, मन, वाणी तथा कर्म – व्यक्तित्व के तीनों पक्षों का समायोजन। उदारहरणार्थ यदि आप कर्मचारियों को कोई वचन देते हैं, तो ईमानदारी का तकाजा है कि आप तदनुसार कार्य करें या कम-से-कम वायदे के अनुसार कार्य करने

की चेष्टा करें। अन्यथा वह बेइमानी या धोखेबाजी है। धोखेबाजी का शिकार हुआ व्यक्ति अपने अपमान या सदमे को आसानी से नहीं भूलता। किसी-न-किसी रूप में एक-न-एक दिन उसका विस्फोट हो ही जाता है। विस्फोट न होने पर वह अन्दर-ही-अन्दर उबलता रहता है। ईमानदारी से लोगों का दिल जीता जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञापूर्ति या वचन-रक्षा में समर्थ नहीं हो पाता, तो भी प्रयत्न में ईमानदार बने रहने का भी एक महत्त्व है। इससे उसे आदर मिलता है और दूसरों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

‘सफलता प्राप्त करने के लिए हमें हाथ में लिए हुए कार्य का पूरा ज्ञान होना चाहिए। “ज्ञान ही शक्ति है” – यह कथन पूर्ण और अविकृत ज्ञान की जरूरत पर बल देता है। इसके अलावा हमें सामान्य ज्ञान अथवा अन्य कई क्षेत्रों, यथा कला, साहित्य, राजनीति-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र या भाषाओं आदि के ज्ञान की भी जरूरत है। जो व्यक्ति जितनी अधिक भाषाएँ जानता है, वह उतने ही अधिक विषयों में प्रवीण हो जाता है; फिर वह उतनी ही अधिक दक्षता एवं सामर्थ्य से अपने कार्यों को सम्पन्न कर सकता है और अपने सहकर्मियों के ऊपर वह उतना ही अधिक प्रभाव विस्तार कर सकता है। यदि अपने कार्य के विषय में हमारा ज्ञान अपर्याप्त है, तो हम दूसरों को प्रभावित नहीं कर सकते। कार्य-विषयक ज्ञान का अभाव हमें अपमानजनक स्थिति में डाल सकता है। ज्ञान सचमुच ही एक महान शक्ति है। ज्ञान-ज्योति को सदैव प्रज्वलित रखना चाहिए। कार्य की उत्कृष्टता या कार्य में दक्षता प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

‘कार्यालय-प्रबन्धन के क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं के हल में विनोद और हास-परिहास की क्षमता भी बहुत उपयोगी है। एक प्रसन्न मन गम्भीर-से-गम्भीर समस्या के समाधान में सक्षम हो सकता है। एक निराश मन किसी तुच्छ समस्या को भी बहुत गम्भीर समझेगा

और उससे कार्यालय में सौहार्द का भाव विशुद्ध हो सकता है। कर्मचारी यदि प्रसन्न रहें तो उनकी कार्यक्षमता भी बढ़ती है। अतः हास-परिहास और प्रसन्नता का भाव बड़ा महत्वपूर्ण है। परन्तु हास-परिहास निरर्थक गपशप न बन जाए, इसका ध्यान रखना चाहिए। एक अच्छा चुटकुला बड़ी विस्फोटक स्थिति को निष्प्रभावी कर सकता है, पर अपनी सीमा पार करने पर हँसी-मजाक भी झगड़े की जड़ बन सकता है। वैसे आम तौर पर हास्य-विनोद एक ऐसी शक्ति है, जो तनावों को छिन्न-भिन्न करने में मदद करती है। इसका समुचित प्रयोग जीवन को सफल बनाने में एक बड़ा योगदान कर सकता है।'

आपसी सम्बन्ध जोड़ना

अनेकता में एकता प्रकृति की एक खास विशेषता है। आम के सभी वृक्षों की पत्तियाँ आम की ही पत्तियाँ कहलाती हैं, परन्तु लाखों पत्तियों में कोई भी दो पत्तियाँ एक समान नहीं होती। एक ही प्रजाति की चिड़ियों में कोई भी दूसरे के बिल्कुल समरूप नहीं होती। मानव-जाति तो एक ही है, पर एक व्यक्ति से दूसरे का अन्तर सुस्पष्ट है। यद्यपि पिन चुभ जाने से सभी लोगों के शरीर से खून बहने लगता है, परन्तु खून में भी विभिन्न वर्ग और उपवर्ग हैं। किन्हीं दो व्यक्तियों का रक्त अपनी रासायनिक संरचना में एक समान नहीं होता। कोई रोग लग जाने पर मनुष्य बीमार पड़ जाता है। परन्तु रोग भी तो हजारों हैं। सभी खाद्य पदार्थ खाने के लिए ही हैं, परन्तु प्रत्येक का स्वाद भिन्न है।

गौतम बुद्ध ने लोगों की रुचि, प्रवृत्ति और परिवेश के आधार पर उन्हें चार वर्गों में विभाजित किया है -

१. अन्धकार से अन्धकार की ओर जानेवाले लोग
२. प्रकाश से अन्धकार की ओर जानेवाले लोग

३. अन्धकार से प्रकाश की ओर जानेवाले लोग

४. प्रकाश से प्रकाश की ओर जानेवाले लोग

झोपड़ी में जन्मे एक शिशु की कल्पना कीजिए। वह बिना किसी सुविधा, बिना सुपोषण व स्वास्थ्य विषयक सावधानी, बिना शिक्षा और बिना चरित्र-विकास के प्रति उचित ध्यान के ही बड़ा होता है। उसकी प्राथमिक प्रेरणा भूख मिटाना ही है। वह उचित मार्गदर्शन या किसी सभ्य बनानेवाले प्रभाव के अभाव में ही बढ़ता है। सम्भव है वह बुरी संगति में पड़ जाए। अन्ततः वह किसी प्रकार का सामाजिक या सांस्कृतिक संस्कार पाए बिना ही संसार से चला जाता है। कहा जा सकता है कि वह शिशु अन्धकार से अन्धकार की ओर चला गया।

मान लीजिए एक झोपड़ी में जन्मा शिशु बड़ा होकर शहर में चला जाता है। वहाँ एक व्यवसायी उस तेजवान कर्मठ बालक से प्रसन्न होकर उसे प्रशिक्षित करने का प्रबन्ध करता है। वह बालक अपने नियत कर्तव्यों को निष्ठा और ईमानदारी से करते हुए अपने उपकारी व्यवसायी की सद्भावना प्राप्त कर लेता है। आगे चलकर यह बालक स्वयं भी एक व्यवसायी बन जाता है। वह विनम्रता और उदारता के सद्गुणों से भी युक्त हो जाता है। क्या यह अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने के समान नहीं है?

संसार में कुछ लोग अच्छे परिवेश में जन्म लेते हैं। वे जीवन में बिना किसी अभाव के ही बढ़ते जाते हैं। वे ज्ञानी तथा गुणियों के बीच निवास करते हैं। वे स्वभाव के अच्छे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। वे रोगों से संक्रमित हो जाते हैं, दुर्बल हो जाते हैं और दुःखी होकर संसार से विदा होते हैं। उन लोगों ने प्रकाश से अन्धकार में प्रवेश किया है।

कुछ लोग अच्छे परिवार में जन्म लेते हैं और बचपन से ही एक सुसंस्कृत परिवेश में बढ़ते हैं। उनके माता-पिता संस्कृत तथा धर्मात्मा

होते हैं। वे महापुरुषों का संग करते हैं और ज्ञानी तथा विवेकवान लोगों से मार्गदर्शन पाते हैं। वे आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर चलते हुए परमानन्द की उपलब्धि करते हैं। ऐसे लोग प्रकाश से प्रकाश की ओर अग्रसर होते हैं।

दार्शनिक तथा कवि भर्तृहरि की एक उक्ति सामाजिक संरचना को समझने की कुंजी है। समाज के विभिन्न प्रकार के लोगों के स्वभाव तथा आचरण का वर्णन करते हुए वे अपने 'नीतिशतकम्' (६४) में कहते हैं -

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये ।

सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ॥

तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये ।

ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥६४॥

- 'कुछ लोग किसी पुरस्कार की इच्छा से रहित तथा अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की चिन्ता किए बिना ही सर्वदा दूसरों के कल्याण-साधन में लगे रहते हैं। इन्हें सत्पुरुष कहा जाता है। ये लोग अपनी असुविधाओं पर ध्यान दिए बिना ही सर्वदा दूसरों की सहायता में लगे रहते हैं। सामान्य कोटि के लोग अपनी इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति हेतु कार्य करते हुए भी यथासाध्य दूसरों की मदद करते हैं। नरदेहधारी कुछ ऐसे राक्षस भी हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए किसी का सिर काटने जैसे जघन्य अपराध से भी पीछे नहीं हटते। और बिना किसी लाभ के ही दूसरों को पीड़ित करनेवालों को कौन-सी संज्ञा दी जाए, यह मुझे नहीं मालूम।'

मनुष्यों में ऐसे लोग भी हैं जो अपना अधिकांश समय सोने में बिता देते हैं। कुछ अन्य लोग कार्य करते हुए समय बिताते हैं। कुछ अन्य लोग भी हैं जो केवल ध्यान और चिन्तन करते हैं। सभी लोगों

को गहरी निद्रा की आवश्यकता होती है, पर सभी लोगों की निद्रा की अवधि समान नहीं होती। कुछ लोग कभी बिस्तर से उठने को उत्सुक नहीं होते, और कुछ लोग प्रतिदिन केवल छह घण्टे सोकर ही काम चला लेते हैं। कहते हैं कि निकोलाइ टेस्ला नामक वैज्ञानिक ने अपनी प्रयोगशाला में शोध करते हुए लगातार ७६ घण्टे जागकर बिता दिए थे।

किसी बात की शिक्षा ग्रहण करने के ढंग में भी लोगों में बड़ी विभिन्नता होती है। एक प्रकार के लोग दूसरों की कुछ गलतियों के फलस्वरूप उन्हें पीड़ित देखकर स्वयं उन गलतियों से बचने के लिए सतर्क रहते हैं। कुछ लोग स्वयं कोई गलती करके उसके फलस्वरूप उत्पन्न दुःख के अनुभव से शिक्षा प्राप्त करते हैं। एक अन्य प्रकार के लोग भी हैं, जो गलती के फलस्वरूप हुए दुःख के बावजूद भी कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करते और उन्हीं गलतियों को दुहराते रहते हैं।

वैराग्य या अनासक्ति भाव की अनुभूति में भी विभिन्नताएँ रहती हैं। एक तरह का क्षणिक वैराग्य भी होता है, जो धार्मिक प्रवचन के प्रभाव से उत्पन्न होता है। किसी प्रियजन की मृत्यु को देखकर सुखों का अस्थायी त्याग हो जाता है। तीव्र प्रसव-पीड़ा के अनुभव से कभी-कभी स्त्रियों को इन्द्रिय-सुखों से वैराग्य हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से भी लोगों में धनी, निर्धन तथा मध्यम वर्ग के भेद हैं। और जीवन बिताने के तरीकों की दृष्टि से तो विभिन्नताओं का कोई अन्त ही नहीं है।

चरित्रों की विभिन्नता के कारण व्यक्तियों के बीच का आपसी सम्बन्ध जटिल हो जाता है और उनके लिए परस्पर तालमेल बैठाना कठिन हो जाता है। यही वह मूल कारण है, जिसके आधार पर मनुष्यों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है। वर्ग-विभाजन में कोई दोष नहीं, परन्तु एक-दूसरे का नाश करने को प्रवृत्त करानेवाला

आपसी द्वेषभाव ही भयानक और त्याज्य है। चरित्र की विभिन्नताओं के आधार पर मनुष्यों के साथ व्यवहार हेतु 'हितोपदेश' चार तरीके बताता है। पहला तरीका मित्रतापूर्वक 'समझाना' है। इसे संस्कृत में 'साम' कहते हैं। पर केवल कुछ ही लोग इस प्रकार से रास्ते पर आ सकते हैं। कुछ लोग आपकी सलाह सुनकर केवल तभी उसके अनुसार चलेंगे, जब आप इसके लिए कुछ पुरस्कार दें। यह तरीका 'दाम' कहलाता है। तीसरा तरीका 'भेद' का है। इसमें लोगों के बीच स्पर्धा उत्पन्न करके प्रतियोगिता की भावना से काम पूरा कराया जाता है। और अन्तिम तरीका 'दण्ड' है, जिसमें किसी से अपनी इच्छानुसार कार्य कराने के लिए दण्ड की धमकी अथवा दण्ड भी दिया जाता है। पूर्वकाल में यह भाव था कि बुरे कार्य करनेवाली प्रजा को दण्ड देना राजा का कर्तव्य है। परन्तु आज लोकतांत्रिक समानता के तर्क के आधार पर कारावास में पड़ा एक अपराधी भी एक सदाचारी व्यक्ति के तुल्य विशेषाधिकारों की माँग कर सकता है।

वह कौन-सा मूलभूत तत्त्व है, जो लोगों को एक सूत्र में आबद्ध करता है और परिवार, संगठन या समाज जैसी विभिन्न इकाइयों के घटकों में आपसी मैत्री का बन्धन सुदृढ़ करता है? इसके कारण व्यक्ति अपनी स्वार्थपरता का दमन करता है, अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के सामने अपने अहंकार को नगण्य कर देता है और अपने दावों और अधिकारों की उपेक्षा करने को तैयार हो जाता है। ईश्वर में विश्वास-रूपी मूल भाव की जरूरत है। स्वार्थपरता तथा झूठी मान-प्रतिष्ठा की भावना से छुटकारा पाकर और एकमात्र परमेश्वर को प्रसन्न करने की इच्छा से धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्यों का सम्पादन करने पर व्यक्ति मानसिक शान्ति पा सकता है और निराशा, चिन्ता एवं भय की घातक भावनाओं से मुक्त हो सकता है। सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करने के उत्साह और जीवन के असंख्य अभावों की पूर्ति के लिए

भाग-दौड़ के बीच, व्यक्ति को सदैव अपने आप से पूछना चाहिए कि क्या वह सही कदम उठा रहा है? कोई कदम उठाने से पहले उसे भलीभाँति सोच लेना चाहिए कि वह नैतिक है या नहीं।

सबके संरक्षक

स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित करके और सभी दुःखों तथा परेशानियों के समय भगवान से सहारे के लिए याचना करके, व्यक्ति न केवल निराशा के भार से, अपितु जीवन की समस्त बाधाओं से मुक्त हो सकता है। जीवन की कठिनाइयों को उन परीक्षाओं के रूप में स्वीकार करना चाहिए, जिन्हें भगवान हमारे आन्तरिक बल की जाँच करने के लिए हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। ये कठिनाइयाँ हमारा चरित्र-गठन करती हैं। छेनी पर हजारों प्रहार करने के बाद ही मूर्ति गढ़ी जाती है।

भगवान भक्तवत्सल, कृपासागर और दयानिधान हैं। भक्त की प्रार्थना यदि सच्ची हो, तो वे उसे जरूर सुनते हैं और उसे उसकी इच्छित वस्तु तथा सुरक्षा प्रदान करते हैं। भगवन्नाम का सतत जप करते रहने पर भक्त कभी भी उनके सहारे से वंचित नहीं होता। प्रार्थना, भजन तथा जप के द्वारा व्यक्ति को ईश्वर की रक्षाशक्ति में दृढ़ विश्वास विकसित करना चाहिए।

हममें से अधिकांश लोगों का भगवान में विश्वास उतना ही छिछला है, जितना कि उन बच्चों का जो बात-की-बात में भगवान के नाम की कसम खाते रहते हैं। ईश्वर में सच्चा विश्वास हो जाना सारी समस्याओं से छुटकारा पा जाने के समान है। यदि किसी का विश्वास निर्बल है, तो उसे सबल करना सम्भव है। परन्तु इस विश्वास को एक दिन में ही नहीं पाया जा सकता। यह बाजार से सब्जी खरीदने जैसा नहीं है। दीर्घकाल तक साधन-भजन, आन्तरिक प्रार्थना, सत्संग

और ईश्वर के कृपालब्ध तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न सन्त-महात्माओं के चरित्र का वर्णन करनेवाले पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन से भगवान में विश्वास दृढ़ होता है। भगवान से प्रार्थना करने की शुरुआत करने के लिए हमें विश्वास के दृढ़ हो जाने तक की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। जैसे हम अपने आत्मीय प्रियजनों के पास जाकर, उन्हें अपनी कठिनाइयों से अवगत कराकर उनसे सहानुभूति की अपेक्षा करते हैं, ठीक वैसे ही हम निर्जन में जाकर भगवान से बारम्बार आन्तरिक तथा अश्रुपूरित प्रार्थना कर सकते हैं। इससे निश्चय ही हमें काफी लाभ होगा। यह हमारे मन को सबल बनाएगा। कठिनाइयों के समय लोग विभिन्न मन्दिरों में जाकर प्रार्थना करते हैं और भेंट चढ़ाते हैं। यह लाभकारी अवश्य है, परन्तु दृढ़ विश्वास के साथ प्रार्थना करने पर प्रभाव महत्तर और परिणाम शीघ्र होगा। वर्तमान कठिनाई की तीव्रता चाहे जितनी भी हो, भगवान की असीम शक्तियों में विश्वास तथा आन्तरिक प्रार्थना मन में प्रभूत बल का संचार करेगी।

बिना-विश्वास प्रार्थना बिना-डाकटिकट लगे पत्र की तरह है। और भक्तिशून्य प्रार्थना बिना-पता लिखे पत्र के समान है।

विश्वास और तीव्र व्याकुलता से सरोबार प्रार्थना द्रुतगामी टेलीग्राम या ई. मेल के समान है।

कर्तव्य-पालन : आध्यात्मिक जीवन का चरमबिन्दु

‘तैरते रहो, कभी हार न मानो, कभी साहस मत छोड़ो, तट पर पहुँचकर विजयी बन जाओ’ – सन्तों के इस उपदेश का एक वृद्धा माँ ने प्रायः अक्षरशः पालन किया था। एक समृद्ध जीवन बिताकर भी वे कभी उसमें आसक्त नहीं रहीं। अपना अन्तकाल आने पर वे अपने पुत्र को बुलाकर जीवन में सीखे हुए पाठ बताने लगीं – ‘बचपन में

ही मैंने सुन रखा था कि ईश्वर का स्मरण न करनेवाला मन अपवित्र होता है और वह दिन अशुभ होता है जिस दिन ईश्वर को याद न किया जाए। मैं बचपन से ही इस बात को मानकर चलने लगी। बचपन में ही मैं समझ गयी थी कि परमात्मा हमारे हृदय-मन्दिर में बैठकर सदा हमारे कर्मों को देख रहे हैं; अतः मैंने अपने कार्य को सुव्यवस्थित और साफ-सुथरे ढंग से करना सीख लिया। जब मुझे बताया गया कि पति परमेश्वर हैं, तो मैंने उनकी छाया बनकर रहने का प्रयास किया और कभी उन्हें अप्रसन्न करने की बात मेरे मन में नहीं आयी। कभी-कभी उनकी आशा के अनुरूप न चल पाने पर मैं उनसे क्षमा माँगती। मैंने अश्रुपात करते हुए भगवान से प्रार्थना की, “हे प्रभो, मैं सांसारिक वस्तुओं की इच्छा से प्रलोभित न होऊँ। मैं तुम्हारे नाम-जप में रस का आस्वादन करूँ। मुझे यह विश्वास दो कि तुम्हारी इस दुनिया के सभी लोग तुम्हारे ही प्रतिनिधि हैं। मुझे इतनी शक्ति दो कि मैं पूरे धैर्य से किसी भी प्रकार के दुःख या अपमान को सह सकूँ।” मैं ईश्वर से ऐसी ही प्रार्थना किया करती थी। मुझे दृढ़ विश्वास था कि बच्चे भगवान के ही उपहार हैं और उनकी जरूरतों को पूरा करते हुए मैं मन-ही-मन सोचती, “प्रभु मुझे देख रहे हैं। मुझे बच्चों की देखभाल करनी है और पतिदेव को प्रसन्न रखना है।” इस विश्वास के साथ मैं अपने कर्तव्यों का पालन किया करती थी। बच्चों का शोरगुल तथा उनकी चंचलता मेरे पतिदेव को सहन नहीं होती थी। मेरा दृढ़ विश्वास था कि भगवान इसके द्वारा मेरी परीक्षा ले रहे हैं। जब मुझे एक ऐसी पुत्रवधू मिली, जो हमारी जीवन-शैली के साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाती थी, तो एक बार फिर मैंने अश्रुपूरित नेत्रों के साथ प्रार्थना की। जानते हो मुझे भगवान से क्या सन्देश मिला? “पुत्री! धैर्य रखो। यदि सब कुछ तुम्हारी इच्छा के अनुकूल होता रहेगा, तो तुम इस मायामय संसार में अधिकाधिक फँसती जाओगी।

अब तुम्हें जगदम्बा के दर्शन हेतु तैयारी करनी चाहिए। भाग्य ने ही तुम्हारी पुत्रवधू को ऐसी प्रवृत्ति दी है, ताकि तुम मोहमार्ग से दूर रहो और तुम्हारा धैर्य सुदृढ़ हो।”

‘तब से मुझे अपने पौत्रों की देखभाल का भी काम मिल गया। मैंने यह सोचकर खुद को सांत्वना दी कि जैसे स्वर्णकार सोने को भट्टी में डालकर उसका शोधन करता है, वैसे ही भगवान भी मेरा शोधन कर रहे हैं। मैं अपने पौत्रों की देखभाल करने लगी और दिन-रात उन पर नजर रखने लगी। इसके लिए मुझे कोई प्रशंसा नहीं मिली। पर ज्योंही मुझे लगा कि यह संसार मुझे प्रलोभित कर रहा है, मैंने अपनी प्रार्थना की तीव्रता बढ़ा दी। बच्चो! अब मैं तुम सभी को छोड़कर जाने के लिए तैयार हूँ। कोई भी अमर नहीं है। मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। मैंने कोई परीक्षा नहीं पास की है। परन्तु मुझे अनुभव होता है कि मेरा जीवन उन्नत हो गया है, क्योंकि मैं अपने पति के प्रति निष्ठावान थी, भगवान के प्रति श्रद्धालु थी और अपने बड़ों की आज्ञाकारी थी। अपने जीवन के दुःख-कष्टों को भगवान द्वारा ली जा रही परीक्षा के रूप में ग्रहण करो, उन्हें सहन करो और भगवान के सम्मुख अश्रुपूरित नेत्रों के साथ निरन्तर प्रार्थना करो। इससे निश्चय ही तुम्हें चिरन्तन सुख प्राप्त होगा। बच्चो! तुम भी अपने जीवन में इसी पथ को अपनाओ।’

बच्चों में ईश्वर का दर्शन करते हुए उनकी सेवा करना भी एक तरह की उपासना है। भगवान के राज्य में विनम्रता, सेवाभाव तथा धैर्य को मूल्यवान माना जाता है। परन्तु क्या हम सचमुच ही अपने जीवन में ये गुण विकसित कर रहे हैं? आधुनिक समझ के अनुसार ईश्वर एक फॉसिल है, विषय-भोग ही जीवन का सार-सर्वस्व है और स्वार्थ-सिद्धि ही जीवन का चरम लक्ष्य है। ऐसे विचारवाले लोगों ने जिस समाज या सरकार की रचना की है, उसे आध्यात्मिक जीवन के महत्त्व का कभी बोध नहीं हो सकता। राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सरकार

करोड़ों रुपये खर्च करती है, पर बड़ा अच्छा होता यदि वह इसके साथ-ही-साथ ऐसे भी उपाय करती जिससे लोगों में घृणा, भय और ईर्ष्या का बीजारोपण न हो और आपसी प्रेम एवं सौहार्द्र को बल मिले। यह एक अत्यन्त रचनात्मक योजना होती। क्रोध रूपी विष का नाश करने में यह एक बड़ा सशक्त हथियार सिद्ध होगा।

एक पवित्र स्मृति

भारत की इस पुण्यभूमि में मातृत्व के आदर्श का अनुसरण करनेवाली और चन्दन के समान त्याग व सेवा में अपना जीवन मिटा देनेवाली असंख्य नारियाँ हैं। सन्तान को जन्म देने मात्र से ही कोई नारी आदर्श माँ नहीं बन जाती। आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में ही ऐसे मातृत्व का विकास होता है। निःस्वार्थता के शिखर पर आरोहण करनेवाले ऐसे महान लोग सत्य के साधकों के लिए चिर प्रेरणा के स्रोत हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक श्री डी. वी. गुण्डप्पा द्वारा कन्नड़ में लिखित 'भगवद्गीता-तात्पर्य' एक लोकप्रिय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को लेखक ने एक महिला के नाम समर्पित किया है। उक्त पुस्तक में इस महिला के जीवन के माध्यम से ही गीता के सन्देश को बड़े सुन्दर ढंग से समझाया गया है। आइए हम लेखक के ही शब्दों को सुनें - 'यह ग्रन्थ मेरी छोटी बहन लक्ष्मी-देवम्मा को समर्पित है, जिसने शान्त-भाव से बाल-वैधव्य को भाग्य-विधान के रूप में स्वीकार किया; जिसने भगवद्भक्ति के सहारे एक आध्यात्मिक जीवन बिताया और वृद्धों व अपंगों की सेवा, अनाथों की देखभाल तथा गरीबों की मदद के द्वारा अपने जीवन की सारी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की और हमारे लिए एक पवित्र स्मृति छोड़ गयी।'।

हमारे देश में 'त्याग और सेवा' थोपे जानेवाले गुण नहीं, अपितु समर्पण की भावना से स्वेच्छापूर्वक स्वीकृत एक उच्च आदर्श की

साधना हैं। भगवान में अटल विश्वास तथा दृढ़ समर्पण-भाव के बिना ऐसे आदर्श का अनुसरण कभी सम्भव नहीं।

ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन करने को ही ज्ञान, बुद्धि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सूचक माननेवाले आज के शिक्षित लोग क्या कभी ऐसे आदर्श की महानता को समझ सकेंगे? क्या वे कभी इसमें रुचि ले सकेंगे? भले ही वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करें, भले ही उन्हें यह विचार पसन्द न हो, पर सत्य तो सदा सत्य ही रहेगा। हम अपनी सनक और रुचि के अनुसार इसे बदल नहीं सकते।

इस देश के ऋषि-मुनियों को यह अनुभूति हुई थी कि ईश्वर या इस विश्व की आदि शक्ति को असंख्य पथों द्वारा पाया जा सकता है और उन्होंने जगत में इस सत्य का प्रचार किया था। हमारे इस युग में भी श्रीरामकृष्ण देव ने इस आदर्श का अनुसरण करके परमात्मा की अनुभूति की, अपने शिष्यों का मार्गदर्शन किया और आध्यात्मिक जीवन के सत्य को पुनः स्थापित किया। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'ईश्वर की उपासना पिता के रूप में की जा सकती है। ईश्वर की उपासना माता के रूप में भी की जा सकती है। माता के रूप में उपासना करके हम शीघ्र भक्ति लाभ कर सकते हैं। सख्य या दास्य भाव से ईश्वर की उपासना करके भी आध्यात्मिक रूप से उन्नति की जा सकती है।' उन्होंने कहा था, 'जितने मत उतने पथ' - भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। 'परन्तु ईश्वर के चरणों में पहुँचने के लिए मातृरूप में ईश्वर की उपासना ही सरलतम तथा शीघ्रतम पथ है।' ईश्वर को माँ समझना और सभी मनुष्यों में जगदम्बा का ही दर्शन करना - यही सभी आध्यात्मिक साधनाओं का लक्ष्य है। श्रीरामकृष्ण देव ने अपने उपदेशों तथा आचरण के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मातृरूप में ईश्वर की धारणा दृढ़ हो जाने पर, मनुष्य सहज ही अपनी सभी सीमाओं को पार करके शीघ्र ही दिव्यता की उपलब्धि कर सकता है।

संसार कराह रहा है !

भारत की वर्तमान दुरवस्था के लिए लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली भी जिम्मेदार रही है। लोकतंत्र कोई बेदाग प्रणाली नहीं है। आज का हर शिक्षित व्यक्ति यह जान गया है कि नागरिक जीवन के यथेष्ट प्रशिक्षण एवं तैयारी के अभाव में भारत का लोकतंत्र विकृत होकर अपना घृणित रूप दिखा रहा है। 'एक व्यक्ति एक वोट' - के नारे में मानव का समता के सिद्धान्त में विश्वास व्यक्त होता है। यह बिल्कुल उचित है कि सबको समान अवसर मिलना चाहिए। परन्तु यह व्यवहार में कैसे आए? कुछ पुराने चिन्तकों ने दिखाया है कि 'स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व' - फ्रांसीसी क्रान्ति का यह नारा व्यवहार में किस तरह विकृत हो गया है। अनेक लोगों के लिए स्वतंत्रता का अर्थ है - 'यथेच्छाचार की स्वाधीनता'; समानता का अर्थ है - 'मुझसे अच्छा कोई नहीं' और बन्धुत्व का तात्पर्य है - 'जरूरत पड़ने पर आपकी वस्तु मेरी है'।

आर्थिक समानता और कानूनी समानता तो लोगों पर बलपूर्वक लागू की जा सकती हैं, परन्तु बुद्धि, मनोबल, समझदारी, विचारों की मौलिकता, निर्णय-शक्ति और नैतिक सत्यनिष्ठा के मामले में भी क्या लोगों के बीच सच्ची समानता है? स्पष्ट शब्दों में कहें, तो इस संसार में स्वयं को सच्चे सज्जन के रूप में प्रस्तुत करनेवाले अधिकांश लोग अपने अशान्त मन को संयमित कर पाने में असमर्थ हैं। इन्द्रिय सुख-भोगों में आसक्त निकृष्ट लोग हर प्रकार के सुख को अपनी पाशविक संस्कृति के स्तर पर उतार लाते हैं। मीडिया के लोग, सिने-निर्माता, लेखक, नाटक तथा फिल्मों के अभिनेता, होटल-मालिक आदि सत्य, न्याय एवं शिष्टाचार के सभी सिद्धान्तों को ताक पर रखकर लोगों से धन कमाने का प्रयास करते हैं। सत्ता-लोलुप राजनेता वोट पाने के

लिए इन लोगों की ताल पर नाचते रहते हैं। सत्तासीन और विपक्षी दल अपने अनुसार न चलनेवाले लोगों के खिलाफ हर प्रकार के घटिया दुष्प्रचार करते हैं। राजनीतिज्ञ एक-दूसरे पर ही कीचड़ उछालते हुए, स्वयं सद्भाव एवं सद्विचार से रहित होकर, लोगों की सद्भावना को नष्ट करते हैं। इसी कारण व्यक्ति के चरित्र-गठन और समग्र समाज के कल्याण का विचार रखनेवाले उन निःस्वार्थ और महान लोगों की अपील अरण्य-रोदन मात्र बनकर रह जाती है।

गीता में काम, क्रोध और लोभ को नरक के द्वार बताया गया है। अपने धर्म-विरोधी विचारों के साथ आज का भौतिकवादी दर्शन इन दुष्प्रवृत्तियों को हवा देता रहा है। आइंस्टीन के ये शब्द स्मरणीय हैं — 'विज्ञान प्लूटोनियम को तो शुद्ध कर सकता है, पर मानव-हृदय की दुष्टता को नहीं।'।

श्रद्धा या विश्वास ही दवा है

१९वीं शताब्दी के शुरू में विज्ञान का झंझावात भारत की ओर बहने लगा। जैसे पश्चिम के वैज्ञानिक-प्रवृत्ति-सम्पन्न लोगों ने अपने धार्मिक नेताओं की आलोचना की थी, ठीक वैसे ही इस देश के तथाकथित शिक्षित लोग भी उन्हीं के नारों को दुहरा रहे थे। वस्तुतः भारतीय धर्म कभी भी सच्चे वैज्ञानिक चिन्तन का विरोधी नहीं रहा। धर्म की सीमाओं के भीतर रहकर मर्यादित सुखों की हमारे धर्मशास्त्रों ने कभी निन्दा नहीं की। यहाँ सत्य के शोध तथा उसकी अनुभूति की विधि अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से विकसित हो चुकी थी। हमारे ऋषि-मुनि आत्मा, ईश्वर और ब्रह्माण्ड के सत्यों तथा मनुष्य के हृदय के अन्तर्जगत की खोज करके इनमें परस्पर सम्बन्ध का आविष्कार कर चुके थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि वेदान्त में पाए जानेवाले सार्वभौमिक सत्य आधुनिक विज्ञान की चुनौतियों का सामना कर

सकते हैं और मानवता को प्रगति और शान्ति के पथ पर आगे बढ़ा सकते हैं। उन्होंने एक व्यावहारिक जीवन-दर्शन का उपदेश दिया, जिसका किसी खास धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह दर्शन व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास तथा समाज और राष्ट्र का हित साधित कर सकता है। उनकी मान्यताएँ हैं – समग्र ब्रह्माण्ड की आध्यात्मिक एकता, सर्वधर्म-समभाव, आत्मा की दिव्यता तथा मानव-मात्र की सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा। वे भारतीय स्वाधीनता के पूर्वकाल के एक महान देशभक्त और आध्यात्मिक आचार्य थे। उन्होंने देश से गरीबी उन्मूलन और देशसेवा में आत्मोत्सर्ग हेतु युवाओं में प्रेरणा का संचार किया। प्रख्यात इतिहासकार डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार अपनी पुस्तक 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के तीन रूप' में लिखते हैं, 'अब यह एक सुविदित तथ्य है कि बंगाल के सैकड़ों युवा क्रान्तिकारी स्वामी विवेकानन्द के सन्देश से प्रेरित थे और उन्होंने अपने अधरों पर 'वन्देमातरम्' और हृदय में विवेकानन्द की शिक्षाओं को धारण कर दुःख-कष्टों और मृत्यु का सहर्ष आलिङ्गन किया।' किसी को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि विवेकानन्द को इस कठिन कार्य में अपने अथाह ज्ञान से ही सहायता मिली थी। आध्यात्मिकता उस ज्ञान की आधारशिला थी। परवर्ती दिनों में, स्वयं गाँधीजी आध्यात्मिकता पर आधारित एकीकृत जीवन के एक उदाहरण बन गए और उन्होंने देश को निःस्वार्थ सेवा का सन्देश दिया।

पाश्चात्य वैज्ञानिक विकास से मोहित और पाश्चात्य आदर्श का अनुसरण करने के इच्छुक लोगों को इस शताब्दी के प्रारम्भ में स्वामी विवेकानन्द ने निम्नलिखित चेतावनी दी थी –

‘यह सत्य है कि सामाजिक और आर्थिक तौर पर पिछड़े लोगों को भौतिक सुख-भोग हेतु कुछ हद तक अवसरों तथा अधिकारों की जरूरत है। थोड़ा सुखमय जीवन बिताने के बाद व्यक्ति में निःस्वार्थता

का सदगुण स्वाभाविक रूप से ही आ जाता है। सम्भवतः यहाँ हम पाश्चात्य लोगों से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु हमें बहुत सतर्क रहना होगा। हमें दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि पाश्चात्य आदर्शों को समझ लेने का दावा करनेवाले अधिकांश लोगों ने हमारे समाज को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचायी है। वैज्ञानिक विचार, चीजों के बेहतर उपयोग करने का तरीका और सामूहिक रूप से कार्य करने के क्षेत्र में हम उन लोगों से सीख सकते हैं। परन्तु यदि कोई कहे कि खाना-पीना और नाच-गान अर्थात् इन्द्रियों का सुख-भोग ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, तो वह मिथ्यावादी है। पाश्चात्य प्रौद्यौगिकी और पाश्चात्य सभ्यता, चकाचौंध-भरी तथा प्रभावकारी हो सकती है, परन्तु वैसा जीवन तुच्छ और निःसार है। अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को कदापि मत छोड़ो। पृथ्वी पर एकमात्र यही चिरस्थायी वस्तु है। इसका अर्थ यह नहीं कि राजनैतिक और सामाजिक मुद्दों जैसे अन्य मामलों की कोई जरूरत नहीं। परन्तु उन्हीं पर अत्यधिक ध्यान दिया जाना वांछनीय नहीं है। उन्हें अपनी चिन्ता का मूल-बिन्दु नहीं बनाना चाहिए। भारतवासियों के लिए धर्म ही सब कुछ है। यदि वह चला गया, तो हमारा देश पूरी तौर से नष्ट हो जाएगा। आप हर व्यक्ति को कुबेर का खजाना दे सकते हैं, चाहे जितने सामाजिक सुधार कर सकते हैं, परन्तु आध्यात्मिक जीवन के बिना भारत जीवित नहीं रहेगा।'

यह सोचना गलत है कि भारत के धर्माचार्य ही धर्म या आध्यात्मिक जीवन के आदर्श की घोषणा करते हैं। समग्र विश्व के इतिहास का विश्लेषण करनेवाले अर्नाल्ड टॉयन्बी भी कहते हैं कि 'राजनीतिक और आर्थिक मामलों पर अत्यधिक बल देना और जीवन के अन्य सभी आदर्शों को उनके अधीन रखना - इनके कारण ही सभी सभ्यताएँ पतनोन्मुख हुईं। जो भाव धार्मिक कट्टरता पर एक

आक्रमण के रूप में शुरू हुआ था, वह अब आध्यात्मिक अग्रि को ही बुझा चुका है। यह पतन सत्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ, बीसवीं शताब्दी में इसने अपनी जड़ें जमा लीं और अब यह विशाल पाश्चात्य समुदाय के सभी हिस्सों में फैल चुका है। धीरे-धीरे वे लोग इस खतरे के प्रति सजग हो रहे हैं। यह खतरा न केवल पश्चिमी समाज के आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए, अपितु इसके भौतिक अस्तित्व के लिए भी घातक है। वस्तुतः लोग अनुभव कर रहे हैं कि यह धर्म विरोधी रुख किसी भयानक राजनीतिक या आर्थिक उथल-पुथल से भी अधिक घातक हो सकता है।'

वैज्ञानिकों का समर्थन

वैज्ञानिक भी अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के अभाव में समाज का विघटन अवश्यम्भावी है।

महान विचारक बर्ट्रेण्ड रसेल ने कहा था, 'विज्ञान की प्रत्येक खोज मानवमात्र के लिए एक दुर्भाग्य सिद्ध होती जा रही है। यदि प्रायोगिकीय कुशलता के साथ विवेक का भी विकास न हो, तो यह हमारे दुःख का कारण सिद्ध होगा।'

अलेक्सिस कैरल का कहना है, 'आधुनिक सभ्यता मानवता को रास नहीं आती। यह मानव-जाति की सच्ची प्रकृति को जाने बिना बनाई गयी एक इमारत के समान है। इसका कोई निश्चित लक्ष्य या प्रयोजन नहीं है। यह मानवता के सर्वांगीण विकास को अपना लक्ष्य नहीं बनाती। वैज्ञानिक प्रयोग हमें कहाँ ले जा रहे हैं – यह जानने का प्रयास किए बिना ही उनमें लगे रहने का क्या मतलब है? विज्ञान के असीमित खजाने से जो कुछ हम चुनते हैं, वह मानवता की उन्नति हेतु हमारी चिन्ता के अनुसार नहीं होता। हमें जो कुछ अच्छा और सुविधाजनक लगा, हमने उसी का विकास किया। हमने कभी पल भर

भी ठहरकर यह नहीं सोचा कि इसका मानव-जाति पर क्या प्रभाव होगा । ... मानव-जाति को अत्यधिक अवकाश प्रदान करके वैज्ञानिक सभ्यता ने बड़े दुर्भाग्य को जन्म दिया है । तकनीकी क्रान्ति की कीमत शायद हमें मानसिक दुर्बलता, मनोविकृति और उन्माद के रूप में चुकानी होगी ।’

लेकाम द'नोई ने कहा था, 'जो सभ्यता पूरी तौर से यंत्रों के विकास तथा प्रौद्योगिक कुशलता पर निर्भर है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है । मानव-इतिहास में पहली बार कोरी बुद्धि और नैतिक मूल्यों के बीच यह संघर्ष छिड़ा है कि दोनों में से कौन बचेगा और कौन नष्ट हो जाएगा ।’

सोरोकिन का कहना है, 'विज्ञान और प्रायोगिक विज्ञान के फलों का घोर दुरुपयोग हुआ है । अणुबम की सर्वनाशी शक्ति का भय भविष्य के युद्धों पर विराम लगा देगा - यह धारणा उतनी ही मूर्खतापूर्ण है, जितनी कि यह भ्रांति कि कोई प्रेत जितना अधिक दुष्प्रवृत्तियों से युक्त होगा, उतना दिव्य होता जाएगा । मनुष्य का आर्थिक विकास मानवता को उसी के अनुरूप नैतिक चरित्र के विकास की ओर ले जाता है - यह धारणा मिथ्या है, यह असन्दिग्ध रूप से काफी पहले ही सिद्ध हो चुका है ।’ आज के मनोवैज्ञानिक जोर देकर कहते हैं कि मनुष्य के आन्तरिक जीवन, मानसिक सन्तुलन तथा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए धर्म या धर्म के आदर्श जरूरी हैं ।

मनोविकृति के अनेक रोगियों का अध्ययन तथा उपचार करनेवाले डॉ. सी. जी. युंग ने कहा था, 'पैंतीस वर्ष की आयु से अधिक के मेरे सभी रोगियों का कोई धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोण नहीं था । किसी प्रकार का धार्मिक दृष्टिकोण रखने पर वे रोगमुक्त हो जाते । इसका एक भी अपवाद नहीं था । दुर्भाग्यवश, फ्रॉयड ने इस बात पर जोर नहीं दिया कि मनुष्य अकेले ही जीवन की समस्याओं और संसार

की बुरी शक्तियों का मुकाबला नहीं कर सकता। धर्म का सम्बल सदैव आवश्यक है। यह मनुष्य को निराशा के दलदल से उबार सकता है।'

नेताओं का दृष्टिकोण

कुछ लोग पूछ सकते हैं कि यहाँ ऐसे विस्तृत उद्धरण क्यों दिए गए हैं? प्रश्न उचित है। आध्यात्मिक आदर्शों में पहले से ही दृढ़ श्रद्धा रखनेवालों को इनकी कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यह आधुनिक काल के ऐसे शिक्षित लोगों को सच्चाई का स्पष्ट रूप से बोध कराने के लिए हैं, जो एक ओर तो धर्मभाव से रहित हैं और दूसरी ओर धर्म पर आक्रमण करना अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक मानते हैं। आज के शिक्षित वर्ग ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया है। राष्ट्र के राजनैतिक क्रिया-कलाप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भौतिकवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हो गए हैं। हमारे नेताओं और देशभक्तों ने भारत की स्वाधीनता के पूर्व देश को आजाद कराने के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी, ताकि देश का धर्म तथा संस्कृति सुरक्षित और कायम रह सके। पर आजादी मिलने के बाद क्या हुआ? हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले तथा स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लेनेवाले राजनेताओं के मन में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के प्रति निःसन्देह बड़ा आदर भाव था, परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि वे लोग किसी धार्मिक या आध्यात्मिक विश्वास से रहित थे। उन दिनों देश की बागडोर सँभालनेवाले वरिष्ठ नेताओं के विषय में श्री मस्ती वेंकटेश अयंगर बड़े तटस्थ भाव से लिखते हैं, 'हममें आजादी की लालसा क्यों थी? भारत के पास अपना निजी चरित्र, अपनी विशिष्ट संस्कृति है। कोई पराधीन देश अपने स्वत्व का विकास नहीं कर सकता। यदि हमारे देश को सभी क्षेत्रों में अपना विकास करना था,

तो हमें राष्ट्रीय जीवन का गठन करना ही था। मात्र इसी प्रयोजन से हमारे नेताओं ने राजनैतिक आजादी हेतु संघर्ष किया। राजनैतिक रूप से स्वाधीन किसी देश का इससे भी अधिक हित तब होता, जब वह सांस्कृतिक स्वाधीनता की प्राप्ति कर लेता। परन्तु हमारे दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ।'

गाँधीजी का यह प्रस्ताव था कि देश को स्वाधीनता दिलानेवाली काँग्रेस पार्टी को राजनैतिक दल के रूप में बने रहकर देश पर शासन नहीं चलाना चाहिए। परन्तु हमारे नेताओं ने गाँधीजी के इस परामर्श को अनसुना कर दिया। काँग्रेस सत्ता में आयी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री बने। नेहरू एक कुलीन परिवार में जन्मे थे। वे स्वभावतः एक आदर्शवादी थे। इंग्लैंड में शिक्षित होने के कारण वे उस समय के उदारवादी राजनैतिक चिन्तकों से प्रभावित थे। एक लगभग साम्यवादी तंत्र के प्रति सहानुभूति-भाव लेकर वे स्वदेश लौट आए। वे लोगों के जीवन के अभावों के प्रति संवेदनशील थे। पर जन्म से हिन्दू होने के बावजूद, हिन्दू धर्म में उनका विश्वास न था। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के नेता के रूप में, वस्तुतः वे महात्मा गाँधी के दाहिने हाथ के रूप में काम करते थे, परन्तु गाँधीजी के जीवन को प्रेरित करनेवाली भावनाओं और विचारों के लिए उनके मन में कोई जगह न थी। गाँधीजी कहा करते थे, 'यह संसार ईश्वर नामक एक दिव्य शक्ति से संचालित होता है।' जवाहरलाल नेहरू को ईश्वर से कोई प्रयोजन नहीं था। महात्मा गाँधी ने कहा था, 'मैं हिन्दू हूँ। मैं हिन्दू धर्म का आचरण इसलिए करता हूँ क्योंकि यह किसी अन्य धर्म का खण्डन नहीं करता। इसमें सभी धर्मों का सार समाहित है।' पर नेहरूजी का हिन्दू धर्म से गहरा परिचय नहीं था। महात्मा गाँधी प्रतिदिन संध्या को एक प्रार्थना-सभा का आयोजन किया करते थे। लेकिन पता नहीं पं. नेहरू प्रार्थना को

उपादेय समझते थे या नहीं। महात्मा गाँधी ने जन-भावनाओं को समझकर, जनता के कल्याण हेतु कार्य करनेवाली राजनैतिक प्रणाली को 'रामराज्य' कहा। जब एक बार किसी ने रामराज्य की ओर संकेत किया, तो नेहरू ने कहा था, 'रामराज्य क्या है? मैं उसे नहीं जानता।' कभी-कभी पाश्चात्य चिन्तक बौद्ध धर्म की यह कहकर प्रशंसा करते हैं कि वह एकमात्र ऐसा धर्म है, जो बौद्धिक रूप से विश्वसनीय है। जवाहरलाल नेहरू बुद्धिवादी थे। उन्होंने इसे बिलकुल उपयुक्त पाया होगा। उनके मतानुसार शायद बुद्ध के आविर्भाव से ही भारत का इतिहास प्रारम्भ हुआ। इसलिए सारनाथ का सिंह-स्तम्भ हमारा राष्ट्रीय प्रतीक है और राष्ट्रीय ध्वज के मध्य में अशोक-चक्र है। जब संविधान सभा ने भारत को स्वाधीनता दिलाने के लिए ईश्वर को धन्यवाद देने का प्रस्ताव रखने का विचार किया, तो पं. नेहरू को यह पसन्द नहीं आया और उस विचार को त्याग दिया गया। गाँधीजी को राष्ट्रपिता इसलिए कहा गया, क्योंकि उन्होंने राष्ट्रसेवा में ही अपना जीवन अर्पित कर दिया था। गाँधीजी का यह विश्वास था कि ईश्वर की सत्ता है और राम ईश्वर के ही एक रूप हैं। पर गाँधीजी के इस विचार के लिए भारत के संविधान में कोई जगह नहीं थी।

आज भी भारतीय जनता ने ईश्वर के विचार को नहीं त्यागा है। ऐसा नहीं है कि इस विचार ने हमेशा मानवता का भला ही किया हो। तथापि अधिकांश भारतीय जनता ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करती है। पं. नेहरू देश के नेता बन गए, फिर भी उन्होंने जनता के इस विचार का सम्मान नहीं किया।

पं. नेहरू एक आदर्शवादी व्यक्ति थे, जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखे बिना भी ईमानदार और सत्यनिष्ठ बने रह सकते थे। कुल मिलाकर वे अपनी कथनी के अनुसार खरा जीवन बिताते थे। परन्तु कोरा आदर्शवाद प्रशासन को लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता। प्रधानमंत्री

के रूप में पं. नेहरू के साथ कई अन्य राष्ट्रीय नेता भी थे, परन्तु सबके विचार आपस में मेल नहीं खाते थे। काँग्रेस में कार्य कर चुके कुछ नेताओं को भय था कि पं. नेहरू के नेतृत्व में कुछ समय बाद भारत में हिन्दुओं की स्थिति बिगड़ जाएगी। अतः उन लोगों ने हिन्दू महासभा नामक एक संगठन बनाया। राजाजी (राजगोपालाचारी) ने पं. नेहरू का साथ छोड़कर अपना एक नया दल बना लिया। यद्यपि वल्लभभाई पटेल ने उनका साथ नहीं छोड़ा, तथापि दोनों में मतभेद थे। सन् १९६४ में पं. नेहरू दिवंगत हो गए और काँग्रेस विभाजित हो गयी। बाद में कई विभाजनों के बाद काँग्रेस छः खंडों में बँट गयी। पं. नेहरू के जीवन काल में लोग अपने व्यवहार से उन्हें अप्रसन्न करने में संकोच करते थे, क्योंकि वे उनकी सत्यनिष्ठा का आदर करते थे। पं. नेहरू की मृत्यु के बाद उन्हें गलत कार्यों से कोई भय या संकोच नहीं रह गया। अतीत काल में लोग इस विश्वास के कारण बुरे कर्मों से विरत रहते थे कि ऐसे कर्म करने पर भगवान उन्हें दण्ड देंगे। इसी कारण वे सतर्क रहा करते थे। प्रायः एक उपदेवता के समान माने जानेवाले पं. नेहरू की मृत्यु के बाद हमारे राजनेताओं ने बेरोक-टोक यथेच्छाचार शुरू कर दिया। वैसे उनमें कुछ भले लोग भी थे, परन्तु बाकी लोग वैसे न थे। कुल मिलाकर राष्ट्रीय जीवन में ऐसा हास आया, जिसकी पहले कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी।

ईसाई और मुसलमान भाइयों के नेतागण स्वाभाविक तौर पर अपने धर्म और संस्कृति के विषय में गर्वित थे और अपने अनुयायियों के बीच अपने विश्वास या पन्थ की रक्षा करने के भाव को फैलाने हेतु कटिबद्ध थे। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ सभी धर्म उदारवादी दृष्टिकोण रखते हैं तथा जहाँ सभी धर्मों का आदर किया जाता है। इसी देश में सम्राट् अशोक ने धार्मिक सद्भाव का सन्देश फैलाया। परन्तु भारत के बहुसंख्यक हिन्दुओं को विद्यालयों में उनके धर्म की शिक्षा देने

हेतु सरकार से कोई आर्थिक सहायता इस आधार पर नहीं मिली, क्योंकि हमारी सरकार धर्मनिरपेक्ष थी। श्री एच. बी. कामथ ने एक बार दुःख व्यक्त करते हुए कहा था, 'राजकीय अनुदान प्राप्त करनेवाले शैक्षणिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षण पर रोक लगानेवाले अनुच्छेद २८ के पारित होते समय मैंने एक संशोधन प्रस्तुत किया था कि "नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षण" पर यह रोक नहीं होनी चाहिए। पर जब इसे नामंजूर कर दिया गया तब मुझे बड़ा दुःख हुआ। यह भविष्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। भारत के राजनीतिक जागरण के पूर्व एक ज्योतिर्मय धार्मिक-आध्यात्मिक पुनर्जागरण हुआ था। वस्तुतः इसी पुनर्जागरण ने हमारे स्वाधीनता-संघर्ष को आधार तथा नींव प्रदान की थी। यदि हमारी लोकतांत्रिक राज-व्यवस्था नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से अनुप्राणित होती रहती, तो सब कुछ ठीक चलता रहता।'।

जड़ पर कुठाराघात

हमें अपने धर्म और संस्कृति के उदात्त विचारों को समाज के उन पिछड़े वर्गों में फैलाना चाहिए था, जो कई शताब्दियों से उसका लाभ प्राप्त कर पाने से वंचित रहे हैं। यह कैसी विसंगति है कि हमारे अपने नेतागण ही इस प्रस्ताव पर गला फाड़कर चिल्ला पड़े थे - 'हम धर्म और कर्मवाद के विचारों से धोखा खा चुके हैं। धर्म में छल-कपट, अन्धविश्वास और शोषण के अतिरिक्त कुछ नहीं है।' धर्म-निरपेक्षता, वैज्ञानिकता और बुद्धिवाद की दुहाई देते हुए जनता को उदात्त नैतिक और आध्यात्मिक विचारों से परिचित होने के अवसर से वंचित करके ये नेतागण स्वयं ही दलित जनता के शोषण के माध्यम बन गए। यद्यपि हिन्दू समाज में एकता स्थापित करने का तब एक स्वर्णिम अवसर था, परन्तु उसे समृद्ध करने के बजाय, कतिपय लोगों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए एक विद्रोही वृत्ति को ही प्रोत्साहित किया

जिसने अप्रत्यक्ष रूप से अन्ततः दास्य वृत्ति के भंयकर रूप को जन्म दिया। अपने निजी धर्ममत का प्रचार-प्रसार करने और अन्य धर्मों का असली रूप दिखाने में लगे हुए कुछ धर्मों के अनुयायी अपने बन्धुओं में एक भयावह राजनैतिक भावना का संचार करने में लगे रहे और धर्म-परिवर्तनों के जरिये अपने वर्ग की शक्ति को बढ़ाने में लगे रहे। इस प्रकार वे सरकार से विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकारों तथा लाभों को प्राप्त करने में सफल रहे। हमारे नेताओं की दूरदर्शिता की कमी के कारण देश की जनता के धार्मिक विश्वास कमजोर होते गए और इसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर हिन्दू जनता के बीच आन्तरिक फूट को प्रोत्साहित किया। धर्म तथा सांस्कृतिक मूल्यों की बलि चढ़ाकर इन नेताओं ने सामाजिक संरचना की प्राणशक्ति को ही निस्तेज कर दिया और राष्ट्रीय इमारत की संरचना को ध्वस्त कर दिया।

अन्धविश्वास?

विज्ञान के अधिकचरे ज्ञान को प्राप्त करके, यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने का दावा करनेवाले और किन्हीं विशेष राजनीतिक सिद्धान्तों में ही निष्ठा रखनेवाले नेतागण ईश्वर-विषयक श्रद्धा, विशेषकर धर्म, आत्मा, आदि को अन्धविश्वास या पाखण्ड कहते हैं। आज धर्म के नाम पर कुछ अनाचारों के बारे में ऐसी आलोचनाओं को मान भी लिया जाए, तो भी क्या उनकी सारी आलोचनाओं को वैध ठहराया जा सकता है? यह बात स्पष्ट है कि धर्मरूपी पवित्र वृक्ष के महान फलों के रूप में श्रेष्ठ चरित्र के व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं। यदि कोई ऐसे श्रेष्ठ लोगों के चरित्र तथा उनकी सुदृढ़ नैतिकता की प्रेरणा के मूल का गहन अध्ययन किए बिना ही उनके दृष्टिकोण को अन्धविश्वास करार देता है, तो उसका अपना कथन ही उसकी मानसिक संकीर्णता तथा एक तरह के अन्धविश्वास का ठोस प्रमाण

है। फिर यह तर्क भी निराधार है कि विज्ञान धर्म या धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध ही चलता रहा है। यह सच है कि कुछ वैज्ञानिक आविष्कारों ने कुछ अन्धविश्वासों को मिटा दिया है। परन्तु विश्व के महान धर्मों द्वारा प्रचारित सिद्धान्त और एक सामाजिक प्राणी, मानव, द्वारा पालन किए जानेवाले नैतिक मूल्य विज्ञान द्वारा किए जा रहे सत्य की जाँच-पड़ताल की सीमा के बाहर हैं। कोई भी समझदार व्यक्ति सत्य के प्रति प्रेम, न्याय का सम्मान, सहायता का भाव, आत्मसंयम आदि सदगुणों का विरोध नहीं करेगा। धर्म की मूलभूत शिक्षा यही है कि क्षणिक सुखों के लिए मनुष्य को इन सदगुणों की उपेक्षा करके हीन तथा भ्रष्ट जीवन नहीं बिताना चाहिए। इन सदगुणों के पूर्ण विकास के लिए साधारण मनुष्य के अनुभव से परे अतीन्द्रिय सत्य या ईश्वर में विश्वास अत्यावश्यक है। विश्व के महान सन्तों ने इन सिद्धान्तों की अनुभूति करके अपने जीवन में उन्हें सिद्ध कर दिया है। प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयन्बी ने घोषणा की, 'भारतीय धर्म एकांगी भावों वाले नहीं हैं। वे इस बात को स्वीकार करने को राजी हैं कि इस रहस्य को जानने के लिए अन्य पथ भी हो सकते हैं। मुझे निश्चित रूप से लगता है कि इस मामले में वे बिल्कुल सही हैं। भारतीय धर्म-भावना का यह उदार भाव सभी धर्मों के मनुष्यों के लिए मुक्ति का मार्ग है। और इस युग में यदि हमें विनाश से बचना है, तो हमें एक परिवार के रूप में रहना सीखना होगा।' इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि परम सत्य के रूप में स्वीकृत ईश्वर, आत्मा आदि की धारणाएँ व्यक्तियों के चरित्र-गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

डब्ल्यू. एन. सलीवान कहते हैं, 'विज्ञान सत्य के केवल एक आंशिक पहलू से सरोकार रखता है। यह बात नितान्त आधारहीन है कि विज्ञान जिन तथ्यों की उपेक्षा करता है उनमें सत्य कम है और

जिनको स्वीकार करता है वे ही सत्य हैं। अब हमें यह शिक्षा नहीं दी जाती कि सत्य का ज्ञान प्राप्त करने का वैज्ञानिक तरीका ही एकमात्र वैध तरीका है। विज्ञान के कर्णधार मानो एक विचित्र उत्साह के साथ इस बात पर बल दे रहे हैं कि विज्ञान हमें वास्तविकता का एक आंशिक ज्ञान ही प्रदान करता है और विज्ञान द्वारा उपेक्षित हर चीज को मिथ्या समझने की अब हमें कोई आवश्यकता नहीं।'

प्रो. लेकोम्टे कहते हैं, 'केवल असामंजस्य चाहनेवालों के मन में ही विज्ञान तथा श्रद्धा के बीच असामंजस्य रहता है।'

यहाँ डब्ल्यू. जे. सोलज की भी उक्ति का स्मरण करना उचित होगा, 'दर्शन और धर्म के मामलों में विज्ञान मध्यस्थ नहीं है। तत्त्व-सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में अन्तिम निर्णय सदैव धर्म और दर्शन के पास ही होना चाहिए।'

परम तत्त्व

अल्डस हक्सले के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Ends and Means' ('साध्य और साधन') में उनके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं, 'अपने विश्वासों के आलोक में ही हम परम तत्त्व के स्वरूप के विषय में अपनी सही तथा गलत धारणाओं का निर्माण करते हैं; और अपनी सही तथा गलत धारणाओं के आलोक में हम अपना आचरण निर्धारित करते हैं। ऐसा हमारे निजी जीवन के सम्बन्धों में ही नहीं, अपितु राजनीति और आर्थिक क्षेत्र में भी घटित होता है। अतः हमारे दार्शनिक विश्वास अप्रासंगिक न होकर, हमारे सभी कर्मों के अन्तिम निर्णायक तत्त्व हैं।'

सभ्यता की बर्बरता

आज जीवन के हर क्षेत्र में हम इस विश्वास का अभाव पाते हैं। सर्वत्र, और विशेषतया शिक्षित लोगों में, न केवल भगवान या न्याय

या नैतिकता में विश्वास का अभाव दृष्टिगत होता है, अपितु अपने आप में भी विश्वास का अभाव दिखता है। हमारे प्रायः सभी राजनेता विश्वास करते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सतत विकास राष्ट्रीय प्रगति और सबलता का साधन है। स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ तथा राजनीतिक जरूरतें हमारे देश को अपनी परम्परा से दूर ले जा रही हैं। ८० वर्ष पूर्व जहाँ हमारे देश में केवल तीन विश्वविद्यालय थे, वहीं आज उनकी संख्या करीब १५० है। हमारी शिक्षा-प्रणाली में विज्ञान और तकनीकी विषयों ने गौरवपूर्ण स्थान ले लिया है। यहाँ तक कि बालिकाएँ भी विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की ओर आकर्षित हैं। केवल तथ्यों का ज्ञान एकत्र करने पर ही केन्द्रित हमारी शिक्षा-प्रणाली चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण करने में असमर्थ है। जीविका-निर्वाह के लिए कुछ कौशल प्राप्त कर लेना ही शिक्षा का एकमेव उद्देश्य माना जाने लगा है। व्यक्तित्व के समग्र विकास के साथ शिक्षा का कोई सरोकार नहीं है। जीवन की सुख-सुविधाओं में वृद्धि या मनुष्य की निम्न प्रवृत्तियों की तृप्ति को ही जीवन-स्तर में सुधार माना जाता है। आज के युवक का एकमात्र लक्ष्य एक ऐसी नौकरी प्राप्त करना है, जिसमें परिश्रम कम-से-कम और पारिश्रमिक अधिकतम हो। छात्र कई बार हड़ताल करके अपनी परीक्षाएँ स्थगित करवा लेते हैं और परीक्षाओं की संख्या भी घटवा सकते हैं। वे छुरा या बेल्ट दिखाकर परीक्षकों को धमकी देते हैं। कहीं-कहीं तो परीक्षाएँ पुलिस की निगरानी में करानी पड़ती हैं। परीक्षकों को रिश्वत का प्रलोभन देकर छात्र उच्च श्रेणी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा के बाद नौकरी पाकर ये छात्र क्या विवेक, अनुशासन, आत्मसंयम और शिष्टाचार की भावना रखकर देश के अच्छे नागरिक बन सकेंगे? ऐसी शिक्षा अनुशासन और संयम की लगाम से रहित एक जंगली घोड़ा बन सकती है, जो औचित्य-ज्ञान दे पाने में असमर्थ और नैतिक मूल्यों के

प्रति निष्ठा से रहित होगी। वह अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द गति से जहाँ कहीं भी विचरण कर सकती है। इसके फलस्वरूप वह आत्मघाती और सामाजिक रूप से हानिकारक कार्यों को बढ़ावा दे सकती है। उपर्युक्त कथन के प्रमाण के रूप में समाज में अनुशासनहीनता, चंचलता और बड़े पैमाने पर दुराचरण व्याप्त हैं। समाज तथा प्रशासन में उच्च-पदस्थ लोगों को अपने नैतिक आचरण के द्वारा जनता के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। गीता कहती है कि बड़े लोगों की देखा-देखी ही सामान्य जन भी आचरण करते हैं। नेता को दाता होना चाहिए। समाज के हितार्थ उसे अपने हित की आहुति देने में तत्पर रहना चाहिए। पर हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे राजनीतिक नेतागण लोगों को उचित पथ पर अग्रसर कराने और उनके नैतिक स्तर को उन्नत करनेवाले लोगों में नहीं हैं। आज नेता बनने के इच्छुक लोग राष्ट्र के इतिहास, अर्थशास्त्र या राजनीति विज्ञान के बारे में कुछ भी जानने की परवाह नहीं करते। वे सोचते हैं कि उन्हें किसी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं। उन्हें स्वार्थपरायणता ही सब कुछ प्रतीत होता है। मतदाताओं को लुब्ध करनेवाली चालबाजियों का ज्ञान और उनके प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित हो जाना ही उन्हें असली बात प्रतीत होती है। मतदाताओं में से ७०% तो अनपढ़ हैं, जो पूरे देश के हित या भविष्य का विचार किए बिना केवल अपनी तात्कालिक सुविधा की बात सोचते हैं। नेतागण इसे भलीभाँति जानते हैं और अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करने हेतु इस स्थिति का लाभ उठाने में ही रुचि रखते हैं। कुछ वर्ष पूर्व भारत के राष्ट्रपति ने कहा था, 'राजनेता आज नैतिक सिद्धान्तों का जितना अनादर कर रहे हैं, उतना इसके पहले कभी नहीं हुआ था। जनजीवन के लिए हानिकारक इस आचरण को सुधारना जरूरी है।' आज के संकट की आप कल्पना कर सकते हैं। आज सर्वत्र

अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा कालाबाजार का साम्राज्य फैला है। हत्या तथा डकैती जैसे अपराधों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने एक बार कहा था कि स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार और उनका शोषण असाध्य नैतिक पतन का लक्षण है। तब दिल्ली शहर में केवल एक हजार पुलिस-बल थे। आज यह संख्या बढ़कर तीन लाख हो गयी है, पर एक स्त्री दिन में भी दिल्ली की सड़कों पर अकेले जाने में डरती है।

कैसा अधःपतन !

भारत में शासन के दौरान अंग्रेज लोगों ने स्थानीय उद्योगों का विनाश करके भारत की प्रचुर धन-सम्पदा को लूटा। श्री ताराचन्द अपने 'स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास' में लिखते हैं, 'विलियम डिगबी का अनुमान है कि सम्भवतः पलासी के युद्ध (१७५७ ई.) से वाटरलू (१८१५ ई.) के बीच एक अरब डालर की राशि भारतीय खजानों से अंग्रेजी बैंकों में स्थानान्तरित हुई थी।' उन दिनों ४५% लोग दोनों समय का भोजन नहीं पाते थे। स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं का लक्ष्य गरीबी उन्मूलन, जनता को शिक्षा प्रदान करना और राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करना था। यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्वाधीनता के बाद के वर्षों में राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण विकास हुआ है, परन्तु गरीबी रेखा के घटने का कोई संकेत नहीं है।

पाश्चात्य देशों में औद्योगिकी सम्पदा बढ़ने के साथ ही श्रमिकगण अपनी शिकायतों के निराकरण की जरूरत के प्रति सचेत हो गए। पर भारत में, देश की गरीबी घटने के पूर्व ही श्रमिकों ने हड़ताल आदि के द्वारा अपने अधिकारों के लिए लड़ाई छेड़ दी। हड़तालों और आन्दोलनों द्वारा उनकी माँगों की पूर्ति न होने पर वे सार्वजनिक

सम्पत्ति को नष्ट करने पर तुल जाते हैं, जो सचमुच ही आत्मघाती है। यह आम बात हो गई है कि श्रमिक क्रोध के आवेश में अपने ही कारखाने के उन उपकरणों का नाश कर देते हैं, जिनसे उनका भरण-पोषण हुआ है और हो रहा है। ऐसे विध्वंसक कार्यों में छात्रगण भी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। किसी के भी द्वारा की गई कथित गलती के लिए करोड़ों रुपयों की सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। अति मूल्यवान सार्वजनिक सम्पत्ति के ऐसे विनाश की खबरें समाचार-पत्रों में प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। बंगाल के विद्युत् विभाग में एक बार राजनीतिक कारणों से अनेक अयोग्य लोगों की भरती हो गयी थी। इसके फलस्वरूप वहाँ अनुशासनहीनता और अक्षमता बढ़ती गयी। मशीनों की सही देखभाल न होने के कारण वे खराब हो गयीं, विद्युत् उत्पादन गिर गया और विभिन्न कारखानों के उत्पादन में भी बड़ी तेजी से ह्रास आया, जिससे करोड़ों रुपयों का घाटा हुआ। राजनीतिक कारणों से लोगों को रोजगार देने की नीति इन दिनों आम बात हो गयी है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि रिश्तखोरी और कालाबाजारी एक अपवाद की जगह नियम ही बन चुके हैं। यद्यपि सरकार कालाबाजारियों की सम्पत्ति को जब्त करने की नीति घोषित करती रहती है, परन्तु इस नीति के कार्यान्वयन हेतु कोई ठोस प्रयास नहीं किए जाते। क्या यह नैतिक ह्रास का एक लक्षण नहीं है कि इस राष्ट्रीय खतरे से निपटने के लिए ईमानदारी से कोई प्रयत्न नहीं किए जा रहे हैं? विशेषज्ञों का कहना है कि अगले ३५ वर्षों में राष्ट्र की जनसंख्या दुगुनी हो जाएगी। देश में कितने लोगों को इस स्तर की शिक्षा प्राप्त है कि जनसंख्या वृद्धि के दबाव को समझ सकें और फलस्वरूप होनेवाले जीवन के भयानक संघर्ष की कल्पना कर सकें? गाँधीजी ने स्वतंत्रता मिलने के बाद देश में राम-

राज्य के आगमन का सपना देखा था। उनका विश्वास था कि चरित्रवान और ईमानदार लोगों के संगठित प्रयासों का यह सुफल मिलेगा। परन्तु आज की राजनीतिक स्थिति राष्ट्र के बुनियादी स्तम्भों को ही नष्ट कर रही है।

यद्यपि नैतिक हास भयावह स्तर तक पहुँच गया है, तो भी देश का कोई चिन्तक, धार्मिक नेता या राजनैतिक दिग्गज इससे चिन्तित नहीं लगता। ऐसा नहीं लगता कि उन्हें अपने चतुर्दिक हो रही घटनाओं की कोई परवाह है। विशेषज्ञों द्वारा आपस में संगठित होकर इस गम्भीर मसले पर विचार-विमर्श किए जाने की भी कोई सूचना नहीं है। क्या हम यह आशा कर रहे हैं कि एक दिन यह सब स्वतः ही पूर्ववत् सुव्यवस्थित हो जाएगा?

ज्ञान का स्वर

पिछली शताब्दी में ही स्वामी विवेकानन्द ने यह चेतावनी दी थी, 'सभी राजनीतिक तथा सामाजिक प्रणालियाँ और संगठन मूलतः मनुष्य की अच्छाई पर निर्भर करते हैं। संसद के कानून के द्वारा लोगों को सदाचारी नहीं बनाया जा सकता। इसकी कोई गारंटी नहीं है कि संसद द्वारा अच्छा कानून बना देने से कोई राष्ट्र अपने आप सबल हो जाएगा। परन्तु यदि किसी देश के लोग अच्छे और महान हैं, तो वह देश स्वतः अच्छा और महान हो जाएगा। संसार की सभी प्रकार की सम्पदाओं में मनुष्य सर्वाधिक मूल्यवान है।

‘सब बातों से यही प्रकट हो रहा है कि समाजवाद या जनता द्वारा शासन का कोई रूप, उसे चाहे जो नाम दिया जाए, उभरता आ रहा है। निश्चय ही लोग चाहेंगे कि उनकी भौतिक जरूरतों की पूर्ति हो, वे कम काम करें, उनका शोषण न हो, युद्ध न हो और भोजन अधिक मिले। इस बात का हमारे पास क्या प्रमाण है कि यह या कोई

दूसरी सभ्यता, जब तक कि वह धर्म पर, मनुष्य के भीतर की अच्छाई पर निर्भर न हो, स्थायी होगी? विश्वास कीजिए, धर्म इस समस्या की जड़ तक पहुँचता है। यदि वह ठीक है, तो सब ठीक है।

‘संसदीय अधिनियम, सरकार, राजनीतिक प्रशासन – ये सब वस्तुतः हमारे अन्तिम लक्ष्य नहीं, अपितु साधन हैं। इनके परे एक लक्ष्य है, जो इन तथ्यों में से किसी से भी शासित नहीं होता है। ईसामसीह को बोध हुआ कि नैतिकता और हृदय की पवित्रता शक्ति के सच्चे स्रोत हैं। हमारे ऋषियों ने भी इसी सत्य की घोषणा की। इस प्रकार यह सत्य है कि धर्म समस्या के मूल बिन्दु पर प्रहार करता है और यह मनुष्य का चरित्र-गठन करता है।

‘धर्म की कोई गलती नहीं है। मेरा दावा है कि हिन्दू समाज की उन्नति के लिए धर्म का विनाश जरूरी नहीं है और समाज की यह दुरवस्था धर्म के कारण नहीं है, बल्कि धर्म को समाज पर जिस ढंग से लागू किया जाना चाहिए था, उस प्रकार लागू नहीं किया गया। मैं इस कथन का प्रत्येक शब्द अपने प्राचीन शास्त्रों के आधार पर सिद्ध करने को तैयार हूँ। इस दुरवस्था को मिटाया जाना चाहिए, परन्तु धर्म का नाश करके नहीं, अपितु हिन्दू धर्म की महान शिक्षाओं का अनुसरण करके ऐसा किया जाना चाहिए।

‘अतः भारत में किसी भी प्रकार का सुधार लाने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी या राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि इसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाए। सर्वप्रथम, हमारे उपनिषदों, पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं, उन्हें इन सब ग्रन्थों के पन्नों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनों की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर देश में सर्वत्र बिखेर देना होगा।

‘देश में राष्ट्रीय भावना जगाने का उपाय यही है कि अपनी लुप्त हो रही आध्यात्मिक शक्ति को पुनर्जीवित किया जाए। यदि हमें अपना अभ्युत्थान करना है, तो हमें आपस में झगड़ना बन्द कर देना चाहिए। अपने सम्मुख यह आदर्श रखो - “धर्म को बिना हानि पहुँचाए जनता की उन्नति।”’

कुल मिलाकर, जनता में आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न करना मानो राष्ट्र के खून को स्वच्छ करना है और पौधों पर उचित प्रकार के कीटनाशक छिड़कना है। शिक्षित तथा ज्ञानी लोगों को प्रयासपूर्वक आध्यात्मिक विचारों को आत्मसात् करके लोगों में धर्म का सन्देश फैलाना चाहिए। चाहे कोई भी दल विजय प्राप्त करे, परन्तु मनुष्य का हृदय पवित्र न होने पर स्वार्थपरता ही हमारे राष्ट्र-शरीर को प्रभावित करेगी। एक पवित्र-हृदय व्यक्ति की भला कौन बराबरी कर सकता है? इमारत मजबूत तभी होती है, जब उसकी प्रत्येक ईंट मजबूत और अपने सही स्थान पर दृढ़ हो। जलधारा बनाने में जल की प्रत्येक बूँद का योगदान होता है। अन्न-भण्डार को भरने में हर दाने का योगदान होता है। व्यक्तिगत चरित्र-सुधार द्वारा ही हम सामाजिक कल्याण की आशा कर सकते हैं। चरित्र-विकास की बुनियाद ईश्वर और स्वयं में विश्वास तथा अन्ततः भलाई के विजयी होने के विश्वास में निहित है।

विश्वास की स्थापना

ऐसे कोई आसार नहीं दिखते कि हमारे देश के शिक्षित लोग आध्यात्मिकता, धर्म और ईश्वर जैसी धारणाओं में कभी रुचि लेंगे। विडम्बना यह है कि धर्म के दुर्बल अनुयायी ही धर्म की नींव को दुर्बल बनाते हैं। आज अध्यात्म की नींव अधिकाधिक दुर्बल होती जा रही है। धर्म की सही सोच रखनेवाले लोगों का यह दृढ़ विचार है कि

आध्यात्मिकता का अभाव ही आज के विश्व के समस्त नैतिक हास के लिए सीधे जिम्मेदार है। आध्यात्मिक नींव के दुर्बल होने का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह नहीं कि धर्म के सिद्धान्त अपनी उपयोगिता खो चुके हैं। लोग अपने दोषों के कारण उन सिद्धान्तों के पालन में शिथिल होकर उनमें श्रद्धा खो चुके हैं। पर वे सिद्धान्त आज भी हितकर हैं। न्यूटन की खोज के पहले भी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मौजूद था। हमारे द्वारा विस्मृत तथा न दिखनेवाली चीजों का भी अस्तित्व है।

परन्तु प्रकृति के नियमों को जान लेने पर हम अपने सुख और हित में वृद्धि हेतु उसकी शक्तियों को नियंत्रित कर सकते हैं। धर्म के नियम सनातन सत्यों पर आधारित हैं। कोई समाज विभिन्न कारणों से धर्म में अविश्वासी हो सकता है। क्षणिक और प्रलोभनकारी चीजों से विमोहित होकर लोग धर्म के सिद्धान्तों से विमुख हो सकते हैं। यह धार्मिक हास का प्रारम्भ है। यदि हम धर्म का अनुसरण नहीं करते, तो इससे धार्मिक सिद्धान्त गलत सिद्ध नहीं हो जाते। इससे घाटा मनुष्य का ही होता है। यदि हम स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के नियमों का पालन नहीं करते, तो इससे कष्ट किसे मिलेगा? नियम भंग करनेवाले को ही कष्ट मिलता है। हम इस क्षति से कैसे बचें? भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं, 'इस धर्म का रहस्य, अतीत काल में मैंने सूर्यदेव को बताया था। सूर्य ने इसे मनु को दिया। मनु ने यह रहस्य इक्ष्वाकु को बताया। अतीत काल के आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले सम्राट् इस परम्परा को जानते थे। परन्तु हे अर्जुन! काल के प्रवाह में परम्परा के खण्डित हो जाने से यह ज्ञान लुप्त हो गया।' दूसरे शब्दों में, इन्द्रिय-संयम से रहित दुर्बल लोगों के हाथों में चले जाने पर, यह ज्ञान लुप्त हो गया। वस्तुतः यह ज्ञान लुप्त नहीं हुआ, बल्कि इस योग के तथाकथित जानकार लोगों ने अपने स्वार्थ-साधन हेतु प्रयोग

करके इसे बदनाम और इसका पतन किया। लोग स्वभावतः इसमें अपना विश्वास खो बैठे। अब धर्म के पुनरुत्थान का अर्थ है, ऐसी श्रद्धा का पुनरुत्थान जिससे लोग धार्मिक नियमों के अनुसरण में दृढ़तापूर्वक तत्पर हों। सन्त, महापुरुष और ईश्वर के अवतार पृथ्वी के लोगों के मन में यह विश्वास स्थापित करने हेतु प्रयत्नशील हैं। हमारे देश में सारे सामाजिक और राजनीतिक विकास के पीछे आध्यात्मिक व्यक्तियों का अमोघ मार्गदर्शन विद्यमान है।

परन्तु शिक्षित होने का दावा करनेवाले और उच्च पदों पर बैठे तथा सामर्थ्यवान लोगों ने दुर्भाग्यवश हमारे देश की इस गौरवमयी आध्यात्मिक परम्परा को विस्मृत कर दिया है।

राष्ट्र के समक्ष आदर्श

पुराकाल से ही भारतवासियों का ऐसा विश्वास था कि ईश्वर और आत्मा आदि इन्द्रियातीत तत्त्व सनातन सत्य हैं और इनकी अनुभूति के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे हैं। ईश्वर या आत्मा की अनुभूति को व्यक्ति या राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य माना गया था। इन इन्द्रियातीत आदर्शों में इतनी रुचि होने का क्या कारण था? इसका कारण इस तथ्य में ढूँढ़ा जा सकता है कि बीच-बीच में इस देश में दैवी गुणों तथा सच्चे आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण महापुरुषों का आविर्भाव होता रहा है। पाश्चात्य जगत को यदि 'विज्ञान का घर' कहें, तो निःसन्देह भारत को 'धर्मों और आध्यात्मिक ज्ञान का घर' माना जा सकता है। भारत में सामाजिक आचार-संहिताओं का निर्माण आध्यात्मिक पूर्णता या मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से आध्यात्मिक जीवन की सुदृढ़ नींव पर किया गया। समाज का हर व्यक्ति अपने जन्मजात गुणों के अनुसार विवेकपूर्वक अपने कर्तव्यों को पूरा करके आध्यात्मिक पूर्णता या मोक्ष प्राप्त कर सकता था। पूर्वकाल के महापुरुषों का यह दृढ़

विश्वास था। ये विचार ग्रन्थों के जड़ पृष्ठों में ही नहीं, अपितु आचरण में उतारे जाते थे। इतिहास ऐसे आचरण के यथेष्ट दृष्टान्त देता है।

शक्ति-परीक्षण

एक पाश्चात्य दार्शनिक ने एक बार कहा था, 'हमारे पास एक-दूसरे से प्रेम करने को प्रेरित करनेवाले तो नहीं, परन्तु एक-दूसरे से घृणा तथा कलह करने को उकसानेवाले पर्याप्त धर्म हैं।' दूसरे शब्दों में कहें तो 'हम धर्म की गौण बातों को लेकर आपस में झगड़ते रहते हैं।'

क्या ईश्वर ने ही सभी प्राणियों में प्राण-संचार नहीं किया है? श्रीरामकृष्ण कहते थे कि गाँव के तालाब के पदार्थ को कोई 'जल' तो कोई 'पानी' कहता है। जीवन के सभी रूपों को क्रियाशील बनानेवाली शक्ति की विभिन्न धर्म के अनुयायियों द्वारा विभिन्न प्रकार से अनुभूति और उपासना की गयी है। आज भी लोग इस मूलभूत सत्य से अनभिज्ञ रहकर आपस में झगड़ते हुए कहते हैं, 'हमारे भगवान बड़े हैं, तुम्हारे छोटे हैं।' या 'हमारा धर्म सत्य है, तुम्हारा धर्म झूठा है।' मनुष्य की इस अज्ञानता पर भगवान शायद हँसा करते होंगे।

यदि ईश्वर हमारे लक्ष्य हैं, तो आध्यात्मिक जीवन ही पथ है। भय, क्रोध, चिन्ता आदि ईश्वर की ओर ले जानेवाले मार्ग की बाधाएँ हैं। सम्भवतः वे भक्त की ईश्वर में विश्वास-निष्ठा की परीक्षाएँ हैं। जब भौकता हुआ कुत्ता हमें काट खाने को दौड़ता है, तो हम घर के मालिक को पुकारते हैं। घर का मालिक आकर कुत्ते को शान्त करके हमारा स्वागत करता है। जब कभी आपको मानसिक कठिनाइयाँ सताती हैं, तो आप भगवान को पुकारकर और उनकी शरण में जाकर राहत पाते हैं। अँधेरा हो, तो क्या हम केवल 'यहाँ अँधेरा है, अँधेरा है' - चिल्लाकर ही अँधेरे को मिटा सकते हैं? केवल प्रकाश ही

अँधेरे को मिटा सकता है। चिन्ता व भय से त्रस्त हो जाने पर, केवल उनका रोना रोने से हमें राहत नहीं मिल सकती। उनसे बच निकलने के लिए हमें ज्ञान के प्रकाश की जरूरत है। हमारे मन और हृदय को प्रबुद्ध हो जाना चाहिए।

चिन्ताएँ मिटें, हृदय और मन खिलें

चिन्ता हमारे जीवन को निगल जाने में समर्थ एक अति घातक शक्ति है। दीमक लगे चन्दन-वृक्ष की जड़ों के समान एक चिन्ताग्रस्त व्यक्ति उचित निर्णय तथा विवेक की क्षमता को खोकर विनाश के गर्त में जा सकता है। वह भूल जाता है कि उसके भीतर अनन्त शक्तियाँ छिपी हैं। वह खेद करता है, 'मैं मूर्ख, दुर्बल तथा अक्षम हूँ।' वह आलस्य की गोद में सोकर, इन्द्रियों का दास बनकर, भौतिक सुखों की छाया में पलता है; और क्रोध तथा घृणाभाव के कारण अपने भाइयों के प्रति हिंसा में लिप्त होकर भस्मासुर की भाँति अपने स्रष्टा पर ही प्रहार करता है। आज भारत में ईश्वर या धर्म के नाम पर जो खून-खराबा हो रहा है, इसका मूल कारण आधुनिक मानव में ही निहित है। आधुनिकता के छद्मवेष में वह चिन्ता, भय व अन्य मनोविकारों से ग्रस्त होकर स्वार्थी, संकीर्ण तथा चंचल हो उठा है। मानव-सभ्यता को विध्वंस के कगार पर जाने से रोकने हेतु लोगों के हृदय में भाईचारे, उदारता तथा निःस्वार्थता का विकास होना चाहिए। व्यक्ति के भले होने पर, उसके मन से चिन्ताएँ हटेंगी तथा प्रेम, मित्रता व सहयोग-भाव को स्थान मिलेगा। तब सर्वत्र तुष्टि, शान्ति, सुख एवं हित की सुरभित वायु प्रवाहित होगी। समाज की उन्नति एवं सुख के लिए आज हमें इसी की जरूरत है।

अध्याय २

प्रेम की अद्भुत शक्ति

सारा जगत सच्चा प्रेम पाने को व्याकुल है। बदले में कुछ पाने की इच्छा रखे बिना ही यह प्रेम देना चाहिए। वत्स, प्रेम कभी निष्फल नहीं होता, कल हो या परसों या युगों बाद, पर सत्य की जय अवश्य होगी। प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने सहमानवों से प्रेम करते हो?

प्रेम की सर्वसमर्थ शक्ति में विश्वास करो। यदि तुम्हारे पास प्रेम है, तो तुम सर्व-शक्तिमान हो। संसार को ऐसे लोग चाहिए, जिनका जीवन निःस्वार्थ ज्वलन्त प्रेमस्वरूप हो।

— स्वामी विवेकानन्द

सभी चीजें समतुल्य चीजों को आकर्षित करती हैं, समतुल्य चीजों को उत्पन्न करती हैं और समतुल्य चीजों के समान ही बन जाती हैं। प्रेम में भी ऐसा ही होता है।

ज्योंही कोई व्यक्ति अपने सम्पर्क में आनेवाले अप्रिय या मतभेद रखनेवाले लोगों से सचमुच प्रेम करना सीख लेता है, त्योंही वह बन्धन से मुक्त हो जाता है।

— जिना सरमिनारा

सच्चा प्रेम एक रचनात्मक अभिव्यक्ति है; इसमें हितचिन्ता, आदर, जिम्मेदारी और समझ के भाव निहित हैं। यह अपने प्रेमास्पद के विकास और सुख के लिए ऐसा सक्रिय प्रयत्न है जिसका आधार प्रेम करनेवाले की अपनी प्रेम करने की क्षमता है।

— एरिक फ्रॉम

बिना स्वाधीनता के प्रेम आ नहीं सकता। दास में सच्चा प्रेम होना सम्भव नहीं। तुम भले ही संसार के सारे ग्रन्थ पढ़ डालो; पर यह प्रेम न तो वाक्पटुता से, न तीव्र बुद्धि से और न शास्त्रों के अध्ययन से पाया जा सकता है। जिसे ईश्वर की चाह है, उसी को प्रेम मिलेगा और ईश्वर स्वयं को उसे दे देते हैं। अतः प्रेम सदा पारस्परिक तथा परावर्तक होता है और इसके बिना हम आनन्द नहीं पा सकते।

— स्वामी विवेकानन्द

प्रेम का आकर्षण

जहाँ प्रेम है, वहाँ भय नहीं रहता ।

ईसामसीह कहते हैं, 'सच्चा प्रेम सभी प्रकार के भयों का नाश कर देता है ।' पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम एक दिव्य शक्ति है । सेंट पॉल कहते हैं, 'विश्वास, आशा और प्रेम - इन तीन सदगुणों में प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है ।'

प्रेम, प्रेरित करता है और कार्य करने की बड़ी क्षमता प्रदान करता है । ये दोनों ही मानवता की प्रगति के लिए आवश्यक हैं ।

प्रेम जीवन, स्वास्थ्य, प्रसन्नता और शान्ति प्रदान करता है । किसी व्यक्ति को नरक के अन्धकारमय गर्त से बाहर निकालने की शक्ति प्रेम में ही है । प्रेम किसी व्यक्ति के जीवन में आमूल सुधार ला सकता है, जिसके फलस्वरूप वह हर क्षेत्र में उन्नति कर सकता है । प्रेम के अभाव में लोग विशादग्रस्त, दुर्बल और दुःखी हो जाते हैं ।

विशेषज्ञों का कहना है कि जो बच्चे अपनी शैशवावस्था या बचपन में माता-पिता के शुद्ध प्रेम का आस्वादन नहीं कर पाते, वे बाद में दुष्ट, भ्रष्ट और क्रूर बन जाते हैं ।

एक विशेषज्ञ का कहना है, 'बच्चों को यदि शैशवावस्था से ही भय के वातावरण में रखा जाए तो ऐसी परिस्थिति में उनके हृदय में अपने आप ही हिंसा, बुराई, क्रूरता, निष्ठुरता जैसे गुण पनपने लगते हैं । उन्हें भय और आतंक में रखना, उन्हें अपराधी बनाने का निश्चित उपाय है ।'

बच्चों के प्रति निश्छल प्रेम दर्शाने का यह अर्थ कदापि नहीं कि उन्हें यथेच्छाचार करने दिया जाए । निःसन्देह बच्चों के पालन-पोषण के दौरान सुधार-प्रक्रिया के एक अंग के रूप में अनुशासन जरूरी है । अच्छे कार्यों की प्रशंसा तथा पुरस्कार द्वारा उत्साहवर्धन करना बच्चों

के साथ व्यवहार करने का एक सार्वभौमिक मान्यताप्राप्त तरीका है। और इसमें भी सन्देह नहीं कि गलतियाँ करने पर उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। जब बच्चों को बोध होता है कि दण्ड तथा डाँट उनके अपने हित के लिए हैं और यदि उन्हें दिया गया दण्ड उनकी गलती के अनुरूप होता है, तो सामान्यतया वे उसे बुरा नहीं मानते। जो भी हो, बच्चों को बोध होना चाहिए कि दण्ड उनके दुष्कर्म के लिए है। जिस समय डाँट-फटकार ही बच्चों के हित में हो, उस समय उन्हें लाड़-प्यार करना ठीक नहीं।

समर्पण में ही जीत है

एक शिक्षित दम्पति है। पति-पत्नी, दोनों एक ही कॉलेज में पढ़ते हैं। दोनों में प्रायः असहमति रहती थी। तर्क-वितर्क से कभी-कभी संकट खड़ा हो जाता था। कुछ काल बाद पति का तबादला हुआ और वे नये शहर में रहने लगे। थोड़े दिन वे शान्तिपूर्वक रहे। एक दिन दोनों में फिर झगड़ा हुआ। पति अपने क्रोध पर नियंत्रण न रख सका। उसने पत्नी के गाल पर थप्पड़ जड़ दिया। पत्नी भी इसे सह नहीं सकी। वह उसी रात अपनी माँ के साथ रहने चली गयी।

कुछ दिनों बाद उसने किसी से सुना कि उसके पति को टाइफायड हुआ है। वह अपना कर्तव्य निर्धारित नहीं कर सकी। वह श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज के पास गयी। उन्होंने कहा - 'एक साइकिल की कल्पना करो। यदि इसके एक पहिए को एक दिशा में और दूसरे पहिए को विपरीत दिशा में चलाया जाए, तो साइकिल नहीं चलेगी। नर और नारी में स्वभाव का थोड़ा-बहुत अन्तर होना स्वाभाविक ही है। संसार चलाने के लिए यह अन्तर आवश्यक है। यदि मनुष्य के पास शौर्य और उदारता है, तो नारी धैर्य और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। वस्तुतः भगवान का बनाया हुआ यह संसार एक रंगमंच है, जहाँ हर

व्यक्ति से यथाशक्ति सर्वोत्तम ढंग से अपनी भूमिका के निर्वाह की अपेक्षा की जाती है। छोटी भूमिका मिले, तो भी उसे उचित ढंग से सम्पन्न किया जाना चाहिए। एक छोटी भूमिका के लिए पुरस्कार या सफलता का उतना ही महत्त्व है, जितना बड़ी भूमिका के लिए। बच्चों को जन्म देना और माँ बनने का सम्मान प्राप्त करना नारी का विशेषाधिकार है। वह तुम्हारे पति को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। अतः अपने अधिकार का दावा करने का विचार छोड़ दो। एक-दूसरे को प्रेम और स्नेह देने में ही सुख है।' उसने पूछा - 'अब मैं क्या करूँ?' श्री महाराज ने कहा - 'अगली ट्रेन से पति के पास चली जाओ। उनकी ऐसी सेवा करो, मानो तुम दोनों के बीच कुछ हुआ ही न हो। नित्य प्रातः उन्हें प्रणाम करना। तुम कृतार्थ हो जाओगी।'

तदनुसार वह अपने पति के पास चली गई और उनकी सेवा करने लगी। कुछ ही दिनों में उनका ज्वर उतर गया। एक दिन प्रातः उठने पर पति ने देखा कि पत्नी उसे प्रणाम कर रही है। वह आत्मग्लानि से भरकर कह उठा, 'ईश्वर की कृपा से मेरी हालत सुधर रही है, परन्तु मैं अपने आचरण के लिए अत्यन्त दुःखी हूँ। तुम मेरी गलती पर ध्यान न देकर मेरे पास आ गयी। तुम्हें निश्चय ही किसी महात्मा का निर्देश मिला होगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दुबारा भूल नहीं करूँगा।' पति-पत्नी के बीच मेल-जोल हो गया। कुछ दिनों बाद उन्हें एक पुत्र हुआ। दोनों अपने पुत्र के साथ श्री महाराज के पास गए और अपने जीवन में शान्ति और सामंजस्य की बहाली के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त किया।

रहस्य क्या है?

समाजशास्त्र के एक प्राध्यापक ने अपने छात्रों को निर्धनों की बस्ती में रहनेवाले युवकों का अध्ययन करने का निर्देश दिया था।

यह घटना अमेरिका के बाल्टीमोर अंचल में हुई थी। छात्रों ने वहाँ जाकर लगभग २०० युवकों का साक्षात्कार लिया और उनके बारे में ढेर सारी सूचनाएँ एकत्र कीं। बस्ती का परिवेश भयावह था। वहाँ युवकों के लिए सदगुणों को सीखने का कोई अवसर न था। उस बस्ती का अध्ययन करनेवाले छात्रों ने भविष्यवाणी की कि वहाँ के कम-से-कम ९०% युवक आगे चलकर अपराधी बन जाएँगे।

२५ वर्षों बाद उन्हीं प्राध्यापक ने, उसी क्षेत्र में, एक अन्य अध्ययन-दल भेजा। वे यह जानने को उत्सुक थे कि उनके पुराने छात्रों की भविष्यवाणी कहाँ तक सत्य हुई है। २५ वर्षों पूर्व के दल ने जिन २०० युवकों का अध्ययन किया था, छात्रों का यह नया दल उनमें से १६० लोगों से मिलने में समर्थ हुआ। छात्रों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पूर्ववर्ती भविष्यवाणी गलत साबित हुई। उनमें से सभी सभ्य मनुष्य बन गए थे। उनके इस रूपान्तरण का क्या रहस्य था?

रूपान्तरण का अग्रदूत

नया अध्ययन-दल पहले दल की भविष्यवाणी के असत्य हो जाने का कारण जानने को उत्सुक था। दल के सदस्यों को पता चला कि उस झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र में स्थित विद्यालय के सभी विद्यार्थी मिस शीला रौरके नामक एक अध्यापिका के प्रभाव में आए थे। शीला तब तक सेवानिवृत्त हो चुकी थीं। उन्हें खोज पाना बड़ा कठिन कार्य था। परन्तु थोड़े प्रयास के बाद अध्ययन-दल उन्हें ढूँढ़ने में सफल हो गया। सदस्यों ने उनसे पूछा कि इस निराशाजनक परिवेश में वे बालकों को कैसे प्रेरित कर सकीं तथा उन्हें प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाकर देश के सुयोग्य नागरिक बनाने में उन्होंने क्या तकनीक अपनायी। शीला रौरके ने कहा, 'मुझे नहीं लगता कि मैंने कोई योजनाबद्ध रूप से कार्य किया हो। मैं तो केवल इतना ही जानती हूँ

कि वहाँ अध्यापिका के रूप में कार्यरत रहते समय मैंने प्रत्येक विद्यार्थी से प्रेम तथा आदर से युक्त व्यवहार किया।'

आप सोचेंगे कि यह बड़ा साधारण उत्तर है, पर इसका यह अर्थ है कि आपने प्रेम के सच्चे स्वरूप को ठीक-ठीक नहीं समझा। आपने प्रेम को सस्ती आवेगपूर्ण भावुकता के जैसा ही समझ लिया है। प्रेम सच्चे रूपान्तरण को शुरू कर सकता है। केवल प्रेम प्राप्त करनेवाले लोग ही इसकी सच्ची महानता को समझ सकते हैं और केवल वे ही दूसरों को प्रेम प्रदान कर सकते हैं। प्रेम अपने प्रेम-पात्र की आत्मछवि को सबल बनाकर उसके आत्मविश्वास में वृद्धि कर सकता है। शुद्ध प्रेम का आस्वादन करनेवाला विकसित होकर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिणत हो जाता है। वह अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखकर एक उत्तम चरित्रवाला व्यक्ति हो जाता है।

माता-पिता तथा परिवार के बड़ों का व्यवहार प्रेम एवं समझदारी से युक्त होना चाहिए। इस प्रकार घर के बड़े एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसे देखकर बच्चे उसे अपनाने का प्रयास करते हैं। बच्चों में ऊर्जा तथा प्रतिभा का भण्डार होता है। बड़ों के सम्पर्क से प्राप्त विशुद्ध प्रेम और नैतिक प्रेरणा बच्चों की प्रसुप्त शक्ति को सही दिशा की ओर उन्मुख करने में सहायक होती है।

विशुद्ध प्रेम प्राप्त करनेवाला ही दूसरों को प्रेम दे सकता है। नवजात शिशु बातें नहीं कर सकता, तो क्या कोई माता यह सोचती है, 'बच्चा तो कुछ नहीं बोलता, तो फिर मैं क्यों बोलूँ?' माँ अपने बच्चे के साथ प्रेमपूर्वक बातें करती रहती है। वह बच्चे पर अपने प्रेम की वर्षा करती है और बच्चा आनन्द और किलकारी के द्वारा उसका उत्तर देता है। हँसी और खिलखिलाहट ही इस प्रेम की भाषा है। माँ के इस प्रेमपूर्ण आचरण के कारण ही बच्चा बोलने की कला जान लेता है। सच ही कहा गया है, 'माँ की गोद में ही बोलना सीखा जाता है।'

शिशु बोलकर अपना प्रेम प्रकट नहीं कर सकते। शिशु के रूप में हम प्रेम प्राप्त करते तो हैं, परन्तु बोधपूर्वक हम उसका प्रतिदान करने में सक्षम नहीं हैं। घर में माता-पिता तथा बड़ों और विद्यालय में अध्यापकों और सहपाठियों द्वारा प्राप्त प्रेम के द्वारा ही हमारा विकास होता है। निःस्वार्थ तथा विशुद्ध प्रेम ही हमारे चरित्र की विशेषताओं की पहचान करता है, हमारे गुणों को देखता है, भूलों को क्षमा करता है, हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है, हमारी अच्छाइयों को रेखांकित करता है और हमारी विशेषताओं को बनाए रखकर हमारे व्यक्तित्व के विकास में मदद करता है।

यह निःस्वार्थ प्रेम हमें कौन दे सकता है?

एरिक फ्रॉम कहते हैं, 'लोगों का विश्वास है कि प्रेम करना बड़ा आसान है। यद्यपि हम सभी प्रेम करने की जन्मजात क्षमता रखते हैं, तो भी केवल कुछ लोगों ने ही वास्तव में प्रेम करने की कला अर्जित की है।' कोई युवक सोच सकता है कि जिस युवती से उसका विवाह होने जा रहा है, वह उससे प्रेम करता है; क्योंकि युवती बुद्धिमान तथा सुन्दर है। पर इसे सच्चा प्रेम नहीं कहा जा सकता। यह तो केवल प्रशंसा या पसन्द ही प्रकट करता है। प्रेम की दृढ़ता और स्थिरता प्रिय के गुणों पर निर्भर नहीं होते। व्यक्ति की अपनी क्षमता के अनुसार ही प्रेम सुदृढ़ या स्थिर होता है। कुछ लोगों की धारणा है कि प्रेम कर पाने का गुण जन्मजात नहीं होता। विलियम सी. मेनिंजर कहते हैं, 'बेहतर होगा यदि माता-पिता ही बच्चों को प्रेम करने की कला सिखाएँ।'

प्रेम का स्वरूप

अनेक लोगों का विचार है कि प्रेम एक भावनात्मक उत्तेजना या पुरुष तथा नारी के बीच दैहिक आकर्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं

है। पर दैहिक आकर्षण से अलग करके ही हमें सच्चे प्रेम के स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए। केवल तभी हम इसकी विराट् शक्ति तथा महान प्रभाव को महसूस कर सकते हैं।

एडलाइ स्टीवेंसन कहते हैं, 'प्रेम का अर्थ भावुकता या अधिकारपूर्ण भावना नहीं है, अपितु दूसरों के वैशिष्ट्यों की सतत पहचान और निरन्तर उनके भले की कामना है।'

उस गरीबों की बस्ती के बच्चों के प्रति शीला रौरके का प्रेम इसी कोटि का है। उन्होंने हर छात्र का पर्याप्त ध्यान रखते हुए उसकी रुचि, पृष्ठभूमि, सामर्थ्य तथा कमियों का ख्याल करके, उनके विकास हेतु अपेक्षित उपायों के बारे में विचार किया था। एक वाक्य में कहें तो वे अपने प्रत्येक छात्र को समझने में समर्थ थीं। उन्होंने उनके सर्वांगीण विकास की आवश्यकता को पूरा करने के लिए उनके सुखों तथा दुःखों में हिस्सा बँटाने का प्रयास किया था। वे विद्यार्थियों से प्रेम तो करती थीं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें मनमाने ढंग से कुछ भी करने की छूट मिल गयी थी। छात्रों द्वारा शरारत की लक्ष्मण-रेखा पार करने पर उन्होंने अपनी छड़ी का सहारा भी लिया था। परन्तु जिस प्रकार उन्होंने छात्रों की भूलों के लिए उन्हें सजा दी, ठीक उसी प्रकार उनकी विशेष उपलब्धियों तथा प्रतिभा के लिए उनकी प्रशंसा की और उन्हें प्रोत्साहित किया। उनकी कल्याण-कामना के अलावा अन्य कोई भी विचार न रखकर उन्होंने उन्हें शिष्ट व्यक्ति बनाने के लिए दीर्घ काल तक कठोर प्रयत्न किया था। वस्तुतः यदि वे प्राप्त होनेवाले वेतन के बदले अपेक्षित न्यूनतम कर्तव्य ही निभाती रहतीं, तो भी कोई उन पर दोषारोपण नहीं करता। उनकी सद्भावनाओं तथा भले इरादों को समझ पाने में अक्षम लोग शायद व्यंग्यपूर्वक कहते थे, 'वह इन मूर्खों के लिए इतना कष्ट क्यों मोल लेती हैं? लगता है उसे करने को घर पर कोई बेहतर कार्य नहीं है। नहीं तो भला कौन इन

शैतानों को सुधारने की चेष्टा में लगेगा? या इससे कहीं उसे कोई और लाभ तो नहीं मिलता?’

परन्तु यही प्रेम की शक्ति है। प्रिय व्यक्ति के लिए की गई सेवा और त्याग दूसरों को आवश्यकता से अधिक लग सकता है। पर बीमारी और दर्द से बच्चे के चिल्लाते रहने पर क्या कोई माँ शान्तिपूर्वक सो सकती है? वह निद्रा त्यागकर, किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना करके बच्चे को स्वस्थ करने के लिए उसकी सेवा करती है। इसी प्रेम के कारण मनुष्य अपने शैशवकाल की असहाय अवस्था में भी जीवित रह पाने में समर्थ होता है। प्रेम की यही अभिव्यक्ति बच्चों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास का भाव ला देती है और उन्हें महान व्यक्तियों के रूप में विकसित होने में मदद करती है। शीला रौरके उन अभागे बच्चों के प्रति जो शुद्ध तथा निःस्वार्थ प्रेम अर्पित करने में समर्थ हुई, उसी के फलस्वरूप अन्ततः वे बालक अपने पैरों पर खड़े होकर अच्छा जीवन बिताने के योग्य हुए थे। शायद अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि ‘मैंने हर बच्चे को प्यार किया!’ – शीला के इस अत्यन्त साधारण कथन के मर्म में निःस्वार्थता तथा सेवा-भावना की एक कैसी मिसाल छिपी है! तुम्हारे भीतर भी प्रेम का स्रोत उमड़ना चाहिए। चलो, हम भी प्रेम के लिए बलिदान होना सीख लें। चलो, हम भी सेवा के आदर्श के प्रति लगाव तथा यथार्थ प्रेम का विकास करें।

तुम्हारा आदर्श

तुम भी लोकप्रिय होना चाहते होगे, पर तुम्हें कोई उपाय नजर नहीं आता। उपाय है। लोगों के विशेष गुणों तथा क्षमताओं को पहचानकर, क्या तुम उनकी प्रशंसा करके, निश्छल भाव से आनन्दित हो सकते हो? क्या तुम उन्हें प्रोत्साहन दे सकते हो? क्या

तुम उनकी भलाई के उपायों पर चिन्तन कर सकते हो? क्या तुम उनकी समृद्धि के लिए प्रार्थना कर सकते हो? दूसरे शब्दों में, क्या तुम उन्हें अपना निःस्वार्थ प्रेम प्रदान कर सकते हो? यदि ऐसा है, तो निश्चय ही तुम भी लोगों का प्रेम हासिल कर सकते हो।

क्या तुम एक विद्वान या महान चिन्तक बनना चाहते हो? इसके लिए तुम्हें अपने पाठ्य विषय के प्रति प्रगाढ़ प्रेम विकसित करना होगा। एक बार अपने चुने हुए विषय के प्रति तीव्र प्रेम का विकास हो जाने पर तुम स्वयं देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख नये क्षितिज और नये विचार क्रमशः खुलते ही जा रहे हैं।

क्या तुम स्वस्थ और सबल होना चाहते हो? इसके लिए अपने आसपास के लोगों को प्रेम तथा स्नेह की दृष्टि से देखो। सम्पूर्ण प्रकृति, वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं के प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि रखो। इसका तुम्हारे मन तथा रक्त-कोशिकाओं पर स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव होगा। यदि तुम घृणाभाव का पोषण तथा प्रसार करोगे, तो तुम्हारा शरीर और मन विषाक्त हो जाएँगे।

हाँ, केवल प्रेम खून में सर्वाधिक हितकर और स्वास्थ्यकर रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न करता है। जीवन को एक सुखमय जीवन-यात्रा बना लेने के आदर्श मार्ग के विषय में क्या अब भी तुम्हारे मन में सन्देह है?

प्रेम की विजय

अपने सुन्दर ग्रन्थ 'प्रेम की शक्तियाँ' में प्रिट्रिम सोरोकिन कहते हैं, 'निस्वार्थ प्रेम में अत्यधिक - अधिकांश लोगों की कल्पना से भी अधिक - रचनात्मक तथा आरोग्यकारी क्षमताएँ होती हैं। प्रेम शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी एक संजीवनी शक्ति है। परोपकारी लोग अहंकारी लोगों की अपेक्षा अधिक दीर्घायु

होते हैं। स्नेह से वंचित बच्चे जीवन-शक्ति, नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी क्षीण हो जाते हैं। अपराधी, रुग्ण तथा आत्मघाती प्रवृत्तियों और घृणा, भय तथा स्नायु-रोगों के लिए प्रेम सर्वाधिक सबल प्रतिरोधक है। गहन तथा स्थायी सुख के लिए यह एक अपरिहार्य साधन है। यह अच्छाई तथा स्वाधीनता का सर्वोच्च रूप है। मानवता के उत्कर्ष हेतु यह सर्वश्रेष्ठ और सर्वसमर्थ शिक्षापरक शक्ति है। सभी मनुष्यों के प्रति समर्पित अपार प्रेम की शक्ति ही इस धरा के अन्तर्मानवीय संघर्षों पर विजय पा सकती है और मानव द्वारा मानव की आगामी परीक्षाओं को रोक सकती है। प्रेम के बिना कोई भी शस्त्रीकरण, युद्ध, कूटनीतिक चालें, उत्पीड़क पुलिस बल, विद्यालयीय शिक्षा, आर्थिक या राजनीतिक उपाय और हाइड्रोजन बम तक, आसन्न अनर्थ को नहीं रोक सकते। यह चमत्कार तो बस प्रेम ही कर सकता है, बशर्ते हम उसके स्वरूप को ठीक-ठीक जान लें और उसके उत्पादन, संचय तथा उपयोग के सक्षम उपायों से भी परिचित हो जाएँ।'

प्रेम अमृतस्वरूप है। देखने में आया है कि इसमें शारीरिक और मानसिक विकारों के उपचार की भी शक्ति विद्यमान है। मन में घृणा का भाव रखनेवाला व्यक्ति न केवल अपना मानसिक सन्तुलन खोता है, अपितु अपने जीवन और स्वास्थ्य को भी क्षति पहुँचाता है। दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति तथा मैत्रीभाव न केवल व्यक्ति को मानसिक शान्ति कायम रखने में मदद करते हैं, अपितु ये एक सन्तुलित दृष्टिकोण भी पैदा करते हैं। इन गुणों से युक्त व्यक्ति, हर तरह की परिस्थिति में शान्ति और आनन्द का अनुभव करेगा।

बालकों के विकास के लिए मातृसुलभ प्रेम बहुत जरूरी है। सच्चे प्रेम से वंचित होनेवाले बालक उसी तरह बीमार हो जाते हैं जिस तरह संक्रामक रोग, क्षुधा या असन्तुलित आहार के कारण हो सकते हैं। इस विषय में रेने ए. स्पिट्ज ने हाल ही में शोध किया है।

उन्होंने एक अनाथालय में ३४ लावारिस शिशुओं की मृत्यु को फिल्माते हुए उसकी रिपोर्ट तैयार की। अनाथालय में उन शिशुओं को मातृप्रेम के अलावा हर तरह की देखभाल तथा सुविधाएँ उपलब्ध थीं। मातृप्रेम का अभाव ही उनकी मृत्यु का कारण सिद्ध हुआ। डॉ. स्पिट्ज ने बच्चों की प्राणशक्ति के निस्तेज होने की पूरी प्रक्रिया का फिल्मांकन किया था। अपने माता-पिता से वियोग के तीन महीने बाद शिशुओं की भूख चली गई, उन्हें ठीक से नींद नहीं आती थी और वे सिकुड़े, काँपते तथा रोते रहते थे। दो महीने और बीतने पर वे जड़बुद्धि प्रतीत होने लगे। जन्म के पहले वर्ष में २७ और दूसरे वर्ष में ७ लावारिस शिशुओं की मृत्यु हो गई। २१ शिशु ही बचे रहे, पर वे भी इतने बदल गए कि बाद में उन्हें 'जड़बुद्धि' की श्रेणी में ही रखा जा सकता था।

मानसिक तथा नैतिक विकारों के इलाज और उनकी रोकथाम में प्रेम की आरोग्यदायी शक्ति विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। नवजात शिशुओं के नैतिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ मनुष्यों के रूप में विकास होने के लिए प्रेम का आदान और प्रदान दोनों ही अत्यन्त आवश्यक हैं। प्रेम न केवल व्यक्ति के मन तथा शारीरिक अवयवों का उपचार करके उसे स्फूर्ति प्रदान करता है, अपितु यह उसके विकास और मानसिक, नैतिक, हार्दिक तथा सामाजिक समृद्धि का एक निर्णायक तत्त्व भी सिद्ध होता है। ... प्रेम करना और प्रेम प्राप्त करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'विटामिन' का काम करते हैं और ये व्यक्ति के सम्यक् विकास तथा सुखमय जीवन के लिए अपरिहार्य हैं।

सेवा की भावना

बहुत-से लोग प्रेम तथा लगन के साथ अपने प्रियजनों की सेवा करते हैं; परन्तु कभी-कभी सेवा करनेवाला अपने सेव्य पर अधिकार

का भाव रखते हुए, उसे सर्वदा स्वयं पर आश्रित रखने का प्रयास कर सकता है। प्रेम के नाम पर वह उस पर बल का प्रयोग करते हुए उसके शोषण का प्रयास कर सकता है। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संकेत दे सकता है कि 'मेरी सेवा के बिना तुम असहाय होते'। वह यह भी कह सकता है कि 'मेरी सेवा का मुझे कोई प्रतिदान नहीं मिला'। वह सेवा के लिए बारम्बार धन्यवाद ज्ञापन की अपेक्षा रख सकता है। वैसे इस प्रकार अपनी सेवा के ज्ञापन की अपेक्षा रखनेवाले, कम-से-कम उन लोगों से तो बेहतर ही हैं, जो घोर स्वार्थी हैं और सहायता करने से ही साफ मना कर देते हैं। परन्तु ऐसी सेवा विशुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम का द्योतक नहीं है। इसे निःस्वार्थ प्रेम की ओर बढ़ने का एक कदम मात्र ही कहा जा सकता है। परन्तु हर कोई उस अवस्था तक नहीं पहुँच पाता।

प्रेमपात्र की स्वाधीनता तथा स्वाभिमान पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ही सच्चा प्रेम अभिव्यक्त होता है। वह किसी प्रतिदान की माँग नहीं करता। आध्यात्मिक मनोभाव से युक्त तथा मातृत्व के आदर्श को स्वीकार करनेवाली एक माता प्रेम के निःस्वार्थ तथा दैवी गुण का दृष्टान्त प्रस्तुत करती है।

आत्मीयता की सीमाएँ

सत्यभामा ने एक बार द्रौपदी से पूछा, 'आप किस प्रकार अपने पतियों को वश में रखती हैं? अपने पति श्रीकृष्ण को वश में करने के लिए मैं भी वही उपाय अपनाना चाहती हूँ।' द्रौपदी जानती थीं कि कृष्ण तो पहले से ही सत्यभामा के वश में हैं। तथापि द्रौपदी ने उसे अपने पाँचों पतियों से प्राप्त प्रेम का रहस्य समझाते हुए कहा, 'मेरे पाँचों पति सौम्य, सत्यनिष्ठ तथा सदगुणी हैं, पर मैं उनकी निरन्तर इस प्रकार सेवा करती हूँ मानो वे निर्दयी तथा क्रोधी हों। मैं उनकी अच्छाई

पर निर्भर नहीं करती। उनकी जरूरतों की पूर्ति में मैं निरन्तर सजग तथा सावधान रहती हूँ। स्त्री के लिए उसका पति ही सर्वस्व है; वही साक्षात् ईश्वर तथा एकमात्र ध्येय है। अपने पति के प्रति निष्ठा रखना ही स्त्री की एकमात्र धर्म-साधना है। मैं बड़ों के प्रति भी श्रद्धा तथा सम्मान का भाव रखती हूँ। मैं अपनी सास को बहुत आदर की दृष्टि से देखती हूँ। मैं उनके स्नान, भोजन, वस्त्र आदि दैनिक जरूरतों का ध्यान रखती हूँ। उनके भोजन या विश्राम के पूर्व मैं स्वयं भोजन या विश्राम नहीं करती। मैं उन्हें धरती माता समझकर उनकी पूजा करती हूँ। महल में जब अतिथि के रूप में हजारों विद्वान तथा महात्मा आते थे, तो मैं उनमें से प्रत्येक के आतिथ्य की निगरानी करती थी। महल में हजारों दासियाँ थी, पर मैं उनमें से प्रत्येक को नाम से जानती थी। मैं उनकी जरूरतों, कठिनाइयों और समस्याओं से परिचित थी। मैं युधिष्ठिर की घुड़साल के हजारों घोड़ों के रख-रखाव की व्यवस्था करती थी। मेरे पतियों ने घरेलू मामलों का भार मेरे ऊपर छोड़ दिया था और स्वयं अपने प्रशासनिक कर्तव्यों में मनोনিयोग किया था। सभी जिम्मेदारियों को पूरा कर पाना सहज नहीं था, परन्तु मैं चुनौतियों के सामने हथियार डालना पसन्द नहीं करती। दिन-रात परिश्रम करके मैंने सब कुछ सँभाल लिया। प्रातःकाल बाकी लोगों के उठने के पहले ही मैं उठ जाती थी और सबके सो जाने पर ही मैं सोने जाती थी। अपने पतियों का प्रेम जीतने के लिए मैंने यही सब किया था।'

यद्यपि सत्यभामा श्रीकृष्ण से अत्यधिक प्रेम करती थीं, परन्तु आत्मीयता के कारण कभी-कभार वे उनकी उपेक्षा कर बैठती थीं। द्रौपदी के उपदेशों ने उन्हें उनकी त्रुटियों का बोध कराकर उनमें परिवर्तन ला दिया।

अतः यह ध्यान रखना होगा कि प्रेम तथा आत्मीयता के फलस्वरूप कहीं उपेक्षा का भाव न आ जाए।

प्रेम की दुर्लभता

स्वार्थपरता के कारण इस जगत में शुद्ध या निश्छल प्रेम एक दुर्लभ गुण बनकर रह गया है। स्वार्थपरता ने धनी-गरीब, विद्वान-अपढ़ - सबको वशीभूत कर रखा है। इसने झोपड़ी तथा महल के निवासियों के बीच का भेद मिटा दिया है। यह जाति, धर्म या सम्प्रदाय का भेद भी नहीं मानती। इस संसार में जब तक निःस्वार्थ प्रेम पुनः स्थापित नहीं हो जाता, तब तक मानव-जाति शान्ति और सन्तोष का आस्वादन नहीं कर सकती। एक बड़े शिक्षा-संस्थान के सचिव का मार्मिक अनुभव इस प्रकार है - 'नौ वर्ष का एक बालक दूसरी कक्षा में पढ़ रहा था। वह अपने सहपाठियों, विशेषकर बालिकाओं से पैसे माँगा करता था। कभी तो वह भद्र व्यवहार करता, परन्तु कभी-कभी धमकियाँ देकर भी वह पैसे ऐंठ लेता था। हर दिन वह पाँच से लेकर पच्चीस पैसे तक उधार माँग लेता। वह वादा करता, "माँ के घर लौटते ही, मैं पैसे लौटा दूँगा।" बच्चों के माता-पिता ने बालक के उक्त अपराध के बारे में प्रधानाध्यापिका से शिकायत की। प्रधानाध्यापिका तथा कक्षाध्यापक उस बालक को लेकर मेरे पास आए और उसके दुर्व्यवहार का विवरण देने लगे। किसी कठोर शब्द का प्रयोग किए बिना ही मैंने बालक से बातचीत की। बालक ने निःसंकोच भाव से तथा साहसपूर्वक कहा, "सुबह मुझे घर में कुछ खाने को नहीं मिलता, इसलिए मैं कुछ खरीदने के लिए उनसे पैसे माँगता हूँ।" उस बालक के अभिभावकों ने उसे विद्यालय के निःशुल्क जलपान को ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी थी। उसके पिता सिंगापुर में थे। उसकी माँ का देहान्त एक वर्ष पूर्व हो चुका था, परन्तु बालक को इसकी सूचना नहीं दी गई थी। वह उस दिन की बाट जोह रहा था, जब उसकी माँ आकर उसे प्रेम न करनेवाले इन

अभिभावकों के चंगुल से छुड़ा लेगी। उसके साथ देर तक बातें करने के बाद मैंने कहा, “तुम्हें किसी से पैसा माँगने या उधार लेने की जरूरत नहीं है। विद्यालय में ही हम तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर देंगे और तुम्हें पुस्तकें तथा पेंसिलें भी देंगे। चिन्ता मत करो। तुम्हें और क्या चाहिए?” इतना जिद्दी और हठी-सा दिखनेवाला वह बालक सिसकते हुए कहने लगा, “मुझे मेरी माँ चाहिए। मुझे मेरी माँ दिला दीजिए। मैं अपनी माँ से मिलूँगा।” शोकार्त बालक की सिसकियाँ सुनकर हम लोग भी बड़ी मुश्किल से अपने आँसू रोक पा रहे थे। हमने उसे निकट बुलाकर दिलासा दी और माँ सारदा देवी का एक चित्र देकर कहा, “इन्हीं को अपनी माँ समझकर इनसे प्रार्थना करो। ये तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगी।” बालक शान्त होता-सा लगा। परन्तु अगले दिन से उसने विद्यालय आना बन्द कर दिया। उसके अभिभावक यह जानने आए कि विद्यालय में क्या बातचीत हुई थी और उसका स्थानान्तरण प्रमाणपत्र (टी.सी.) ले जाकर किसी अन्य विद्यालय में उसका दाखिल करा दिया। सच्चे निःस्वार्थ प्रेम की बात तो छोड़िए, वह बालक सामान्य प्रेम से भी वञ्चित था।

पिता के प्रेम से वञ्चित एक बालिका ने अपनी माँ के प्रति सहानुभूति के स्वर में कहा था, ‘यदि मैं अपनी माँ के स्थान पर होती, तो अपने पति को उनके भाग्य के भरोसे छोड़कर चली गई होती।’ इस घटना की पृष्ठभूमि इस प्रकार है – उनका एक सम्भ्रान्त परिवार था, जिसमें रिश्तेदारों तथा सहायकों की कोई कमी नहीं थी। उनकी आर्थिक स्थिति भी बुरी न थी। परन्तु उक्त बातें सुनानेवाली बालिका के पिता शराबी थे और मद्यपान करके रात को देर से घर लौटने के बाद छोटी-मोटी बातों पर अपनी पत्नी से झगड़ा तथा गाली-गलौज करते और उसे मारा-पीटा करते थे। छोटी आयु की वह बालिका कच्ची नींद से जागकर आतंकित भाव से अपने पिता की क्रूरता और

माँ की पीड़ा को देखती थी। थोड़ी देर बाद वह भी माँ के साथ रोते हुए थककर सो जाती थी। केवल स्कूल में ही वह अपने पिता के विरुद्ध बोलने को स्वतंत्र थी। कुल मिलाकर, घर के परिवेश ने एक ओर तो उसमें आतंक और दूसरी ओर पुरुष वर्ग के प्रति घृणा का भाव भर दिया था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इससे उसके व्यक्तित्व पर बड़ा प्रतिकूल असर पड़ा।

मदर टेरेसा कहती हैं, 'सेवा के क्षेत्र में लोगों के साथ बीस वर्षों तक कार्य करने के बाद एक बात मेरे लिए स्पष्ट हो गई है। किसी व्यक्ति के लिए सबसे अपमानजनक पीड़ा का भाव है, "मुझे कोई नहीं चाहता"। हमने कुष्ठरोग की दवाइयाँ ढूँढ़ ली हैं, तपेदिक का भी इलाज उपलब्ध है और बहुत-से लोग चिकित्सा के बाद स्वस्थ भी हो चुके हैं। सैकड़ों अन्य रोगों की दवाइयाँ ढूँढ़ी जा चुकी हैं, पर प्रेम से वंचित होने के रोग का इलाज कहाँ है? प्रेम से परिपूर्ण हृदय तथा सेवा को तत्पर हाथ ही प्रेम से वंचित होने की व्याधि को दूर कर सकते हैं।'।

घर के बड़े-बूढ़ों या सगों के प्रेम से वंचित होने का दुर्भाग्य झेल रहे लोगों के दुःख को कौन मिटा सकता है? किसी को प्रेमभरी दृष्टि से देखने के लिए कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। वस्तुतः हर व्यक्ति के पास प्रेम का अक्षय भण्डार है। प्रेम देनेवाले और प्रेम पानेवाले लोग धन्य हैं। दोनों ही सुख और सन्तोष की अनुभूति करते हैं। प्रेमी और प्रेमपात्र – दोनों के हृदय खिल उठते हैं। परन्तु यह एक विचित्र बात है कि इस सामान्य प्रेम का दान करनेवाले लोग भी कम ही हैं। सियारामशरण गुप्त कहते हैं, 'अरे प्यार का प्याला रहते, भाया तो क्यों जहर तुम्हें?' इसका कारण अज्ञान और उचित प्रशिक्षण का अभाव है। सामान्य तथा सच्चे आध्यात्मिक प्रेम – दोनों ही न जाननेवाला व्यक्ति भला कैसे दूसरों को प्रेम के महत्त्व का उपदेश दे

सकता है? पर एक बात निश्चित है – सच्चे प्रेम का उदय होने पर हृदय की दुर्बलताएँ तथा अन्य सभी दुर्गुण तिरोहित हो जाते हैं और प्रेम का बन्धन सुदृढ़ होता जाता है ।

प्रेम की शक्ति

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, 'सारा संसार विशुद्ध प्रेम पाने को व्याकुल है । बदले में कुछ पाने की आशा रखे बिना ही हमें इस प्रेम का वितरण करना चाहिए । वापस पाने की कोई इच्छा किए बिना ही इसे अर्पित करो ।

'प्रेम कभी निष्फल नहीं होता; कल हो या परसों या युगों के बाद, पर प्रेम की विजय अवश्य होगी । प्रेम ही मैदान जीतेगा । क्या तुम अपने भाइयों से प्रेम करते हो? समाचार-पत्रों में क्या छपता है और क्या नहीं, मैं कभी इसकी परवाह नहीं करता । प्रेम की असाध्य-साधिनी शक्ति पर विश्वास करो । यदि तुम्हारे पास निःस्वार्थ प्रेम है, तो तुम सर्व-शक्तिमान हो ।'

सत्य हम सब में एकता का संचार करता है । प्रेम ही सत्य है; घृणा असत्य है । घृणा हमें बाँटकर हमारे बीच शत्रुता उत्पन्न करती है । यह मनुष्यों को मनुष्यों से अलग-थलग कर देती है । इसलिए यह दोषपूर्ण और मिथ्या है । घृणा एक विनाशकारी शक्ति है । प्रेम एकीकरण की शक्ति है । प्रेम लोगों को एक साथ आबद्ध रखता है । माँ, बालक, परिवार, नगर, पूरा संसार और पशु – सभी प्रेम से ही आबद्ध रहते हैं । प्रेम ही जीवन के सामंजस्य की संचालक शक्ति है ।

प्रेम का स्पन्दन

एक सत्य घटना इस प्रकार है । भारत में रहनेवाले एक दम्पति का इकलौता पुत्र अमेरिका में एक प्रख्यात चिकित्सक था । वहाँ उसने

काफी नाम-यश कमाया। परन्तु दुर्भाग्यवश उसके तथा उसकी पत्नी के बीच मतभेद पैदा हो गए। जीवन से निराश होकर उसने खुद को गोली मार ली। उसी दिन उसकी माँ ने स्वप्न देखा कि उसका पुत्र खून से लथपथ मरा पड़ा है। जागने के बाद उसका मन बड़ा बेचैन हो गया। अगले दिन उसे टेलीफोन से इस दुःखद घटना की सूचना मिली। माँ का हृदय करुणा एवं विषाद से पूर्ण हो उठा।

किसी पुत्र का दुर्भाग्य दूर स्थित माँ के हृदय को प्रभावित कर दे – इसका यह एकमात्र उदाहरण नहीं है। ऐसे असंख्य उदाहरण मिले हैं। रूस में इस विषय पर अनेक प्रयोग हुए हैं। प्रेम का स्पन्दन तरंग की भाँति चलकर अपने प्रियजन के हृदय को स्पर्श करता है तथा उन्हें प्रभावित करता है।

वैज्ञानिकों का अज्ञान

विद्युत्, अणुशक्ति, तापीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा आदि क्षेत्रों में अपनी खोजों तथा आविष्कारों के द्वारा वैज्ञानिकों ने संसार का नक्शा ही बदल दिया है। यदि उन्होंने निःस्वार्थ प्रेम की शक्ति को समझने के लिए प्रयोग करके पूरे संसार में इसके उत्पादन, संग्रहण तथा वितरण हेतु उपायों की खोज की होती, तो यह पृथ्वी के लिए महान वरदान सिद्ध होता और इसे स्वर्ग बना देता। वैज्ञानिक प्रवृत्तिवाले बुद्धिवादी पहले कहा करते थे कि निःस्वार्थ प्रेम की शक्ति का प्रयोग केवल धर्मोपदेशक ही कर सकते हैं। वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया था। पिट्रिम सोरोकिन कहते हैं, 'युद्ध के पूर्व का विज्ञान सन्तों की अपेक्षा अपराधियों, बुद्धिमानों की अपेक्षा विक्षिप्तों, परस्परिक सहायता की अपेक्षा अस्तित्व के लिए संघर्ष और सहानुभूति एवं प्रेम की अपेक्षा घृणा तथा स्वार्थपरता के अध्ययन में ज्यादा रुचि लेता था।'

दो विश्वयुद्धों ने संसार भर के लोगों को विध्वस्त कर डाला। उन दिनों कई देश शान्ति-स्थापना का मुखौटा लगाए युद्ध की तैयारी कर रहे थे। स्वार्थपरता, यथेच्छाचार, इन्द्रियपरता, लोभ और विद्वेषपूर्ण प्रतियोगिता के कारण समाज रुग्ण होकर विनाशोन्मुख हो गया है। पिट्रिम सोरोकिन के मतानुसार लोगों में निःस्वार्थ प्रेम बढ़ाने और सहयोग तथा सद्भाव का संचार करने के उपायों की खोज करना आवश्यक है। इससे लोगों को शान्ति और सामंजस्यपूर्ण जीवन बिताने तथा समाज से हिंसा, आतंकवाद तथा हत्या की प्रवृत्तियों को दूर करने की प्रेरणा मिलेगी। उनका पूर्ण विश्वास था कि गोले-बारूद तथा युद्धोपकरणों पर खर्च किए गए संसाधनों का केवल एक अंश भी यदि निःस्वार्थ प्रेम के उन्नयन हेतु शोध पर व्यय किया जाता, तो इससे संसार का काफी लाभ हुआ होता। यदि मनुष्य निःस्वार्थ प्रेम की उपयोगिता का अनुभव कर ले, तो हर व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में घृणा, ईर्ष्या और निकृष्ट स्वार्थपरता से मुक्त होकर विशुद्ध प्रेम का आचरण करके अपने आसपास के लोगों तथा स्वयं को भी सुखी बना सकता है। यह विशुद्ध प्रेम आसन्न विनाश के खतरे से पृथ्वी की रक्षा करेगा।

प्रेम का जादू

हम अनन्त काल तक इस बात की प्रतीक्षा नहीं कर सकते कि कब वैज्ञानिकगण रुचि लेकर मानवता पर प्रेम के प्रभाव के विषय में अपने निष्कर्ष को प्रकाशित करेंगे! मनो-दैहिक रोगों के विषय में शोधों से यह पहले ही ज्ञात हो चुका है कि घृणा हानिप्रद तथा प्रेम हितकर है। घृणा, ईर्ष्या, गर्व, चिन्ता, शंका, प्रतिशोध की भावना आदि दुर्गुण हमारे स्वास्थ्य को घोर क्षति पहुँचानेवाले विष हैं। प्रेम न केवल शारीरिक स्वास्थ्य, अपितु नैतिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य को

बनाए रखने के लिए भी जरूरी है। जॉन हन्टर नामक एक प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक किसी हृदय-रोग से पीड़ित थे। एक बार उन्होंने कहा, 'मुझे क्रोध दिला पानेवाले व्यक्ति में मेरे प्राण तक लेने की क्षमता है।' उनका अभिप्राय था कि क्रोध का आवेश आने पर उनकी हृदयाघात से मृत्यु हो सकती थी। और वे इसी प्रकार हृदयाघात से ही मरे भी। यदि व्यक्ति को ज्ञात हो जाए कि दुर्भावनाएँ उसे नष्ट करने जा रही हैं, तो वह उनसे बचने का प्रयास करेगा। कोई चीज व्यक्तिगत, नैतिक तथा सामाजिक तौर पर भली होने पर भी क्या राजनीतिक रूप से हानिकर हो सकती है? आज सामाजिक विकास के प्रति चिन्तित रहने का दावा करनेवाले हमारे राजनीतिज्ञ, बुद्धिवादी और क्रान्तिकारी लोग दलगत स्वार्थ के लिए जनता में आपसी घृणाभाव का विष फैलाने में लगे हैं। क्रान्ति के नाम पर वे समाज में घृणा का बीजारोपण करते हैं। बोलने की स्वतंत्रता के नाम पर रचनात्मक आलोचना का मुखौटा लगाकर वे अपने विचारों से असहमत लोगों के चरित्र-हनन का सहारा लेते हैं। वे झूठ, संघर्ष और झूठी निन्दा की परम्परा शुरू करते हैं। समाज-सुधारकों के छद्मवेश में वे सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करते रहते हैं।

लोगों को इस दूषित परिवेश से बाहर निकालने के लिए उनमें बचपन से ही प्रेम की महत्ता के प्रति विश्वास पैदा करने और प्रेम की सबल भावना जाग्रत करने की जरूरत है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विशुद्ध प्रेम को प्रकट करने के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

अच्छा होता कि अधिकार या सत्ता की आकांक्षा से मुक्त देशभक्तों का एक दल बनाया जाता, जो समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करके प्रेम के सन्देश का प्रचार-प्रसार करता। वस्तुतः यह धर्मप्राण लोगों का कार्य है। पर खेद की बात यह है कि

वे भी परस्पर झगड़ रहे हैं। 'Edgar Caycee's Story of Attitudes and Emotions' ('एडगर कैसी के दृष्टिकोणों एवं भावनाओं की कथा') नामक पुस्तक में जेफरी फर्स्ट की इन बातों पर ध्यान दें - 'जीव-विज्ञान, स्वास्थ्य, आरोग्य तथा यौन आदि विषयों पर कक्षाएँ लेने के बाद मुझे लगता है कि मुझे इन विषयों पर कुछ जानकारी प्राप्त हुई है। मेरा मत है कि यदि पिछले दो सौ वर्षों के दौरान, पहली कक्षा से लेकर कॉलेज तक में, हमारे देश के बच्चों तथा युवकों के समक्ष व्यावहारिक पाठ्यक्रमों के रूप में निष्काम प्रेम के सभी पहलुओं को रखा गया होता, तो आज सामाजिक, राजनैतिक तथा जातीय सम्बन्धों में प्रकट होनेवाली समस्याओं में से अधिकांश का हमें सामना ही नहीं करना पड़ता।'।

निःस्वार्थता की कसौटी

स्वामी विवेकानन्द अपने 'कर्मयोग' शीर्षक व्याख्यान में निःस्वार्थता को ईश्वर के रूप में प्रतिपादित करते हैं। वे बताते हैं कि निःस्वार्थता का गुण व्यक्ति को दिव्यता के स्तर तक उठा देता है। दिव्यता मानवीय पूर्णता की अवस्था है और इसे प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। 'मातृदेवो भव' - 'माँ को देवता मानो' - यह एक बहु-प्रचारित वेदवाक्य है। एक माँ की निःस्वार्थता से भला कौन अपरिचित है? वह अपनी सुख-सुविधा को भुलाकर सन्तानों की देखभाल करती है और मौका आने पर अपने बच्चों की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति तक दे डालने में संकोच नहीं करती। इस प्रकार प्रेमपात्र के हितार्थ श्रम करना प्रेम का एक पक्ष है। निःस्वार्थ प्रेम की साकार मूर्ति - एक माँ - की सेवा तथा बलिदान की भावना के द्वारा ही असंख्य प्राणी शैशव और बचपन की असहाय अवस्था से उबरते हैं। ऐसे निःस्वार्थ प्रेम की अभिव्यक्ति से ही मातृत्व सफल और

सन्तुष्ट होता है। माता अपने बच्चे को किलकारियाँ भरते देखकर ही सन्तुष्ट हो जाती है। माँ की निरन्तर यही इच्छा रहती है कि वह बच्चे की आनन्दपूर्ण क्रीड़ा को निहारती रहे। यह प्रेम माँ और बच्चे - दोनों के लिए ही सुखदायी है। बच्चे के लिए माँ का प्रेम सुरक्षा व आश्रय का स्रोत है। बच्चे के प्रेम के बिना कोई माँ सन्तुष्ट नहीं हो सकती। माँ के प्रेम का अनुभव किए बिना कोई भी बच्चा आत्मविश्वास या दूसरों में विश्वास का भाव नहीं प्राप्त कर सकता। मातृप्रेम का आस्वादन करके बच्चा कृतज्ञता से अभिभूत होकर माँ के साथ चिरस्थायी आत्मीयता में बँध जाता है। मातृत्व की भावना को आत्मसात् करनेवाली माँ में यह वात्सल्य-भाव विशेष रूप से अभिव्यक्त होता है। कभी-कभी हो सकता है कि यह निःस्वार्थ प्रेम अपने पूर्ण विकसित रूप में अभिव्यक्त न भी हो, तथापि हमें अपनी माता के प्रति आदर का भाव बनाए रखना चाहिए। हमें अपनी माँ के द्वारा प्रदर्शित प्रेम, मृदुता, करुणा और सेवा को कभी नहीं भूलना चाहिए। हम कभी अपनी माँ के प्रति कृतघ्न न हों। माँ का आदर करके हम सद्गुण-सम्पन्न बनेंगे और हमारा जीवन कृतार्थ हो जाएगा। इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने कहा था - 'मातृदेवो भव'। यदि माँ स्वार्थी हो जाए, तो उसके भयावह परिणाम की कल्पना करना सहज है। पाश्चात्य देशों में (वैसे तो सर्वत्र ही ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं) कुछ स्त्रियाँ बच्चों को जन्म देने तथा उनके पालन-पोषण के अनावश्यक झंझट में इसलिए नहीं पड़ना चाहती कि ऐसा करने से कहीं उनका सौन्दर्य घट न जाए। यहाँ तक कि विवाहित स्त्रियाँ भी गर्भधारण से आशंकित रहती हैं। ऐसी प्रामाणिक खबरें भी मिलती हैं, जिनमें माताएँ अपने बच्चों की चिल्लाहट तथा शरारतों से तंग आकर उन्हें कठोर दण्ड तक दे डालती हैं। इसके फलस्वरूप उनके बच्चों को आजीवन शारीरिक व मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ती है। होल्ट, रिचैंट

और विसटन 'Understanding Human Behaviour' ('मानवीय व्यवहार की समझ') नामक अपने ग्रन्थ में बताते हैं, 'अनेक महिलाएँ न तो अपनी सन्तानों से प्रेम करती हैं और न ही उनकी देखभाल करती हैं। और हम आगे देखेंगे कि प्रति वर्ष हजारों स्त्रियाँ अपने बच्चों का परित्याग, अंगभंग या हत्या तक कर डालती हैं। पिताओं की हालत तो प्रायः और भी बदतर है।' हम भलीभाँति कल्पना कर सकते हैं कि माताओं के स्वार्थी बन जाने और मातृत्व के आदर्श से च्युत हो जाने से समाज पर कैसा संकट छा सकता है।

प्रेम की विशुद्धता की जाँच करने के लिए निःस्वार्थता ही सच्ची कसौटी है। प्रकृति हमें माता के उदाहरण से निःस्वार्थता का पाठ पढ़ाती है। फिर मातृत्व की उच्च जिम्मेदारी प्रकृति ने ही स्त्रियों को सौंपी है। पर आज आधुनिक शिक्षा एवं मशीनी युग की सुविधाओं के कारण विकसित राष्ट्रों में स्वतंत्रता को अनैतिकता के लिए छूट मानने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। नारी-स्वातंत्र्य की धारणा मातृत्व के आदर्श की शत्रु होती जा रही है। स्त्री तथा पुरुष के बीच समानता की वकालत करनेवाले तथाकथित सुधारवादी लोग धार्मिक पृष्ठभूमि में निर्मित नियमों से होनेवाले अनेक लाभों को समझ ही नहीं पाते। धर्म के सभी निर्देश लोगों को क्रमशः निःस्वार्थता की सीढ़ियों पर चढ़ाते हुए दिव्यानन्द की ओर ही ले जाते हैं। इन आध्यात्मिक आदर्शों पर उचित ध्यान दिए बिना धर्म को बुरा करार देने से समाज विनाश की ओर ही जा सकता है।

माँ का भावुकतापूर्ण प्रेम

अपनी प्रौढ़ावस्था में एक वरिष्ठ अधिकारी ने अपनी माँ का स्मरण करते हुए कहा था, 'अपने सभी सगे-सम्बन्धियों तथा हम सब के लिए भी मेरी माँ दिव्य प्रेम का जीवन्त प्रतीक थीं। उनका नाम ही

‘कृपा’ था। मुझे विश्वास हो गया कि वे भगवत्कृपा का साक्षात् विग्रह थीं। उनका प्रेम कभी घटता नहीं था। वे अपने असीम आशावाद के साथ सदैव कठिनाइयों तथा आपदाओं का सामना करने को तैयार रहतीं। उनमें अपार धैर्य था और उन्होंने कभी प्रशंसा या साधुवाद की अपेक्षा नहीं की। ईश्वर तथा उनके मार्गदर्शन में मेरी माँ का विश्वास चट्टान की भाँति सुदृढ़ था। उनका व्यवहार आन्तरिक सन्तोष-भाव से युक्त रहता। मेरे मन में अंकित ये भाव परवर्ती दिनों में भी कभी मिट नहीं सके। उनके सदगुणों की स्मृतियाँ मुझे अभिभूत कर देती हैं। अपने जीवन के अन्तिम दो-एक वर्षों के दौरान उन्होंने पूर्ण अनासक्ति, सबके प्रति प्रेमभाव और सब कुछ सुस्पष्टतया देखने की अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके, स्वयं को एक सन्त के स्तर तक उन्नीत कर लिया था। उनकी उपस्थिति मात्र ही हम सबके लिए प्रेरणा का स्रोत थी। दूर-दराज के स्थानों पर कार्यरत रहते हुए भी हम लोग प्रतिवर्ष कम-से-कम कुछ दिन उनकी संगति में बिताने को आकुल हो उठते थे। बचपन में मैं उनके साथ प्रेम तथा आत्मीयता का बर्ताव किया करता था, परन्तु आज मैं उनके प्रति आदर और भक्तिभाव से नतमस्तक हूँ। क्या कोई परिवार एक ऐसी माता के उत्कृष्ट गुणों से प्रभावित हुए बिना रह सकता है?

प्रेम : पारिवारिक जीवन का प्राण

महल सदृश घरवाला, लोगों से भरा-पूरा एक धनी परिवार है। यहाँ किसी भी सुख-सुविधा की कमी नहीं है, परन्तु लोगों के मन असन्तोष और मनमुटाव की दरारों से विभाजित हैं। समृद्धि के बावजूद, उन्हें आपस में जोड़नेवाली शक्ति, प्रेम, का अभाव बना हुआ है।

परिवार का केवल मुखिया ही सुबह उठता है। नित्यकर्म के बाद वह एक कप चाय के लिए अपनी बीमार पत्नी को जगाने का प्रयास

करता है। बारम्बार प्रयास के बावजूद उसे जगाने में विफल होकर वह अपने भाग्य को कोसता हुआ खुद चाय बनाने लगता है। बड़बड़ाते हुए वह स्नान तथा नित्य-पूजा आदि सम्पन्न करने के बाद बिस्तर में सोये बच्चों को जगाने का प्रयास करता है। नींद का मजा किरकिरा हो जाने से वे लोग नाराज होकर भुनभुनाते हैं। ऐसा रोज होता है और यही दिन भर के अस्त-व्यस्त जीवन की शुरुआत है।

काम के लिए बाहर जाते समय वह बड़बड़ाते हुए कहता है, 'उफ ! यह काम करने जाना भी कैसी बेकार बात है।' अपने कर्म के प्रति उसकी निष्ठा नहीं है। विद्यालय में पढ़नेवाले इस घर के बच्चे तक इसके अपवाद नहीं हैं। वे अपने आचरण या व्यवहार में नहीं, अपितु केवल सजने-सँवरने में ही कुशल हैं। धन-सम्पत्ति में आकण्ठ डूबकर भी, लोभ की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण, वे उसका आनन्द नहीं ले पाते। परिवार के मुखिया समस्त सुखों की तिलांजली देकर भी अधिकाधिक धन-सम्पत्ति बटोर लेना चाहते हैं और बच्चे येन-केन-प्रकारेण उसे हथियाकर जीवन का पूरा सुख भोग लेना चाहते हैं। ग्राहकों के प्रति सदा मित्रता रखनेवाले कृपण पिता कभी अपने बच्चों के साथ प्रेम से बातें नहीं करते। बच्चों को चिल्लाकर पुकारना ही उनकी आदत है। बच्चे कभी उनमें विश्वास रखकर उनसे अपने मन की बातें नहीं कहते। आपसी समझदारी का सूत्र ही टूट गया है। हर कोई 'मैं, मेरा तथा मेरे द्वारा' का ही मंत्र जपता रहता है। अतः निरन्तर कलह और झगड़ा ही होता रहता है। घर का वातावरण क्रोध, कोलाहल, अविश्वास, अहसमति, ईर्ष्या तथा दुराव से भरा रहता है। घर के सदस्य अनबन और मतभेद से ग्रस्त रहते हैं। उनकी आपसी फूट और मतभेद से घर की सुख और शान्ति जा चुकी है।

घर में केवल सुख-सुविधा की सामग्रियाँ जुटाने मात्र से पारिवारिक जीवन में मेल-मिलाप और सामंजस्य नहीं स्थापित किया

जा सकता। मेल-मिलाप और सामंजस्य आपसी प्रेम के पके फल हैं। प्रेम के अभाव में पारिवारिक जीवन का सार ही खो जाता है। मानो सजे-धजे शरीर में प्राण ही न हों।

एक दूसरा परिवार भी है। इसमें गरीबी का साम्राज्य है। मकान जीर्ण-शीर्ण है। कपड़े फटे-चिथड़े हैं। परन्तु सब कुछ साफ-सुथरा है। एक दिन भी काम न मिलने पर सबके भूखे रहने की आशंका है। परन्तु यहाँ रंच मात्र भी असन्तोष या अनबन नहीं है। हर व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कान है। मेल-मिलाप से रहने का भाव प्रबल है। प्रेम ने इन सभी सदस्यों को एक सूत्र में पिरो रखा है।

पिता रसोइया है और माता मसाले पीसकर तथा इसी तरह के अन्य कार्य करके उनकी सहायता करती है। बड़े सबेरे वे अपने घरेलू कार्यों को पूरा करके काम पर निकल पड़ते हैं। बच्चों के भी बड़े सबेरे ही उठ जाने के कारण उन्हें काम के लिए घर से निकलने में कभी देर नहीं होती। आंगन की सफाई तथा घर की सजावट, घर के उपयोग तथा आंगन में लगे फूल के पौधों के लिए कुएँ से पानी लाना, पशुओं की देखभाल – सभी कार्यों में बच्चे भी हाथ बँटाते हैं और उन्हें समय से पूरा कर लेते हैं। घर के सभी सदस्य प्रार्थना के समय एकत्र हो जाते हैं। नाश्ते के समय वे पुनः साधारण-सी दो सूखी रोटियाँ खाने के लिए जमा होते हैं।

माता-पिता के बाहर जाकर कठिन परिश्रम करते समय, घर की जिम्मेदारी बच्चे ही सँभालते हैं। बड़े बच्चे छोटों को भोजन कराते हैं। उनके विद्यालय जाने के वस्त्रों में पैबन्द भले ही लगे हों, परन्तु वे धुले और स्वच्छ रहते हैं। उनके वस्त्र पुराने होते हैं, परन्तु उनका व्यवहार अनुकरणीय होता है। वे कभी धन-सम्पदा की चकाचौंध से प्रलोभित नहीं होते। जो कुछ मिल जाता है, वे उसी से सन्तुष्ट रहते हैं।

शाम को माता-पिता के घर लौटने पर बच्चे प्रसन्न चित्त उनका स्वागत करते हैं। वे दिन भर हुई घटनाओं की जानकारी लेते-देते हैं, कमाई तथा खर्चों के बारे में चर्चा करते हैं, और प्राप्त भोजन को मिल-बाँटकर खाते हैं। साधारण भोजन में भी उन्हें पकवानों का-सा स्वाद मिलता है।

यहाँ निर्धनता है, पर कंजूसी नहीं है। उत्सवों और धार्मिक समारोहों में ये उदारतापूर्वक उत्तम वस्तुओं का दान करते हैं। दूसरों को आनन्दित देखकर ये सुखी होते हैं। इनके पास महँगे आभूषण तथा धन-सम्पत्ति नहीं है। इनका उदार मन तथा हृदय ही इनकी सम्पत्ति है, जो दूसरों को दुःखी नहीं देख सकता। जब लोग इनकी भौतिक सम्पदा के बारे में पूछते हैं, तो ये केवल यही कहते हैं, 'जैसा आप देख ही रहे हैं, हम लोग बाहरी तौर पर गरीब हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि हम धनवान हैं। यहाँ प्रचुर आनन्द और सन्तोष है। यह सन्तोष ही हमारी महानतम सम्पत्ति है।' वस्तुतः इनकी सम्पत्ति को देखा नहीं जा सकता। यह हृदय की सम्पदा है। यह प्रेम की सम्पदा है, जो भेदभाव भुलाकर सबको अपना लेती है। सचमुच ही आभूषणों, वस्त्रों या भौतिक सुख-सुविधाओं पर पारिवारिक सुख निर्भर नहीं करता। यह प्रेम पर निर्भर करता है। प्रेम ही पारिवारिक सुख की कुंजी है। प्रेम ही परिवार का हृदय है। हृदय की सम्पदा ही पारिवारिक सुख को सुनिश्चित करती है और इसका अभाव परिवार को ध्वंस कर देता है।

दिव्य प्रेम का खजाना

एक बार एक भक्त ने श्रीरामकृष्ण के एक शिष्य, स्वामी विज्ञानानन्द, से पूछा, 'श्रीरामकृष्ण के किस गुण ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया?' स्वामी विज्ञानानन्द ने उत्तर दिया, 'उन दिनों मैं

उनकी आध्यात्मिक शक्ति, उनके त्याग, उनके दिव्य-दर्शनों तथा उनके उपदेशों के बारे में कुछ भी नहीं समझ सका था। पर उनका प्रेम अतुलनीय था। पहली बार मिलने पर ही उन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया मानो मैं उनका चिर-परिचित मित्र रहा होऊँ। मेरे माता-पिता और भाई भी मुझे इतने विशुद्ध प्रेम-भाव से नहीं देखते थे। श्रीरामकृष्ण प्रेम के भण्डार थे। उस दिन मैं उनके प्रेम को देखकर चकित रह गया। वे हम लोगों में से प्रत्येक के कल्याणार्थ कितने प्रयत्नशील रहते थे !'

श्रीरामकृष्ण देव के सम्पर्क में आनेवाला हर व्यक्ति उनके पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम से अभिभूत हो जाता था। उनके सम्पर्क में आनेवाला हर व्यक्ति आत्मसम्मान तथा आत्मनिर्भरता के भाव से पूर्ण हो जाता था और आध्यात्मिक प्रगति-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता था।

श्रीरामकृष्ण देव निरन्तर दिव्य आनन्द में निमग्न रहते थे। उन्हें एकमात्र खेद इस बात का था कि सभी लोग उस दिव्य आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं। उनकी सतत यही इच्छा रहती कि कैसे वे अन्य लोगों को भी अपने दिव्य आनन्द की अनुभूति में भागीदार बना लें। लोगों के दुःख-दर्द देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। एक व्यक्ति को भी बोध तथा दिलासा प्रदान करने में समर्थ होने पर वे अत्यधिक प्रसन्न हो जाते थे। अपने पास आनेवाले युवकों से वे कहते थे, 'मेरी कोई सांसारिक इच्छा नहीं है। भौतिक सुख, यश और धन-सम्पत्ति की भी मुझे कोई चाह नहीं। भगवान के नाम का उच्चारण मात्र करने से ही मैं स्वयं को भूल जाता हूँ; समाधिमग्न हो जाता हूँ। जानते हो, मैं तुम्हें इतना प्यार क्यों करता हूँ? तुम सब अभी तरुण हो। तुम्हारा मन अभी तक सांसारिक कालिमा से दूषित नहीं हुआ है। भक्ति और सच्चाई के साथ यदि तुम धर्म-साधना करो,

तो शाश्वत आनन्द प्राप्त कर लोगे । केवल इसी कारण मैं तुम लोगों को देखने हेतु इतना आकुल रहता हूँ ।' दिव्य प्रेम के सागर श्रीरामकृष्ण की इस उक्ति पर मनन करके हम निःस्वार्थ प्रेम के स्रोत की कल्पना कर सकेंगे । ईश्वर ही उस विशुद्ध निःस्वार्थ प्रेम के स्रोत हैं ।

मातृत्व का सर्वोच्च आदर्श

कोई आदर्श या परिकल्पना यदि किसी व्यक्ति के जीवन में साकार रूप में प्रकट न हो, तो वह एक शुष्क सिद्धान्त मात्र बनकर रह जाता है । दैनन्दिन जीवन में उसे कार्यान्वित करने के लिए लोगों को प्रेरणा या मार्गदर्शन नहीं मिल सकता । श्रीरामकृष्ण देव ने ईश्वर के मातृभाव को प्रदर्शित करने के लिए मातृत्व की एक सजीव मूर्ति को गढ़ा, जो सभी के 'माँ' सम्बोधन का उत्तर देती थीं, जिनका आशीर्वाद तथा आश्वासन मनुष्य को संसार की सभी बेड़ियों से मुक्त कर देता और दिव्यता-प्राप्ति में उनकी मदद करता । उनका खुद का जीवन भी आदर्श मातृत्व का एक सन्देश था । इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने हम सबको यह दिखाया कि ईश्वर हमारे सगे-स्वजन हैं और हम प्रेम और स्नेहभाव के द्वारा उनके पास पहुँच सकते हैं । उन्होंने दिखा दिया कि इस भाव के सहारे कम-से-कम कुछ लोग तो निःस्वार्थ प्रेम के शिखर पर पहुँच ही सकते हैं, और इस प्रकार उन्होंने दूसरों को इस पथ पर चलने के लिए प्रेरित किया । उन्होंने बताया कि माँ के निःस्वार्थ प्रेम के आदर्श के द्वारा स्त्रियाँ कैसे परिपूर्णता एवं धन्यता प्राप्त कर सकती हैं ।

करुणा का सागर

जाति, वर्ण, कुल या समुदाय का भेद भुलाकर असंख्य नर-नारी उन्हें 'माँ' कहते थे । जैसे कोई बच्चा माँ की गोद का दुलार चाहता

है, वैसे ही भक्तगण उनके पास जाकर उनके सान्निध्य में अपनी सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाते थे। उनके मार्गदर्शन से भक्तों को कृतार्थता का अनुभव होता था। माँ भी अपनी सन्तानों के कल्याण हेतु दिन-रात प्रार्थना करती थीं। अपार धैर्य के साथ वे अपनी सन्तानों की सैकड़ों भूलों को क्षमा करके उन्हें सत्पथ पर चलने का उपदेश देती थीं। दिनों, महीनों और यहाँ तक कि वर्षों तक वे अपना सुख-आराम छोड़कर अपनी सन्तानों के भोजन और आध्यात्मिक हित में लगी रहीं। भक्तगण दूर-दूर से आते थे। वे इन लोगों के कारण होनेवाली असुविधाओं को धैर्यपूर्वक सहते हुए उनकी आकांक्षाओं को पूर्ण करतीं। करुणा से विगलित होकर घोर व्याधि से पीड़ित भक्तों की बीमारी को वे योगशक्ति से अपने ऊपर ले लेती थीं। इससे उन्हें कष्ट तो बहुत होता था, परन्तु अपनी दुःखी भक्त-सन्तानों को वे राहत पहुँचाए बिना नहीं रह पातीं थीं। इस प्रकार वे भक्तों के श्रद्धायुक्त स्नेह का भाजन बन गयीं। उन्होंने अपनी भक्त-सन्तानों को त्याग, सेवा तथा धैर्य की शिक्षा दी। जीवन के झंझटों तथा प्रपंचों से दुःखी और असहाय भक्तों को उन्होंने मंत्रदीक्षा, जप-ध्यान और प्रार्थना का उपदेश देकर, उन्हें आध्यात्मिक सम्बल प्रदान किया। वे अपनी दिव्यता को छिपाए रखकर भक्तों की वास्तविक माता के सदृश ही प्रतीत होती थीं। सतत सेवा का जीवन बिताते हुए भी वे सर्वदा प्रसन्नचित्त तथा आनन्दित रहती थीं।

आध्यात्मिक सिद्धि के लिए इस शिखर पर वे धीरे-धीरे ही पहुँची थीं। वे सेवा तथा बलिदान के आदर्श के प्रति समर्पित एक कर्तव्यनिष्ठ पुत्री थीं, एक पतिपरायणा पत्नी थीं, अपने असंख्य भक्त-सन्तानों की स्नेहमयी माँ थीं, मानवता को अध्यात्मपथ पर ले जानेवाले धर्मसंघ की गुरुं थीं और सर्वोपरि, दिव्य प्रेम की साकार मूर्ति थीं। बालिका के रूप में उन्होंने कभी अपना समय बर्बाद नहीं किया,

वरन् माता-पिता के कार्य में सहायता करते हुए उनका भार हलका किया । पिता की मृत्यु के बाद वे स्वयं धान कूटती थीं । अपनी वृद्ध माँ और चाचा की देखभाल वे स्वयं करती थीं । उन्होंने अपने छोटे भाइयों को लाड़-प्यार दिया और उनका पालन-पोषण करके उन्हें आत्मनिर्भर बनाया । एक भाई का कम आयु में ही देहान्त हो जाने पर उन्होंने उसकी पत्नी तथा बच्चों को आश्रय प्रदान किया । अन्य भाइयों के बीच विवाद उत्पन्न होने पर वे उनके बीच मेल-मिलाप का प्रयास करतीं । अनेक लोग मजबूरी के कारण ही घरेलू कार्य करते हैं, परन्तु ऐसे अधिकांश लोग मौका मिलते ही अपने कार्य की डींग हाँकते हैं या फिर अपने दुर्भाग्य का रोना रोने लगते हैं । लेकिन माँ ने सबके प्रति अपार स्नेह के कारण ही लोगों की सेवा की और उन्होंने कभी इसका उल्लेख नहीं किया । पति के प्रति उनकी निष्ठा तथा पत्नी के रूप में उनके आदर्श-जीवन की कोई मिसाल नहीं है । मानवता के समूचे इतिहास में विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम पर आधारित ऐसे दिव्य दाम्पत्य प्रेम का दृष्टान्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलता । यह आदर्श कभी भी धूमिल नहीं पड़ा । कौन थीं ये जगन्माता? ये थीं श्री सारदा देवी । भगिनी निवेदिता ने उनका सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद लिखा था, 'माँ एक ऐसे आकुल प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं, जो कभी हमें अस्वीकार नहीं कर सकतीं, जो मानो सदा-सर्वदा हमारे साथ रहनेवाली शुभाशीष हैं । वे एक ऐसी व्यक्तित्व हैं, जिनसे हम कभी दूर नहीं जा सकते । वे एक हृदय हैं, जिसमें हम सभी सुरक्षित हैं; वे असीम मधुरिमा हैं, कभी न टूटनेवाला बन्धन हैं । वे छायारहित पवित्रता हैं । वस्तुतः वे इन सबके अलावा और भी बहुत कुछ हैं ।'

यह सच है कि सामान्यतया पिता की तुलना में माता को बहुत कम प्रसिद्धि मिलती है । परन्तु क्या यह भी सच नहीं कि पिता की कीर्ति और सन्तानों की प्रगति के पीछे माँ की असीम प्रेमाशि, स्नेह,

बलिदान, सेवा और सहनशीलता निहित रहती है? वे विनीत और संकोची बनकर लोकदृष्टि से छिपी रहती हैं। माता की सेवा और त्याग का मूल्य अपरिमित होता है। यदि बच्चे इस निःस्वार्थ दिव्य प्रेम का कणमात्र भी प्राप्त कर लें, तो उनका बड़ा हित होगा। उनका व्यक्तित्व उत्तम चरित्रों के रूप में विकसित तथा पुष्पित होगा और उनका जीवन कृतार्थ हो जाएगा।

माँ सारदा की करुणा अपार और सबके प्रति समान थी। वे प्रायः कहती थीं, 'जिसमें दया नहीं, वह भी क्या मनुष्य कहलाने योग्य है?' अधोलिखित घटना उनकी करुणा तथा स्नेह का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करती है।

कोलकाता की एक बालिका अपने घरवालों को बड़ा कष्ट देती थी और घरवालों को उसका ध्यान रखना पड़ता था। वह अपनी माँ के साथ श्री सारदा देवी के पास आया करती थी। माँ के कक्ष में प्रविष्ट होते ही वह उनसे लिपट जाती। माँ हमेशा ही उसे खाने को ढेर-सारी मिठाइयाँ देतीं।

एक बार माँ वहाँ से अपने गाँव जयरामबाटी जा रही थीं। उन्होंने उस बालिका से कहा - 'बेटी, तुम बहुत दिनों से मेरे पास आती रही हो। क्या तुम मुझसे प्रेम करती हो?'

बालिका - 'हाँ, मैं आपसे बहुत प्रेम करती हूँ।'

माँ - 'कितना?'

बालिका ने अपनी भुजाओं को यथासम्भव फैलाकर कहा - 'इतना।'

माँ - 'क्या मेरे जयरामबाटी में रहने पर भी तुम मुझे प्यार करोगी?'

बालिका - 'हाँ, मैं आपको तब भी उतना ही प्यार करूँगी। मैं आपको नहीं भूलूँगी।'

माँ - 'मैं इसे कैसे जान पाऊँगी?'

बालिका - 'आपको यह समझाने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?'

माँ - 'यदि तुम घर में सबसे प्रेम कर सको, तो मैं अपने प्रति तुम्हारे प्रेम के बारे में निश्चिन्त हो जाऊँगी।'

बालिका - 'ठीक है, मैं घर में सभी लोगों से प्रेम करूँगी। अब मैं अपनी शैतानी भी छोड़ दूँगी।'

माँ - 'यह तो ठीक है। परन्तु मुझे यह कैसे पता चलेगा कि तुम सबको समान भाव से प्रेम कर रही हो, किसी को कम या किसी को अधिक नहीं?'

बालिका - 'सबको समान रूप से प्यार करने हेतु मुझे क्या करना चाहिए?'

माँ - 'सबको समान रूप से प्यार करने की विधि मैं तुम्हें बताती हूँ। प्रेम किए जानेवालों से कुछ माँगना मत। यदि तुम कुछ माँगेगी, तो कोई कम देगा और कोई अधिक। तब अधिक देनेवाले से तुम अधिक प्रेम करोगी और कम देनेवाले से कम। इस प्रकार तुम्हारा प्रेम सबके लिए एक समान नहीं रह जाएगा। तुम सभी को निष्पक्ष भाव से प्रेम नहीं कर सकोगी।'

बालिका ने बिना किसी प्रतिदान की आशा रखे, सबसे प्रेम करने की प्रतिज्ञा की। वस्तुतः इसके बाद उसका व्यवहार आदर्श-स्वरूप हो गया। यह घटना सबको समान और निष्पक्ष भाव से प्यार करने की कला सिखाती है।

माँ श्री सारदा देवी का प्रेम निःस्वार्थ था। वे कोई प्रतिदान नहीं चाहती थीं। उनका प्रेम सज्जन और दुर्जन - सबके प्रति समान रूप से व्यक्त होता था। एक बार उन्होंने कहा था कि वे पशुओं, पक्षियों और कीट-पतंगों की भी माँ हैं।

प्रेम ही परम आनन्द है

नियंत्रण तथा संयम का जीवन बिताते हुए ही व्यक्ति वासनाओं के जाल से मुक्त होकर अपने व्यक्तित्व के उच्चतर सोपानों पर पहुँच सकता है। केवल तभी चारित्रिक-उन्नयन एवं सामाजिक-कल्याण एक वास्तविकता बन सकता है। किसी दम्पति के वृद्ध हो जाने पर दैहिक आकर्षण या वासनाएँ नहीं, अपितु उनके बीच विकसित प्रेम ही उन्हें जोड़े रखता है। अब उनका प्रेम भावनात्मक उत्तेजनाओं के प्राबल्य से जरा भी कलुषित नहीं होता। अब उनमें क्रोध, घृणा और अवज्ञा का भाव प्रबल नहीं रहता, अपितु उनके जीवन में शान्ति और सन्तोष आ जाता है। प्रेम की प्रेरणा के द्वारा ही पत्नी पति की सजग भाव से सेवा करेगी। ऐसी पत्नी और माता में कोई भेद नहीं। यदि हम आध्यात्मिक जीवन के आदर्शों को अपना लें, तो सामान्य जीवन में जो बातें स्वयमेव होती हैं, उन्हें प्रयासपूर्वक विकसित किया जा सकता है। पति-पत्नी के बीच केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध ही पारिवारिक जीवन में सुख और शान्ति ला सकता है। दूसरे शब्दों में, पति-पत्नी - दोनों के ही आध्यात्मिक जीवन बिताने पर उनके बीच पूर्ण समझदारी, आपसी प्रेम और आदर-भाव कायम होंगे। केवल इसी उपाय से शान्ति एवं सामंजस्यपूर्वक रहना सम्भव है। अन्यथा पति-पत्नी परस्पर दोषारोपण में ही लगे रहेंगे और उन्हें नित्य कलह की कटुता का सामना करना होगा।

एक प्रचलित कहावत है - 'प्रेम अन्धा होता है'। इसका अर्थ यह है कि प्रेम कोई अन्तर या भेद नहीं रखता। पर कभी-कभी लोग वासना को ही प्रेम समझकर, अपना विवेक खो बैठते हैं और आँखें मूँदकर दैहिक प्रेम को ही महिमा-मण्डित करते हुए समस्त नैतिक प्रतिबन्धों तथा मर्यादाओं की उपेक्षा करने लगते हैं। नव-विवाहित

दम्पति के बीच सच्चे प्रेम की अपेक्षा विषय-वासना अधिक हो सकती है, परन्तु अध्यात्म-पथ की ओर उन्मुख होकर इस वासना का उदात्तीकरण करते हुए इसे क्रमशः सच्चे प्रेम में परिणत किया जा सकता है। पति को ईश्वर के प्रति निष्ठा, भक्ति और शरणागति के भाव का आश्रय लेकर धर्म-साधना करनी चाहिए। पत्नी के लिए पति ही ईश्वर बन जाता है और पति की सेवा ही उसकी साधना बन जाती है। जीवन में उसका उद्देश्य रेलगाड़ी के डिब्बों द्वारा उसके इंजन का अनुगमन करने के समान अपने पति के पदचिह्नों का अनुसरण करना हो जाता है। पत्नी सच्चे अर्थों में अपने पति की अर्धांगिनी बनकर, उसके लक्ष्य में सहगामिनी बनकर सुख-दुःख में उसका हाथ बँटाती है। वह सहिष्णुता व धैर्य की खान और स्नेह-प्रेम की जीवन्त मूर्ति बनकर अपने घरेलू कर्तव्यों को ईश्वर की उपासना मानती है। वह सेवा और त्याग में ही आनन्द पाती है। इन सदगुणों का विकास होने पर दैहिक वासनाएँ क्रमशः मिटती जाती हैं। प्रेम के परिपक्व हो जाने पर वह अपार आनन्द का अनुभव करती है।

आधुनिकता की तड़क-भड़क

आज की शिक्षा-प्रणाली में महान व्यक्तियों तथा सत्पुरुषों के आदर्श जीवन के प्रति बच्चों को आकर्षित करने का कोई प्रावधान नहीं है। जीवन के आदर्शों के बारे में फैला हुआ अज्ञान ही इसका कारण प्रतीत होता है। युवकों के सम्मुख जीवन के ऐसे मूलभूत आदर्शों को, जो जल और वायु के समान नितान्त आवश्यक हैं और जो सुख, शान्ति और सन्तुष्टि देने में सक्षम हैं, कौन प्रस्तुत करेगा? एक ओर तो इस शिक्षा में परीक्षा उत्तीर्ण कराने के लिए बच्चों के मस्तिष्क में असंख्य जानकारीयाँ ठूँसी जाती हैं तथा विज्ञान को अति महिमा-मण्डित किया जाता है। दूसरी ओर, संचार-माध्यमों में सस्ती

भावुकता, यौन-उत्तेजना, चोरी, डकैती तथा हिंसा की अतिरंजित प्रस्तुति बच्चों के भोले-भाले और अति संवेदनशील मन को पथभ्रष्ट कर देती है। यहाँ तक कि शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोग भी इस समस्या के बारे में अधिक चिन्तित नहीं दिखते। तथाकथित बुद्धिजीवी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से किशोरों व युवकों के मनो को यह सुझाव देते प्रतीत होते हैं कि मानवीय दुर्बलताएँ स्वाभाविक हैं और किसी आदर्श के लिए तत्पर रहकर संघर्ष करना एक तरह की मूर्खता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण और बुद्धिवाद के नाम पर समाज में स्वेच्छाचारिता, भोगपरायणता और असंयम का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष तौर पर व्यापक प्रचार-प्रसार होता है। एक मंत्री ने एक बार एक सार्वजनिक सभा में कहा कि एक सीमा तक रैगिंग भी हानिकारक नहीं है और इस पर युवकों ने पाँच मिनट तक तुमुल करतल-ध्वनि के साथ अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी।

पाश्चात्य देशों में दिखनेवाली स्वच्छन्दता की भावना ने भारतीय युवकों के अति संवेदनशील मनो को प्रभावित कर दिया है। परन्तु पाश्चात्य लोगों की देशभक्ति, उद्यमशीलता, कर्तव्य-निष्ठा और कठोर परिश्रम को अपनाने की जगह भारतीय युवक उनका अन्धानुकरण करते हुए उनके दोषों तथा दुर्बलताओं को ही ग्रहण करते हैं। १९६४ ई. में भारत की यात्रा पर आए लन्दन विश्वविद्यालय के प्रख्यात इतिहासज्ञ, प्रो. ए. एल. बाशम, ने प्रेस से एक साक्षात्कार में कहा था, 'पाश्चात्य जगत के चित्रपट, साहित्य, नृत्य और संगीत ने भारतीय युवकों को मंत्रमुग्ध कर लिया है और वे भी यूरोपीय युवकों को मिली स्वच्छन्दता को पाने की आशा करते हैं। यह स्वच्छन्दता यूरोपीय युवकों को सच्चा सुख नहीं दे सकी। परन्तु भारतीय युवक इस प्रकार की स्वच्छन्दता से सुख प्राप्त करने की आशा रखते हैं। हो सकता है

कि दो-एक पीढ़ी में वे सचमुच ही इस स्वच्छन्दता को पा लें। पुरुषों और महिलाओं के बीच मेल-मिलाप पर प्रतिबन्ध और पारम्परिक विवाह-प्रथा ने भारतीय परिवारों को स्थायित्व प्रदान किया है। परन्तु पाश्चात्य देशों की स्वच्छन्दता पतित होकर स्वेच्छाचारिता में परिणत होती जा रही है। परिवार टूटते जा रहे हैं। बच्चे प्रायः घर से अलग-थलग होकर अनाथालयों में पलते हैं।

यदि भारतवासी भी पाश्चात्य देशों में पारिवारिक जीवन का नाश करनेवाले वासनाजन्य स्वेच्छाचार को अपना लें, तो इसके द्वारा अपने देश को होनेवाली क्षति का हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। पाश्चात्य लोगों को धीरे-धीरे अपनी मूर्खता का एहसास हो रहा है। यह कैसी विडम्बना है कि हमारे युवक अपनी ही संस्कृति की उपेक्षा करके पाश्चात्य देशों की नकल करने के प्रयास में लगे हुए हैं!

विज्ञान का दुरुपयोग

आस्कर वाइल्ड की एक कथा सुनो - 'ईसामसीह एक बार किसी गाँव से नगर की ओर आ रहे थे। सड़क पर चलते समय उन्होंने एक युवक को सड़क की नाली में पड़ा देखा। ईसा ने उससे पूछा, "तुम मदिरा पीकर इस घृणित अवस्था में क्यों पड़े हो?" युवक ने उत्तर दिया, "प्रभो! मैं कोढ़ी था। आपने करुणा के वशीभूत होकर मेरा कोढ़ ठीक कर दिया। अब मैं और कर ही क्या सकता हूँ?" ईसा ने एक लम्बी साँस ली। फिर उन्होंने एक अन्य युवक को वेश्या के कोठे की ओर जाते देखा। ईसा ने पूछा, "तुम इस प्रकार अपनी आत्मा को क्यों पतित करते हो?" युवक ने उत्तर दिया, "प्रभो! मैं अंधा था। आपने करुणार्द्र होकर मुझे नेत्र-ज्योति प्रदान की। अब मैं और कर ही क्या सकता हूँ?" नगर में प्रविष्ट होने पर ईसा ने दुःख-कष्ट से आर्तनाद करते एक वृद्ध व्यक्ति को देखा। उन्होंने उसके करुण

रुदन का कारण पूछा। वृद्ध ने कहा, “मैं तो मर गया था। आपने मुझे पुनः जिला दिया। अब मैं रोने-चिल्लाने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ?” इन सभी ने ईसा की करुणा का दुरुपयोग किया था।

ईसा अपनी अति-मानवीय शक्तियों द्वारा जो चमत्कार कर सके थे, विज्ञान आज वैसे ही चमत्कार करने में समर्थ है। शल्य-चिकित्सा तथा चमत्कारिक औषधियों की जादुई तकनीक द्वारा आज बीमारियों को दूर भगाकर आयु के प्रभाव को घटाया जा सकता है। जीन का विश्लेषण करके उनमें परिवर्तन लाकर मृत्यु को टाला भी जा सकता है, परन्तु मनुष्य इस ज्ञान का उपयोग क्या अपने या समाज के कल्याण हेतु कर रहा है? या फिर, वह भी आस्कर वाइल्ड की उपरोक्त कथा के पात्रों की भाँति मन की शक्तियों का विकास करनेवाले मूल्यों का उपयोग जागतिक सुखों की खोज तथा स्वयं को विनाश के कगार तक ले जाने के लिए कर रहा है?

संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशेषज्ञ कहते हैं – ‘इस पृथ्वी की करीब आधी जनसंख्या कुपोषण या भुखमरी का शिकार है। यदि दुनिया के सैन्य-व्यय का एक प्रतिशत भी खाद्य के उत्पादन में लगाया जाए, तो इससे बीस करोड़ भूखे बच्चों को भोजन दिया जा सकता है।’ पर किसी ने भी बच्चों के आहार हेतु पर्याप्त धन नहीं बचाया है। महा-विनाशक हथियारों के उत्पादन तथा एकत्रीकरण में ही अकूत धन खर्च किया जा रहा है। यहाँ हमें बर्ट्रेन्ड रसेल की एक उक्ति का स्मरण हो आता है – ‘हममें अपने मित्रों का हित करने की जगह, शत्रुओं का नाश करने की इच्छा ही अधिक प्रबल है।’ यह मानसिकता संसार को कोई लाभ नहीं पहुँचाती। हमारी शक्ति और संसाधन प्रायः अपने सच्चे मित्रों की सहायता की जगह अपने काल्पनिक शत्रुओं के विनाश पर ही अधिक खर्च होते हैं।

केवल मशीनों तथा प्रौद्योगिकी का विकास उपकारी नहीं सिद्ध हो सका है, क्योंकि इसके साथ-ही-साथ मानव-हृदय में करुणा, सहानुभूति, संयम, निःस्वार्थता, सहायता आदि के भावों का कोई विकास नहीं हुआ। इसीलिए केवल प्रौद्योगिकी का विकास मानवीय प्रगति के लिए अहितकर सिद्ध हुआ है। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कन्नड़ कवि कोवेम्पू कहते हैं -

है विज्ञान मनुज की दासी, ज्ञान और धनराशि अपार ।
विषयभोग-तृष्णा की ज्वाला, पाती खनिज-तेल की धार ॥
ऊँची बढ़ती जाती लपटें, युद्धस्थल की कैसी आग ।
धनी और निर्धन दोनों को, ग्रसता अति-धन का अनुराग ॥

हिंसा का दानव

वैज्ञानिक तथा बुद्धिजीवी ज्ञान के विविध क्षेत्रों में सत्य की खोज हेतु अपना जीवन अर्पित करते रहे हैं। उन्होंने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को काम में लाने की तकनीकें खोज ली हैं। परन्तु उनका श्रम मनुष्य में निहित बुराई की आग को हवा देने का ही काम करता रहा है। उनके अथक परिश्रम से खोजे गए प्रकृति के रहस्य, गलत हाथों में पड़कर मनुष्य के विनाश के पथ को ही प्रशस्त करने में लगे हैं। अब हम विज्ञान का महा-विनाशकारी चेहरा स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं।

सोमवार, ६ अगस्त, १९४५ का दिन। सुबह के पौने आठ बजे थे। करीब ६० हजार नर-नारी तथा बच्चे देखते-ही-देखते काल के गाल में समा गए और लाख से भी अधिक लोग घायल हुए। एक बड़ा बन्दरगाह नष्ट कर दिया गया। एक बड़ा शहर जलाकर राख कर दिया गया। मिनटों में ही सब कुछ स्वाहा हो गया। जापान में हिरोशिमा नगर पर गिराये गए अमेरिका के पहले अणुबम का ऐसा ही प्रभाव हुआ।

हाल के वर्षों में विज्ञान ने तीव्र प्रगति की है, पर साथ-ही-साथ वह मानवता के संहार की कला में भी उत्तरोत्तर कुशल होता गया है। इस बात की अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। इस विषय में हाल ही में प्रस्तुत एक प्रामाणिक रिपोर्ट में लिखा है, 'विश्व की पाँच महाशक्तियों ने विभिन्न प्रकार के करीब पचास हजार शक्तिशाली परमाणु हथियार एकत्र किए हैं। ये हिरोशिमा पर गिराये गए बमों की तुलना में दस लाख गुना अधिक विनाशकारी हैं। इन हथियारों का लगभग ९५ से ९७ प्रतिशत भाग दो महाशक्तियों के हाथों में और बाकी चीन, इंग्लैंड और फ्रांस के पास है। दोनों महाशक्तियाँ इन परमाणु हथियारों के विकास पर प्रतिदिन लगभग एक करोड़ डालर और इनके परिवहन, अनुसन्धान तथा एकत्रीकरण पर करीब दस करोड़ डालर खर्च करती रही हैं। और इनके उत्पादन को रोकने की भी कोई निश्चित योजना नहीं है। यद्यपि ऊपरी तौर पर शस्त्र-निरोध समझौते पर हस्ताक्षर हो चुके हैं, परन्तु कोई भी निरस्त्रीकरण के विषय में गम्भीर नहीं है।'

विनाशक हथियारों की सहायता से मानवता के संहार की कला में हुई प्रगति के बारे में कुछ जानकारी इस प्रकार है - 'उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व के हजार वर्षों के दौरान यूरोप में विभिन्न युद्धों में मारे गए लोगों की संख्या २० करोड़ थी। परन्तु केवल इस एक ही शताब्दी के दौरान युद्धों में करीब ७० करोड़ लोग मारे गए। यह आँकड़ा द्वितीय विश्वयुद्ध तक युद्धों में मारे गए लोगों का है। उसके बाद भी संसार भर के अनेक युद्धों में एक करोड़ से भी अधिक लोग मारे गए।'

विज्ञान का भयावह चेहरा

मानवता को सुख-सुविधा प्रदान करना ही विज्ञान का एकमात्र उद्देश्य है। मगर सुख-सुविधा का प्रलोभन दिखाकर वह मनुष्य पर

अपनी पकड़ निरन्तर मजबूत करता जा रहा है। 'ब्रिटेन में हर साल सात हजार लोग यातायात से जुड़ी दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं और एक लाख लोग घायल हो जाते हैं। अमेरिका में प्रतिवर्ष पैतालिस हजार लोग घातक यातायात सम्बन्धी दुर्घटनाओं की बलि चढ़ जाते हैं और लाखों घायल हो जाते हैं।'

१९८२ ई. में 'लन्दन-टाइम्स' में प्रकाशित एक लेखमाला का सार इस प्रकार था - यह सच है कि विज्ञान ने हमारी सुख-सुविधाओं का स्तर ऊँचा उठा दिया है। हमारी आयु दीर्घ हो गई है, पर साथ ही मदिरा की लत बढ़ती जा रही है।

वस्तुतः सभ्यता की प्रगति पर सबको गर्व है। परन्तु दुर्भाग्यवश सुरापान से उन्मत्त अवस्था में हिंस्र पशुओं से भी बदतर आचरण करनेवालों की संख्या भी बढ़ी है। १९६१ ई. में शराब और सिगरेट पर १,५०० करोड़ रुपये खर्च किए गए। अब तक यह संख्या अनेक-गुनी हो गई होगी। शराब पीकर वाहन चलाने से हुई दुर्घटनाओं की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। ब्रिटेन में प्रतिवर्ष ४०० करोड़ लीटर से भी अधिक शराब की खपत है। वहाँ केवल शराब और सिगरेट पर उगाहे गए कर की धनराशि १,१७० करोड़ रुपये है।

विशेषज्ञों का कहना है, 'तकनीकी रूप से सर्वाधिक उन्नत राष्ट्रों में से एक, अमेरिका, में हर आधे घण्टे में एक हत्या तथा एक बलात्कार की घटना होती है, हर घण्टे दस डकैतियाँ और चालीस कार-चोरियों या तस्करी की घटनाएँ होती हैं। इन घटनाओं की वार्षिक संख्या बीस लाख को पार कर जाती है। अपराधों को अंजाम देने में अपराधी सर्वाधिक उन्नत तकनीक का प्रयोग करते हैं और वे इसमें इतने सफल रहते हैं कि उन्हें निष्फल करने के लिए पुलिस का सर्वोत्तम प्रयास भी व्यर्थ ही जाता है। चार डकैतियों में से एक का ही सुराग मिल पाता है। सन् १९०० से लगभग आठ लाख लोग

हत्यारों की गोलियों से मारे जा चुके हैं। यह मानव-हृदय में व्याप्त हिंसा की ओर संकेत करता है। गत एक वर्ष के दौरान ही दस हजार लोगों ने खुद को गोली मारकर आत्महत्या कर ली। यह वहाँ के नर-नारियों के संघर्ष तथा हताशा की गहराई का द्योतक है।

इस संघर्ष और हताशा की गम्भीरता को समझाने के लिए विशेषज्ञ अन्य आँकड़े भी देते हैं - 'अमेरिका के लोग प्रतिवर्ष २८,००० टन एस्प्रीन या वैसी ही अन्य गोलियाँ निगल जाते हैं। स्नायु के तनाव को दूर करनेवाली सैकड़ों करोड़ रुपये की दवाओं की खपत होती है। असंख्य लोग अनिद्रा-रोग से पीड़ित हैं और उन्हें नित्य नींद की गोलियाँ खानी पड़ती हैं। कॉलेजों में पढ़नेवाले युवकों तथा युवतियों में बड़ी तेजी से ट्रैक्विलाइजर्स (प्रशान्तकों) और मन को ठीक रखनेवाली औषधियों की नई लत बढ़ती जा रही है।

'रीडर्स डाइजेस्ट' के नवम्बर, १९७० अंक में आर्टिलिक लेटर का एक हृदय-विदारक लेख छपा था। एल.एस.डी. (एक मादक द्रव्य) के नशे के प्रभाव से अपनी बीस वर्षीया पुत्री के एक भवन की ऊपरी मंजिल से कूदकर जान देने का वर्णन करते हुए लेखक ने अमेरिकी माता-पिताओं को चेतावनी दी है - 'हमारे परिवार पर आई त्रासदी की छाया प्रत्येक घर को अन्धकारमय करती जा रही है। शिक्षा का स्तर, धन-सम्पदा और सामाजिक प्रतिष्ठा - कुछ भी युवकों को मादक द्रव्यों का शिकार बनने से नहीं बचा पाते। आपका बच्चा, अमेरिका के चाहे किसी भी प्राथमिक शाला या हाईस्कूल या विश्वविद्यालय में हो, वह ठीक इसी क्षण मादक द्रव्यों के सम्पर्क में आ रहा है। यदि आप सोचते हैं कि ऐसा नहीं है, तो आप आँखें रहते हुए भी अंधे हैं।'।

कामुकता, स्वेच्छाचार और भोगलिप्सा के लिए ईंधन की आपूर्ति करते हुए वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी ने मानवता पर कैसा विनाशकारी प्रभाव

का विस्तार कर लिया है। जहाँ वियतनाम-युद्ध में पैतालिस हजार (४५,०००) सैनिक मारे गए थे, वहीं एक लाख चालीस हजार (१,४०,०००) लोग मादक द्रव्यों के प्रभाव से मर गए। कहते हैं कि विश्व भर के तेरह विशाल संगठन मादक द्रव्यों के अवैध व्यापार में लगे हैं और उनमें से एक का वार्षिक कारोबार दो हजार करोड़ रुपयों का है।

विनष्ट नैतिक मर्यादाएँ

विशेषज्ञ, शोधकर्ता और विदेशों में सामाजिक स्वास्थ्य के संरक्षकगण नैतिक मूल्यों के ह्रास के दुष्प्रभावों तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर बढ़ते स्वेच्छाचार के विषय में लोगों को आगाह करते हैं। वे तथ्यों और आँकड़ों के आधार पर बताते हैं कि पुरुष और महिलाएँ अधिकाधिक स्वार्थी बनते जा रहे हैं। स्वतंत्रता और नैसर्गिकता के आधार पर अधिकाधिक कामोपभोग का पक्ष लिया जाता है। गर्भ-निरोधक उपायों का प्रयोग या दुरुपयोग बढ़ता ही जा रहा है। गर्भपातों की संख्या बढ़ती जा रही है और तलाकों की संख्या में वृद्धि क्रमशः परिवारों की संरचना को निर्मूल करती जा रही है। यौन रोगों की घटनाएँ भी बढ़ रही हैं।

विज्ञान के वरदानों का गुणगान करनेवाले और नैतिक मूल्यों के महत्व की उपेक्षा करनेवाले लोगों को अपनी आँखें खोलकर इन चेतावनियों पर ध्यान देना चाहिए। शिक्षकों, शिक्षा-शास्त्रियों और हर क्षेत्र में पश्चिम का अनुकरण करनेवाले शिक्षित लोगों को शान्त भाव से इस नैतिक पतन के कारणों पर चिन्तन करना चाहिए। पाश्चात्य जगत में विज्ञान की प्रगति के साथ ही धार्मिक उत्साह कमजोर पड़ने लगा है। मनोविश्लेषण के जनक सिगमण्ड फ्रायड ने नैतिक संहिताओं के माध्यम से मन पर किसी प्रकार के नियंत्रण स्थापित

करने की जरूरत से इनकार किया है। बाद में इसी से एक बच्चे के जीवन में पथ-भ्रष्टता की शुरुआत होती है।

फ्रॉयड ने कहा था, 'एक बालक असहाय होने के कारण माता-पिता के संरक्षण और आश्रय में पलता है। पलते-बढ़ते समय उसे काल्पनिक सुरक्षा और सुरक्षा-शक्तियों की जरूरत होती है। ईश्वर और धर्म ऐसे ही काल्पनिक आलम्बन हैं। व्यक्ति परिपक्व तथा तर्कबुद्धि-युक्त हो जाने पर ईश्वर में अपना विश्वास खोकर फिर धार्मिक प्रतिबन्धों की कोई परवाह नहीं करता।' फ्रॉयड का मत है कि मानव जीवन में कामेच्छा ही एकमात्र प्रेरणा-शक्ति है। मनुष्य को संयम के नियमों का पालन करके बीमार पड़ जाने की जरूरत नहीं है। साक्ष्यों के आधार पर समाज-विज्ञानी सोरोकिन बतलाते हैं कि फ्रॉयड के भ्रामक सिद्धान्त ने अनियंत्रित काम-भावना को प्रश्रय देकर पाश्चात्य जगत में व्यक्ति और समाज दोनों को ही क्षति पहुँचाकर उसके नैतिक आधार को किस प्रकार विनष्ट कर दिया है। वे बताते हैं कि फ्रायड के यौन-स्वच्छन्दता के अतिरेक को अपनाकर समाज एक असाध्य रोग से ग्रस्त हो गया है। उनके अपने ही शब्दों में, 'मानसिक स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए समस्त सहज संवेगों की पूर्ण सन्तुष्टि की सलाह देनेवाली मनो-विश्लेषण की पद्धति अनिवार्यतः अवैज्ञानिक है तथा नैतिक और सामाजिक, दोनों प्रकार से खतरनाक है। इसका व्यावहारिक प्रयोग मानसिक विक्षोभों में हास नहीं, अपितु वृद्धि ही करता है।'।

सोरोकिन बताते हैं कि जैसे अतीत के अमेरिकी शिक्षा-शास्त्री कहा करते थे कि बच्चों को शारीरिक दण्ड से बचाया जाना चाहिए, वैसे ही आज उन्हें एक आन्दोलन चलाकर नारा लगाना चाहिए, 'बच्चों को फ्रॉयड के सिद्धान्त से बचाइए।' परन्तु इस जाल से उनको मुक्त करना आसान नहीं है। जब पिछले दो सौ वर्षों से 'काम-भाव' को इतना अनावश्यक महत्त्व दिया जा चुका है, तो सहसा इसे

दरकिनार कैसे किया जा सकता है? सोरोकिन कहते हैं, 'विगत दो शताब्दियों में, मुख्यतः विगत कुछ दशकों के दौरान हमारी संस्कृति की हर शाखा पर प्रबल काम-वासना का आक्रमण हुआ है। हमारी सभ्यता कामुकता में इतनी डूब गई है कि वह जीवन के हर कोने से रिस रही है।'।

सोरोकिन ने इस बात के पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं कि प्रबल काम-भावना ने साहित्य, कला, संगीत, चलचित्र, टेलीविजन, प्रेस, पत्रिकाओं और विज्ञापनों के हर क्षेत्र में अकथनीय क्षति पहुँचाई है। १९३० के एक अध्ययन के अनुसार इस वर्ष प्रदर्शित १०० फिल्मों में से ४५ ने यौन और २८ ने हत्या तथा यौन की कथावस्तु प्रस्तुत की थी। तब से ऐसी फिल्मों का अनुपात भयावह रूप से बढ़ता गया है। 'दि स्टेट्समैन' पत्र एक सर्वेक्षण के आधार पर बताता है कि हाल ही में यह प्रवृत्ति किस हद तक जा चुकी है -

'पश्चिमी जर्मनी में अनेक वर्षों तक सम्भोग-विषयक वीडियो फिल्म के अनेक शो विशाल भीड़ को आकर्षित करते रहे। परन्तु हाल ही में ऐसे फिल्मों से भी सन्तुष्टि नहीं मिलती। अब वहाँ हिंसक अपराध और बलात्कार का चित्रण करनेवाली अशिष्ट, उन्मत्तकारी और अश्लील फिल्मों को दिखाए जाने की माँग बढ़ती जा रही है।'।

अभी तीस साल पहले ही डॉ. सोरोकिन ने अपने शोध का विवरण दिया था, जो टेलीविजन के दुरुपयोग को प्रमाणित करता था। उन्होंने अपने एक अध्ययन के निष्कर्षों को प्रकाशित कराया, जिसमें इस बात की पुष्टि की गई थी कि टेलीविजन जानबूझकर जनमानस को दूषित किया करते हैं - 'टेलीविजन द्वारा सुरापान, अपराध, डकैती, कामुक रंगरेलियोंवाले रात्रिकालीन क्लबों के कामोत्तेजक परिवेश का प्रचार-प्रसार किया जाता है। टेलीविजन प्रायः सिनेमा की अपेक्षा अधिक अशिष्ट फिल्मों का प्रदर्शन करते हैं। एक

बार इस दूषित मल के अभ्यस्त हो जाने के बाद अधिकांश लोग शारीरिक, मानसिक और नैतिक गन्दगी साफ कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं। दो-एक लोग ही इस माहौल से स्वयं को उबार पाने में समर्थ हो सकते हैं। परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बाकी लाखों लोग तो नैतिक संतुलन को बनाए रखने की स्वाभाविक क्षमता भी खो बैठते हैं।'

विज्ञान इन्द्रिय-सुख को उत्तेजित तथा दैहिक-सुख को अतिरंजित करके मनुष्य को स्वार्थी बनाने की आधुनिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार विज्ञान मनुष्य को अनुशासनहीनता और अनैतिकता की ओर उन्मुख करके अन्ततः उसका नैतिक विनाश कर देता है।

भौतिकता हमें कहाँ ले जाएगी?

उन्नीसवीं सदी के अन्त तक विवाहों का आधार धार्मिक हुआ करता था। स्त्रियाँ वैवाहिक-निष्ठा का सम्मान करती थीं, बच्चों के हितसाधन में रुचि रखती थीं, परिवार के सभी लोगों तथा घर के बड़े-बूढ़ों की सेवा में लगी रहती थीं। पर आज ये सब बातें क्रमशः समाप्त होती जा रही हैं। माता-पिता की जीवन-पद्धति में बदलाव से बच्चों की दशा दुःखमय हो गई है। अमेरिकी सरकार द्वारा संचालित अनाथालयों में माता-पिता द्वारा परित्यक्त बच्चों की बहुतायत है। माता-पिता के स्नेह या देखभाल से वंचित ये बच्चे ही भविष्य के नागरिक हैं। आज के छात्रों में अनुशासनहीनता, अवज्ञा, स्वार्थपरायणता और हिंसा बढ़ती जा रही है। जिन वृद्ध लोगों को अपने वयस्क पुत्रों का संरक्षण तथा सेवा नहीं मिलती, वे स्वयं को असहाय महसूस करते हैं और अपने जीवन के अपूरणीय सूनेपन को सहने में असमर्थ होकर आत्महत्या तक कर लेते हैं।

डॉ. किन्से का कहना है, 'अमेरिकी महिलाएँ विविध प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं, जिनका कारण तालाक तथा विवाह के पूर्व तथा बाद यौन-नैतिकता की शिथिलता से उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ हैं। आज अमेरिका के अस्पतालों में मानसिक गड़बड़ियों से ग्रस्त रोगियों की बहुतायत है। वह कौन-सा तत्त्व है, जिसने विवाह-संस्था की पवित्रता, परिवार के स्थायित्व तथा बच्चों की सुरक्षा को संकट में डालकर इस सामाजिक आपदा को जन्म दिया है? इसका मूल क्या है? इसका मूल वह तर्क है, जो शारीरिक सुख के पक्ष में दिया जाता है और जिसके द्वारा जीवन में यौन-सुख को ही सम्पूर्ण महत्त्व प्रदान किया जाता है; वह तर्क जो मातृत्व के महत्त्व को दरकिनार कर देता है; वह धारणा जो पुरुष और नारी को जीवन में प्रतिद्वन्द्वी मानती है; वह भौतिकवादी दृष्टिकोण जो इस दृश्यमान संसार तथा इन्द्रियों के सुखभोग को ही सर्वोच्च मानता है। इस भौतिकवादी भावना की आग लाखों-करोड़ों नर-नारियों का हृदय दग्ध कर रही है।'

यदि विवाहित जीवन का एकमात्र उद्देश्य भोग और स्वार्थपरायणता ही हो, तो फिर पति-पत्नी के बीच होनेवाले संघर्ष से भला कैसे बचा जा सकता है? इन्द्रिय-सुख में जरा-सी भी कमी होने पर पति या पत्नी उसकी खोज अन्यत्र करने लगते हैं। चूँकि उनका अपना सुख ही उनकी एकमात्र प्रेरणा है, अतः उनके बच्चे आवारा बन जाते हैं।

ऐसे माता-पिता के लिए बच्चे उनके सुख में बाधक एक अनावश्यक बोझ बन जाते हैं। नवजात शिशु को पास रखना उनकी सुख-सुविधा में बाधक होता है; स्तनपान कराने से भी माँ के शरीर का सौन्दर्य प्रभावित होता है। सच बात तो यह है कि उन्हें बच्चे को जन्म देना दुःख-कष्ट का कारण लगता है। बच्चों का पालन-पोषण उनकी स्वच्छन्दता में बाधक प्रतीत होता है। क्या ऐसे सभी बन्धनों को तोड़ डालना बुद्धिमानी नहीं है? आधुनिक तर्क तो यही कहता है।

स्वेच्छाचारिता की उपासना

आधुनिक दृष्टिकोण का अर्थ है सभी प्रकार के अनुशासन तथा संयम को तिरस्कार के भाव से देखना। इसे 'स्वाधीनता की भावना' कहकर सम्मान दिया जाता है। यह भावना कहती है - 'मुझे स्वेच्छापूर्वक आचरण करने दो। तुम मुझसे प्रश्न करने या मेरी स्वतंत्रता में बाधा पहुँचानेवाले कौन होते हो? मैं किसी भी नियम का दास नहीं बनना चाहता। मैं पूर्णतः सहज और स्वाभाविक रहना चाहता हूँ।' पर सच्ची स्वाधीनता का अर्थ है - समस्त अवसरों का लाभ उठाते हुए अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना और अपने नियत पथ पर आगे बढ़ते जाना। आत्मसंयम के बिना व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। मांसपेशियों का विकास चाहनेवालों को नियमित रूप से व्यायाम करना पड़ता है। किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक नियमावली बनाकर उसका पालन करना हमारी स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध-सा प्रतीत हो सकता है, परन्तु अपने हित के लिए इस प्रतिबन्ध की जरूरत है। अपने ऊपर प्रतिबन्ध लगाकर ही हम शारीरिक दुर्बलता से राहत और उत्तम स्वास्थ्य पा सकते हैं। स्वाधीनता के विकास के लिए संयम जरूरी है। प्रकृति सर्वत्र नियमों का अनुसरण करती है। मनुष्य को भी अपने सर्वांगीण विकास के लिए नियमों का पालन करना होगा, ताकि वह अन्ततोगत्वा स्वाधीनता के फल का आस्वादन कर सके। गौतम बुद्ध ने कहा था - 'जैसे छतविहीन भवन में वर्षा का जल प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार संयमरहित मन में भी बुरे विचार प्रविष्ट हो जाते हैं।'।

काम एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जिसकी मदद से प्रकृति प्रजनन को बढ़ावा देकर विभिन्न प्रजातियों का संरक्षण करती है। यह कहना कि 'मेरी काम-भावना की पूर्ति होनी चाहिए, परन्तु मैं सन्तानों के

लालन-पालन की जिम्मेदारी की परवाह नहीं करता' - प्रकृति के नियम के विरुद्ध आचरण करना है। पिट्रिम सोरोकिन अपनी पुस्तक 'Sane Sex Order' ('स्वस्थ यौन-व्यवस्था') में कहते हैं, 'यौन-स्वाधीनता को बड़ी कड़ाई से अनुशासित करनेवाले सभ्य समाजों ने सर्वोच्च संस्कृति का विकास किया है। सम्पूर्ण मानव-जाति के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें कोई समाज एक पति के प्रति निष्ठा रखने की कठोर प्रथा में जन्मी और पली-बढ़ी औरतों के बिना किसी बुद्धिवादी संस्कृति की ओर अग्रसर होने में समर्थ हुआ हो।' विशेषज्ञों का कहना है कि जो नारी अपने स्वार्थवश बच्चों को जन्म देने तथा उनके पालन-पोषण करने के झंझट से छुटकारा पा लेती है, उसे प्रकृति के नियमों के उल्लंघन की कीमत चुकानी होगी। उनका निष्कर्ष है कि अपने बच्चों को स्तनपान न करानेवाली स्त्री में स्तन-कैंसर होने की सम्भावना अधिक रहती है। बच्चों को जन्म देने तथा उनका लालन-पालन करने से बचनेवाली महिलाओं को मानसिक रोग हो जाते हैं। वे चिड़चिड़े स्वभाव की हो जाती हैं, छोटी-छोटी बातों पर झगड़ती रहती हैं और अन्ततः तलाक तक ले लेती हैं। समाज-शास्त्र के विशेषज्ञों का यही मत है। सामाजिक स्वास्थ्य और यहाँ तक कि समाज का अस्तित्व तथा विकास नर-नारी के बीच के सम्बन्धों की पवित्रता पर निर्भर है। यह सर्वजनस्वीकृत विचार है। कोई भी सच्चा वैज्ञानिक या चिन्तक कभी इस सत्य को नकार नहीं सकता।

धर्म और आध्यात्मिक आदर्शों के बिना नर-नारी के बीच के सम्बन्धों की पवित्रता को कायम रख पाना सम्भव नहीं है। एक उच्च आदर्श के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता के बिना हम आपसी समझदारी, सहनशीलता, सहयोग और आदर का जीवन नहीं बिता सकते। महाराष्ट्र के एक महान देशभक्त, साने गुरुजी, अपनी 'भारतीय संस्कृति' नामक पुस्तक में विवाह का आदर्श बताते हुए लिखते हैं - 'स्त्री और

पुरुष के बीच का सम्बन्ध पवित्र प्रेम पर आधारित होना चाहिए। स्त्री किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं समझी जानी चाहिए। स्त्री का अपना मन तथा अपनी भावनाएँ होती हैं। उसकी भी आत्मा है, स्वाभिमान है, वह भी सुख-दुःख का अनुभव करती है। पुरुषों को यह बात याद रखनी चाहिए। संसार में नारी एक महान शक्ति है। इस शक्ति के साथ कार्य करनेवाले पुरुषों के पास भी दैवी सद्गुण होने चाहिए। पारिवारिक जीवन का सुख स्त्री-पुरुष के बीच के पवित्र सम्बन्ध पर निर्भर है। उनका सम्बन्ध आत्मसंयम और अनुशासन पर आधारित होना चाहिए। भारतीय पौराणिक कथा में शिव और शक्ति के संयोग की वह सुन्दर कहानी है, जो आत्मसंयम पर आधारित है। इसी से महाबली कार्तिकेय के जन्म का मार्ग प्रशस्त हुआ, जो आगे चलकर देवताओं तथा मनुष्यों को राक्षसों के चंगुल से छुड़ाते हैं। स्त्री और पुरुष के बीच का पवित्र सम्बन्ध सबल, साहसी और बुद्धिमान सन्तति को जन्म देता है।'

आधुनिकतावादियों का विचार

आधुनिकतावादियों के मतानुसार आदर्शवाद तथा श्रेष्ठता की ये सारी मान्यताएँ निरर्थक हैं। उनके अनुसार, विवेकपूर्ण चिन्तन करनेवाले सभी लोगों को आधुनिक सभ्यता के साथ ही कदम मिलाकर चलने की ओर ध्यान देना चाहिए। माता-पिता की स्वेच्छाचारिता का नयी पीढ़ी पर कैसा दुष्प्रभाव हुआ है, यह बताते हुए अमेरिका की 'टाइम' पत्रिका के जुलाई, १९७७ के अंक में लिखा है - 'संयुक्त राज्य अमेरिका में समस्त गम्भीर अपराधों (हत्या, बलात्कार, जानलेवा आक्रमण, डकैती, तस्करी, चोरी, कारचोरी) में से आधे से अधिक १० से १७ वर्ष के बीच के किशोरों द्वारा किए जाते हैं।'

इसके सात वर्षों बाद प्रकाशित एक अन्य रिपोर्ट इन दुःखद घटनाओं में वृद्धि दर्शाता है।

अमेरिकी विद्यालयों में होनेवाली हिंसा व हत्याओं के विरुद्ध वहाँ के तत्कालीन राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का आह्वान किया था। १९७८ में किए गए एक अध्ययन के अनुसार प्रतिमाह लगभग ३० लाख बच्चे, विशेषकर स्कूल जानेवाले बच्चे, शहरों में हिंसक आक्रमण के शिकार हुए। शिक्षकों की अवस्था भी खेदजनक है। महिलाओं को जिन अमानवीय तरीकों से हिंसा का शिकार बनाया जाता है, उसका उल्लेख करने की यहाँ आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में द्रुत गति से हो रही उन्नति के बावजूद यह कैसा नैतिक पतन है !

इतिहास की शिक्षाएँ

पुरा काल में परम सत्य या ईश्वर और आध्यात्मिक आदर्शों में विश्वास ही भारतवासियों के उच्च नैतिक मानदण्डों के लिए उत्तरदायी था। आध्यात्मिकता सदैव भारतीय राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड रही है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

अतीत काल में विदेशी यात्रियों और पर्यटकों ने भारतीयों की उनकी नैतिक उत्कृष्टता के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आज के अधिकांश शिक्षित युवकों को इतिहास का ज्ञान नहीं है। उन्हें इन कथनों पर विचार करके इस प्रशंसा का आधार ढूँढ़ना चाहिए। लगभग दो हजार वर्षों पूर्व एरियन ने कहा था, 'कभी किसी भारतीय के मिथ्यावादी होने की शिकायत सुनने में नहीं आती।' लगभग १५०० वर्षों पूर्व भारत की यात्रा पर आए बौद्ध मतावलम्बी चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने मगध अंचल की अद्भुत समृद्धि तथा वहाँ के लोगों के उच्च नैतिकता-बोध की बड़ी प्रशंसा की है। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज की भारत-यात्रा के समय यहाँ के लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे। संस्कृत भाषा में 'ताला' शब्द का अर्थबोध करानेवाला कोई शब्द ही नहीं था। मेगस्थनीज ने लिखा, 'ये

लोग बताते हैं कि इन्होंने कभी अकाल या भुखमरी नहीं देखी। विश्व के अन्य भागों में युद्ध घोषित होने पर सामान्यतया दुश्मन की भूमि को बरबाद कर दिया जाता है, ताकि उसमें कोई फसल न उगाई जा सके। परन्तु इस देश (भारत) में अन्न के उत्पादकों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। उनको कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई जाती। पड़ोस में युद्ध छिड़े होने पर भी किसान अपने खेतों में काम करते रहते हैं। एक सैनिक किसी अन्य सैनिक को मार सकता है, परन्तु वह किसी किसान को स्पर्श तक नहीं करता। शत्रु की वस्तुओं में कभी आग नहीं लगाई जाती; किसी पेड़ को काटा नहीं जाता।'

मार्कोपोलो ने कहा था, 'भारतीय व्यापारी संसार में सर्वोत्तम और सर्वाधिक सत्यनिष्ठ हैं। किसी भी कारण से वे कभी झूठ नहीं बोलते।' ग्यारहवीं शताब्दी के मुसलमान यात्री इब्नीसी ने कहा था, 'भारतवासी अपनी नैतिक सत्यनिष्ठा और ईमानदारी के लिए विख्यात हैं।'

३०० वर्षों पूर्व भारत आनेवाले पुर्तगालियों ने कहा था, 'हिन्दू लोग बिना घोषणा किए युद्ध नहीं करते। वे वीर हैं, पर शत्रु के प्रति घृणाभाव नहीं रखते। युद्ध-विराम के दौरान वे एक ही नदी में स्नान और पान-सुपारी का आदान-प्रदान करते हैं। वे अपमान का जीवन मृत्यु से भी बदतर मानते हैं।'

'पुर्तगाली अधिकारी भारतीय कैदियों को उनके दूरस्थ गृहनगरों में फिरौती लाने के लिए भेजा करते थे। कुछ फिरौती लाने में समर्थ हो पाते थे और कुछ नहीं। उनके लिए भाग निकलने के सारे मौके उपलब्ध थे, परन्तु अपनी सत्यनिष्ठा के कारण और वचन-भंग या मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए - इस भाव से प्रेरित होकर, वे धर्मान्तरण या मृत्यु-दण्ड का जोखिम उठाकर भी लौट आया करते थे। इन लोगों की सत्यनिष्ठा और नैतिक बल को देखकर पुर्तगाली लोग भी चकित रह जाते थे।'

नैतिक उत्साह

भारतीय राष्ट्रीय कौंसिल के तत्कालीन अध्यक्ष अल्फ्रेड वेब ने कहा था, 'सिलाई मशीनों के आपूर्तिकर्ताओं के एजेण्टों के अनुभव के अनुसार अन्य देशों में कर्जदारों में से १०% उनका भुगतान नहीं करते थे। भारत में ऐसे लोगों की संख्या केवल १% थी। और वह १% भी भारत में रहनेवाले यूरोपियन लोगों के कारण थी। भारतीय दर्जी ऋण चुकाने में सजग और तत्पर रहते थे। ऐसा करने में विफल रहने पर वे सदैव सिलाई मशीन ही लौटा देते थे। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तथ्य यह था कि बाजार, दुकान, रेलवे स्टेशन आदि स्थानों में सौदागर अपने समक्ष रुपयों के खुले सन्दूक लेकर बैठते थे जिन्हें कभी कोई हाथ भी नहीं लगाता था। यूरोप में कोई ऐसा करने का सोच भी नहीं सकता।' कर्नल स्लीमैन का यह कथन भी उल्लेखनीय है, 'मेरे समक्ष ऐसे सैकड़ों मामले आ चुके हैं, जिसमें किसी भारतीय की सम्पत्ति, स्वतंत्रता या जीवन उसके झूठ बोलने पर निर्भर था, परन्तु उसने झूठ बोलने से इनकार कर दिया।'

चार्ल्स वोरसेलेस ने कहा था, 'मैंने भारतवर्ष में २२ वर्ष बिताए हैं और तत्पश्चात् १७ वर्ष इंग्लैंड में रह चुका हूँ। मैं जितना ही अपने देशवासियों को देखता हूँ, उतना ही मुझे भारतीय लोग अच्छे लगते हैं।' डा. ग्राहम ने कहा था, 'हिन्दू लोग जहाँ भी गए, उन्होंने वहाँ के लोगों के आध्यात्मिक स्तर को सुधारा।' सर जार्ज बर्डवुड ने कहा था, 'हिन्दू नारियाँ पवित्र और पतिव्रता हैं। स्वच्छता में भारतीय लोग संसार के अन्य सभी देशवासियों से महान हैं।' ये सब कथन प्राचीन भारतीय लोगों की नैतिक निष्ठा के साक्ष्य हैं।

कौटिल्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु थे, पर उन्होंने स्वयं को महलों के सुख-विलास से दूर रखकर एक छोटी-सी कुटिया में निवास

किया। सम्राट् अशोक महान वीर थे, पर कलिंग-युद्ध के भयानक संहार दृश्य और विधवाओं व अनाथों के हृदय-विदारक आर्तनाद ने उनके हृदय को द्रवित कर दिया। उन्होंने युद्ध को तिलांजलि देकर त्याग और सेवा के आदर्शों को अंगीकार कर लिया। उन्होंने अनुभव किया कि धर्म या अध्यात्म के पथ पर चलना ही सच्ची विजय है। उन्होंने अपने जीवन में धर्म और आध्यात्मिकता के उच्च आदर्शों को स्वीकार करके सभी सद्विचारवान लोगों से प्रभूत सम्मान प्राप्त किया। उन्होंने कहा था, 'किसी भी देश के नागरिकों को सहानुभूति, उदारता, सत्यनिष्ठा, स्वच्छता, दया और सज्जनता जैसे सदगुणों को अपनाना चाहिए। उन्हें राजा के आदेशों के कारण नहीं, अपितु स्वेच्छापूर्वक भलाई के पथ का अनुसरण करना चाहिए। बाहरी दबाव के जरिये आरोपित अच्छाइयों को अपनाने की अपेक्षा स्वयं ही चुना हुआ भला पथ बेहतर है।'।

विश्व-इतिहास के लेखक एच. जी. वेल्स ने लिखा है - 'विश्व के नरेशों और सम्राटों के नभ-मण्डल में सम्राट् अशोक का नाम ध्रुवतारे की भाँति चमकता है।' उनके कथन में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। सम्राट् अशोक का प्रेम और सहानुभूति विश्व के कोने-कोने में फैल गई थी। पूरे विश्व के इतिहास में सम्राट् अशोक की जोड़ का दूसरा कोई सम्राट् भला कहाँ मिल सकता है? उनकी निम्नलिखित उक्ति उनके मन तथा हृदय की एक झलक प्रस्तुत करती है, 'मैंने सड़कों के दोनों तरफ वट-वृक्ष लंगवाए हैं, ताकि मनुष्यों तथा पशुओं को उनकी शीतल छाया मिल सके। मैंने सड़कों के दोनों तरफ आम के बगीचे लगवाए हैं, हर मील पर कुएँ खुदवाए हैं और लोगों को ठहरने के लिए धर्मशालाओं का निर्माण कराया है।

‘माता-पिता की सेवा सत्कर्म है। पशुओं को न मारना या उन्हें कोई क्षति न पहुँचाना सत्कर्म है। मितव्ययिता के द्वारा भविष्य के

लिए कुछ बचा रखना सत्कर्म है।' सम्राट् अशोक 'देवानां प्रिय प्रियदर्शी' की उपाधि से प्रसिद्ध थे। उन्होंने कहा था, 'मैं भोजन कर रहा होऊँ, रनिवास या अन्तःपुर में होऊँ या पशुशाला, पालकी या उद्यान में - कहीं भी क्यों न होऊँ, लोग मेरे पास आकर अपनी समस्याओं के बारे में बता सकते हैं। मैं उनकी सभी समस्याओं के विषय में जानना चाहता हूँ।

'मैं, "देवानां-प्रिय प्रियदर्शी"', उपहार तथा आदर के साथ हर धर्म के लोगों, सभी भिक्षुओं और सभी गृहस्थों का सत्कार करता हूँ। अन्य धर्मों के लोगों का सर्वदा सम्मान करना चाहिए। इससे अपना धर्म सुदृढ़ बनता है और अन्य सभी धर्मों की सहायता होती है; अन्यथा दोनों ही धर्मों की हानि होती है। जो अपने धर्म के उत्थान के उत्साह में आकर केवल अपने धर्म का सम्मान करके, अन्य धर्मों की निन्दा करता है, वह अपने ही धर्म को हानि पहुँचाता है। मेल-मिलाप सदैव लाभकारी है। आपस में मेल-जोल रखने से अन्य धर्मों के बारे में जानकारी मिलती है और उनकी भी सहायता होती है। "देवानां-प्रिय" की यही इच्छा है। सभी धर्मों के लोगों को सच्चा ज्ञान तथा समृद्धि प्राप्त हो। अपने विशेष धर्म के प्रति निष्ठा रखनेवालों के मन में यह बात बैठा देनी होगी। सभी धर्म फलें-फूलें। "देवानां-प्रिय" के मत में ईश्वरोपासना या दान की अपेक्षा अन्य धर्मों का सम्मान करना कहीं बेहतर और महानतर कृत्य है।

'सभी लोग मेरी सन्तानें हैं। जैसे मैं इहलोक और परलोक में अपनी सन्तानों की सुख-समृद्धि की कामना करता हूँ, वैसे ही मैं सभी लोगों के सुख की भी इच्छा करता हूँ। आप लोग शायद दूसरों के प्रति मेरी शुभ-कामना की तीव्रता नहीं जानते।

'गर्भवती गायों, भेड़ों या सुअरों या दुधारू बकरियों को मांस के लिए न मारा जाए। छह महीने से कम आयु के बछड़ों को न मारा

जाए। मुर्गों को पीड़ित न किया जाए। जीवित प्राणियों को आग में न जलाया जाए। वन्य पशुओं को बाहर निकालने के लिए या किसी अन्य उद्देश्य से जंगलों को न जलाया जाए। किसी पशु के भोजनार्थ किसी अन्य जीवित प्राणी को न दिया जाए।'

क्या ये उक्तियाँ प्रमाणित नहीं करती कि सच्ची आध्यात्मिक पृष्ठभूमि या सच्चे धर्मभाव से निःस्वार्थ प्रेम की ऐसी धारा निःस्रित होती है, जो समग्र संसार का हित-साधन करती है?

सम्राट् हर्षवर्धन हर पाँचवें वर्ष अपनी सारी धन-सम्पदा विद्वानों व निर्धनों के बीच वितरित कर दिया करते थे। सम्राट् पुलकेशी द्वितीय के राज्य में आभूषणों से सुसज्जित नारियाँ निर्भय होकर सड़कों पर अकेली चल सकती थीं। राजा कृष्णदेव राय ने कवि अल्लसनी पेदना को अपने ही हाथों से रत्नजटित पादुका पहनायी थी। राजा स्वयं ही शोभायात्रा में कवि पेदना को पालकी में बैठाकर वहन करते थे। छत्रपति शिवाजी ने अनेक भयंकर युद्धों के द्वारा विजित अपने पूरे साम्राज्य का स्वामित्व अपने गुरु, समर्थ रामदास, के भिक्षापात्र में डालने में जरा भी संकोच नहीं किया। जब उनके सैनिक अधिकारियों ने उपहार-स्वरूप एक सुन्दर युवती लाकर उन्हें भेंट की, तो शिवाजी ने उसे अस्वीकार करके ससम्मान उसके पति के पास भेज दिया। यद्यपि उन्होंने मुसलमान बादशाहों की क्रूरता और हिंसा देखी थी, तथापि उन्होंने कभी किसी मसजिद को क्षति नहीं पहुँचाई और न ही कुरान का अनादर किया। इस प्रकार शिवाजी ने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की एक आदर्श भावना प्रकट की। दुर्गादास राठौर ने अपने पास बन्दी के रूप में रखी औरंगजेब की पौत्री को पढ़ाने के लिए सुदूर अजमेर से एक मुसलमान प्रशिक्षिका को बुला भेजा था। राजपूत योद्धाओं की वीरता समस्त संसार में अद्वितीय थी। ऐसी उत्कृष्ट भावना के पीछे कौन-

सा प्रभाव सक्रिय था? क्या यह हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा में निहित उच्च आदर्श ही नहीं था?

सुस्पष्ट विरोधाभास

कन्नड़ भाषा में श्री कोटा वसुदेव कारन्थ द्वारा लिखित 'दान करो' पुस्तक बताती है कि कैसे पाश्चात्य धन-लोलुपों ने सदगुण के इस उच्च आदर्श का बंटोधार कर दिया है -

'पाश्चात्य देशों के ईसाई समुदाय ने अपनी नौसेना, तोपों तथा बन्दूकों की सहायता से सम्पूर्ण संसार का विजय-अभियान शुरू किया। उन्होंने जिस देश की धरती पर पैर रखा, उसी पर आधिपत्य कर लेना चाहा। उनका विश्वास था कि उन्हीं के राजा को उनके द्वारा विजित सभी देशों पर शासन करने का अधिकार था। उन्होंने उन देशों के स्थानीय निवासियों को कभी उस देश का उचित स्वामी नहीं माना। उनका विचार था कि विजेताओं के लिए उपनिवेशों की प्रजा की लूट-पाट, उन्हें दास बनाना, उनसे अपना समस्त कार्य कराना तथा उपनिवेशों की समस्त धन-सम्पदा को बलात् अपने देश ले जाना सर्वथा स्वाभाविक तथा उचित है।

'इसी तरह की दुर्भावना से उत्तरी अमेरिका पर विजय की गयी। वहाँ की आदिवासी रेड-इंडियन प्रजा व्यापक लूट-पाट और शोषण का शिकार हुई और अपने ही देश में अल्पसंख्यक बनकर रह गई। विशाल दक्षिण अमेरिकी महाद्वीप स्पेन का एक उपनिवेश बन गया। श्वेत लोग आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के सर्वोत्तम भूखण्डों पर कब्जा करके वहाँ बस गए। श्वेत मालिकों के लिए दासोचित कर्म करना ही अश्वेतों के लिए हितकर कर्म माना गया। जब पाश्चात्य ईसाई लोग संसार भर के विभिन्न क्षेत्रों में लूट-पाट कर रहे थे, तभी उनके पुरोहितों ने उपनिवेशों की प्रजा को सभ्य बनाने के अपने तथाकथित

उद्देश्य के साथ उनका बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन आरम्भ किया। उन्होंने लूट के माल का एक अंश स्कूलों तथा अस्पतालों को दान कर दिया, परन्तु यह सेवाभाव से नहीं, अपितु केवल ईसाई धर्म को सर्वोत्तम सिद्ध करने तथा अपने धर्ममत को मजबूत करने के लिए किया गया।'

इस सन्दर्भ में अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में समाज-शास्त्र के विभागाध्यक्ष एवं प्रसिद्ध प्राध्यापक प्रिन्सिम सोरोकिन की पुस्तक 'The Reconstruction of Humanity' ('मानवता का पुनर्निर्माण') से यह उद्धरण दिया जा सकता है - 'गत कुछ सदियों के दौरान वस्तुतः पाश्चात्य ईसाई जगत ही सर्वाधिक युद्धोन्मत्त, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक लोभी और मानवता का सर्वाधिक अधिकारोन्मत्त वर्ग रहा है। इन सदियों के दौरान पाश्चात्य ईसाइयत ने अन्य सभी महाद्वीपों पर आक्रमण किया। इसके पुरोहितों और व्यापारियों ने इसकी सेनाओं का अनुसरण करके निरन्तर आदिम जातियों से लेकर गैर-ईसाई देशों तक के अधिकाधिक गैर-ईसाई लोगों को अपने अधीन करके व्यापक लूट-पाट की। इस विचित्र प्रकार के ईसाई "प्रेम" द्वारा अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व एशिया की जनता को पराधीन बनाया गया। क्रूर हत्याएँ, दास बनाने की प्रथा, उत्पीड़न, पराजित जातियों के सांस्कृतिक मूल्यों, संस्थाओं तथा जीवन-पद्धति का विनाश, मद्यपान की संस्कृति का विस्तार, यौन-रोग, व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता और ऐसी अन्य प्रवृत्तियों के द्वारा ही सामान्यतः इस विचित्र "प्रेम" को अभिव्यक्ति मिली। वैसे पाश्चात्य लोगों ने उन्हें (अस्पताल और चिकित्सा सेवाओं के रूप में) सहायता और संरक्षण, प्रेमपूर्ण सहानुभूति, शिक्षा, स्वाधीनता और लोकतंत्र के रूप में सच्ची ईसाइयत को कुछ हद तक प्रदान तो किया है, परन्तु ये वरदान मानो "घड़े में एक बूँद" ही साबित हुई हैं।'

पुरातन ढूँठ पर नयी कोपलें

हमारी संस्कृति की जड़ें अब भी मजबूत हैं, यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि विगत दो शताब्दियों की प्रतिकूल अवस्था के बावजूद इसने अपनी पारिपार्श्विक बाधाओं को पार करके स्वस्थ फल उत्पन्न किए हैं। घोर संकट के समय लोगों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए आध्यात्मिक महापुरुष पैदा हुए। यह कोई बेसिर-पैर की बात नहीं है और न ऐसी घटनाएँ केवल महाकाव्यों के युग तक ही सीमित हैं।

जब अंग्रेजों का आधिपत्य सुस्थापित हो चुका था, भारतीय सामरिक पराक्रम क्षीण हो चुका था, आर्थिक दशा अवनत हो रही थी, आध्यात्मिक मूल्यों को व्यर्थ कहकर उनकी निन्दा की जा रही थी और भारतवासी विदेशियों के रंग-ढंग की नकल कर रहे थे, इसी संक्रमण-काल में दक्षिणेश्वर के देवमानव श्रीरामकृष्ण आध्यात्मिक क्षितिज पर प्रकट हुए। वे १९वीं सदी में ब्रिटिश भारत की राजधानी कोलकाता में अवतीर्ण हुए। उन्होंने विश्वविद्यालयों के आधुनिक शिक्षाप्राप्त संशयवादियों को चुनौती दी और उन्हें प्रशिक्षित करके सत्य के आलोक में विभिन्न धर्मों के महत्त्व को समझाया। उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिए, अपितु अपने निजी अनुभवों से दिखा दिया कि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित प्राचीन भारतीय परम्परा में आधुनिक विज्ञान द्वारा उठाए गए सभी प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं। उन्होंने केवल धर्म के सारतत्त्व की ही शिक्षा दी।

श्रीरामकृष्ण के प्रधान शिष्य और प्राचीन भारतीय परम्परा के भाव-विग्रह, स्वामी विवेकानन्द, शिकागो की धर्म-महासभा में इसके ओजपूर्ण प्रवक्ता बने। उन्होंने वहाँ पर प्राचीन भारतीय चिन्तन का ध्वज फहराया। इस प्रकार उन्होंने भारतवासियों के स्वाभिमान की

पुनर्प्राप्ति की। यह एक महान घटना थी, जिसने भारतवासियों को अपना वैशिष्ट्य सुरक्षित रखकर विदेशी शासन से मुक्ति की कामना और उत्कट राष्ट्रीय भावना के विकास हेतु प्रेरित किया। यह एक ऐसी घटना थी, जिसने लोगों के भीतर सुदृढ़ देशभक्ति की भावना जगाई और समस्त देशवासियों के हितार्थ बलिदान और सेवा का सन्देश दिया। बाद में, महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत ने ऐसे अनूठी विधि से स्वाधीनता हासिल की, जैसी कि विश्व के किसी भी अन्य देश ने कभी प्राप्त नहीं की थी। विश्व के सभी महान लोग गाँधीजी की नैतिक निष्ठा, आध्यात्मिक उत्कृष्टता और बलिदान तथा सेवा-भाव को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। पाश्चात्य दार्शनिकों ने कहा था, 'केवल भारत ही ऐसे महान व्यक्ति को उत्पन्न कर सकता है।'

सच्चा आध्यात्मिक जीवन बितानेवाले रमण महर्षि तथा श्री अरविन्द ने अनेक साधकों को प्रेरणा दी। ये २०वीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक जीवित रहे। शिक्षित लोगों को स्मरण होगा कि अन्य देशों के सत्तासीन राजनीतिक नेतागण लोगों से कैसा बर्ताव करते थे। इसे विस्मृत नहीं किया जा सकता कि स्टालिन, मुसोलिनी और हिटलर जैसे तानाशाहों ने अपने शासनकाल में हजारों नर-नारियों को पीड़ित और विनष्ट किया। परन्तु दूसरी ओर, लम्बे समय तक भारत के प्रधानमन्त्री रहे जवाहरलाल नेहरू भारत में लोकतंत्र की रक्षा और विश्व में शान्ति-स्थापना हेतु सतत प्रयत्नशील रहे। क्या ऐसा हमारी सांस्कृतिक परम्परा के कारण ही नहीं हुआ? वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्किकता या आधुनिकता चाहे जितनी भी मजबूत क्यों न रही हो, हमारे संस्कृति का तरुवर अटल रहकर नयी-नयी कोपलें प्रस्फुटित करता रहा है। हमारे इतिहास ने इस बात को बारम्बार दिखा दिया है।

अपनी संस्कृति और आध्यात्मिकता की शक्ति से परिचित हुए बिना हम अपने उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं कर सकते। हमारी

संस्कृति और आध्यात्मिकता ने ही राष्ट्रहित के लिए कार्य करने हेतु हमें एकीभूत और प्रेरित किया है ।

आध्यात्मिकता : प्रेम का स्रोत

प्रेम की महत्ता पर चर्चा करते समय हमें अप्रत्यक्ष रूप से उसका उद्गम धर्म में ही मिला था । हर व्यक्ति को अनुभव होना चाहिए कि आध्यात्मिकता के बिना मानवता का कोई भविष्य ही नहीं है । यह सर्वज्ञात तथ्य है कि निःस्वार्थ या दिव्य प्रेम आत्मज्ञानी महापुरुषों के हृदय में ही विशेष रूप में अभिव्यक्त होता है । यद्यपि हमारे देश में असंख्य महापुरुषों का आविर्भाव हो चुका है, तथापि हमें ध्यान रखना होगा कि हर देश में ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने लोगों को आध्यात्मिक रूप से सत्पथ पर परिचालित किया । प्रत्येक व्यक्ति को इस दिव्य या निःस्वार्थ प्रेम का आचरण करना चाहिए और हर व्यक्ति ऐसा अवश्य कर सकता है । आध्यात्मिक शिक्षा का अभाव संसार को विनाश के कगार पर ले जा रहा है ।

लाखों माताओं के प्रेम से युक्त एक हृदय

महापुरुषों का हृदय हजारों माताओं के प्रेम तथा कोमलता से युक्त होता है । स्वामी विवेकानन्द इसके गौरवशाली उदाहरण हैं । उनका प्रेम कितना गहरा और व्यापक था ! शिकागो की धर्म-महासभा में अपने ओजपूर्ण भाषण के बाद जिस दिन वे प्रसिद्धि के शिखर पर थे और वहाँ के धनवानों ने उनके स्वागतार्थ अपने घरों के द्वार खोल दिए थे, उस रात उनकी आँखों में निद्रा का नामो-निशान तक नहीं था । उस रात वे अपनी ख्याति या अपूर्व वक्तृता के बारे में नहीं सोच रहे थे, बल्कि अपने उसे देशवासियों के लिए गेते रहे, जिन्हें भोजन का एक ग्रास तक नहीं मिलता । वे उन

पुनर्प्रतिष्ठा की। यह एक महान घटना थी, जिसने भारतवासियों को अपना वैशिष्ट्य सुरक्षित रखकर विदेशी शासन से मुक्ति की कामना और उत्कट राष्ट्रीय भावना के विकास हेतु प्रेरित किया। यह एक ऐसी घटना थी, जिसने लोगों के भीतर सुदृढ़ देशभक्ति की भावना जगाई और समस्त देशवासियों के हितार्थ बलिदान और सेवा का सन्देश दिया। बाद में, महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत ने ऐसे अनूठी विधि से स्वाधीनता हासिल की, जैसी कि विश्व के किसी भी अन्य देश ने कभी प्राप्त नहीं की थी। विश्व के सभी महान लोग गाँधीजी की नैतिक निष्ठा, आध्यात्मिक उत्कृष्टता और बलिदान तथा सेवा-भाव को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। पाश्चात्य दार्शनिकों ने कहा था, 'केवल भारत ही ऐसे महान व्यक्ति को उत्पन्न कर सकता है।'

सच्चा आध्यात्मिक जीवन बितानेवाले रमण महर्षि तथा श्री अरविन्द ने अनेक साधकों को प्रेरणा दी। ये २०वीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक जीवित रहे। शिक्षित लोगों को स्मरण होगा कि अन्य देशों के सत्तासीन राजनीतिक नेतागण लोगों से कैसा बर्ताव करते थे। इसे विस्मृत नहीं किया जा सकता कि स्टालिन, मुसोलिनी और हिटलर जैसे तानाशाहों ने अपने शासनकाल में हजारों नर-नारियों को पीड़ित और विनष्ट किया। परन्तु दूसरी ओर, लम्बे समय तक भारत के प्रधानमन्त्री रहे जवाहरलाल नेहरू भारत में लोकतंत्र की रक्षा और विश्व में शान्ति-स्थापना हेतु सतत प्रयत्नशील रहे। क्या ऐसा हमारी सांस्कृतिक परम्परा के कारण ही नहीं हुआ? वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किकता या आधुनिकता चाहे जितनी भी मजबूत क्यों न रही हो, हमारी संस्कृति का तरुवर अटल रहकर नयी-नयी कोपलें प्रस्फुटित करता रहा है। हमारे इतिहास ने इस बात को बारम्बार दिखा दिया है।

अपनी संस्कृति और आध्यात्मिकता की शक्ति से परिचित हुए बिना हम अपने उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं कर सकते। हमारी

संस्कृति और आध्यात्मिकता ने ही राष्ट्रहित के लिए कार्य करने हेतु हमें एकीभूत और प्रेरित किया है ।

आध्यात्मिकता : प्रेम का स्रोत

प्रेम की महत्ता पर चर्चा करते समय हमें अप्रत्यक्ष रूप से उसका उद्गम धर्म में ही मिला था । हर व्यक्ति को अनुभव होना चाहिए कि आध्यात्मिकता के बिना मानवता का कोई भविष्य ही नहीं है । यह सर्वज्ञात तथ्य है कि निःस्वार्थ या दिव्य प्रेम आत्मज्ञानी महापुरुषों के हृदय में ही विशेष रूप में अभिव्यक्त होता है । यद्यपि हमारे देश में असंख्य महापुरुषों का आविर्भाव हो चुका है, तथापि हमें ध्यान रखना होगा कि हर देश में ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने लोगों को आध्यात्मिक रूप से सत्पथ पर परिचालित किया । प्रत्येक व्यक्ति को इस दिव्य या निःस्वार्थ प्रेम का आचरण करना चाहिए और हर व्यक्ति ऐसा अवश्य कर सकता है । आध्यात्मिक शिक्षा का अभाव संसार को विनाश के कगार पर ले जा रहा है ।

लाखों माताओं के प्रेम से युक्त एक हृदय

महापुरुषों का हृदय हजारों माताओं के प्रेम तथा कोमलता से युक्त होता है । स्वामी विवेकानन्द इसके गौरवशाली उदाहरण हैं । उनका प्रेम कितना गहरा और व्यापक था ! शिकागो की धर्म-महासभा में अपने ओजपूर्ण भाषण के बाद जिस दिन वे प्रसिद्धि के शिखर पर थे और वहाँ के धनवानों ने उनके स्वागतार्थ अपने घरों के द्वार खोल दिए थे, उस रात उनकी आँखों में निद्रा का नामो-निशान तक नहीं था । उस रात वे अपनी ख्याति या अपूर्व वक्तृता के बारे में नहीं सोच रहे थे, बल्कि अपने उन देशवासियों के लिए रोते रहे, जिन्हें भोजन का एक ग्रास तक नहीं मिलता । वे उन

देशवासियों की मदद करना चाहते थे। उनका हृदय करुणा व सहानुभूति का महासागर था।

उन्होंने कठोर परिश्रम के द्वारा बेलूड़ मठ स्थापित किया था। एक बार कोलकाता नगर प्लेग की महामारी का शिकार हो गया। स्वामीजी लोगों के दुःख-कष्ट से इतने अधीर व विचलित हो गए कि तत्काल राहत-कार्य में कूद पड़े। उन्होंने घोषणा की, 'लोगों की सहायता करने के लिए मैं अपने मठ को बेच दूँगा। हम लोग तो पेड़ों के नीचे भी रह लेंगे।' दुःख-कष्ट से पीड़ित सन्तान के कराहने पर माता अपने हृदय में अवर्णनीय पीड़ा का अनुभव करती है। हजारों माताओं के प्रेम की तीव्रता को धारण करनेवाले महापुरुषों द्वारा अनुभूत पीड़ा की तीव्रता की कोई सहज ही कल्पना कर सकता है।

एक बार स्वामी विवेकानन्द बेलूड़ मठ में थे। रात के कोई एक बजे वे अपने कमरे के बरामदे में चहलकदमी कर रहे थे। थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण के एक अन्य शिष्य और स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी विज्ञानानन्द वहाँ आए और उनसे पूछा, 'स्वामीजी, अभी तक आप सोये नहीं?' स्वामीजी ने कहा, 'मैं तो सो गया था, परन्तु कुछ देर बाद अनेक लोगों के दर्दनाक क्रन्दन को सुनकर मैं जाग उठा।' विज्ञानानन्द इस बात का मर्मार्थ नहीं समझ सके और वे कुछ भ्रमित से होकर अपने कमरे में लौट आए। अगले दिन सुबह अखबारों से पता चला कि हजारों मील दूर भूमध्य-सागर के पास आए तेज भूकम्प ने हजारों लोगों की बलि ले ली है। उन लोगों की मृत्यु के क्षण की हृदय-विदारक चीत्कार के स्वर से स्वामी विवेकानन्द का मातृसुलभ हृदय स्पन्दित हो उठा था।

सामान्यतः एक माता ही अपनी दृष्टि से ओझल रहनेवाली सन्तानों या प्रियजनों की पीड़ा का अनुभव करती है, पर वह वैसे ही दूसरों की पीड़ा को अनुभव नहीं कर पाती। पर आत्मसाक्षात्कारी

महापुरुष हर समय दूसरों की पीड़ा की अनुभूति करते रहते हैं। वे बिना किसी प्रत्याशा के दिन-रात निष्काम भाव से लोगों की पीड़ा दूर करने हेतु सचेष्ट रहते हैं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि सांसारिकता से परे रहनेवाले ये महापुरुष निःस्वार्थ भाव से दूसरों को दुःख-कष्टों से बचाते रहते हैं। यह एक महान सत्य है।

पर-दुःख-कातर हृदय

स्वामीजी ने कहा था, 'नेता बनने की इच्छा रखनेवालों के पास संवेदनशील हृदय होना चाहिए।' उनके मतानुसार, 'बड़े कार्यों के लिए तीन चीजों की जरूरत होती है। पहली है हृदय की अनुभव-शक्ति। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देवताओं और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें आज पशुतुल्य हो गई हैं? क्या तुम अनुभव करते हो कि आज लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं और लाखों लोग सदियों से भूखों मरते आए हैं? क्या यह सब सोचकर तुम बेचैन हो जाते हो? क्या इससे तुम्हारी आँखों की नींद उड़ जाती है? क्या यह चिन्ता तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है? क्या यह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गई है? क्या इसने तुम्हें पागल-सा बना दिया है? इस देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति और यहाँ तक कि अपने शरीर तक की सुध भूल चुके हो? क्या तुम्हारी ऐसी अवस्था है? यदि "हाँ", तो तुमने देशभक्त बनने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है — केवल पहली ही सीढ़ी पर। ... क्या तुमने इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस

जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए दो सांत्वनादायी शब्दों को खोजा है? ... परन्तु इतने से ही काम पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्नों को लॉघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाए, तो भी तुम जिसे सत्य समझते हो, क्या उसे पूरा करने का साहस करोगे? ... तो भी क्या तुम उसमें लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे? क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? ये तीन चीजें यदि तुममें हैं, तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकेगा।'

यदि आज के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक नेताओं में इस प्रेम और सहानुभूति का रंचमात्र भी प्रकट हो जाए, तो समग्र समाज का उत्थान हो जाएगा।

करुणा का विकास करो

महाभारत में लिखा है कि अपने चारों ओर रहनेवाले जीवों के प्रति करुणा, सहानुभूति और प्रेम प्रदर्शित करना ही सर्वोच्च धार्मिक साधना है।

युधिष्ठिर अपने प्रिय कुत्ते को मर्त्यलोक में छोड़कर स्वर्ग जाने के इच्छुक नहीं थे। वे चरित्र की इस अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सदाचारपरायणता के एक उदाहरण बन गए। यद्यपि वह उनका कुत्ता नहीं था, तो भी युधिष्ठिर उसे छोड़कर अकेले स्वर्ग जाने को तैयार नहीं हुए। यह घटना उनकी सहानुभूति, करुणा एवं पर-दुःख-कातरता दर्शाती है। उनकी करुणा ने ही उन्हें महापुरुष बना दिया।

हम परम करुणामय ईश्वर से सदैव अपने ऊपर दया करने, कृपा करने तथा रक्षा करने की विनती करते हैं। परन्तु क्या हम इस विषय में सचेत हैं कि हमें उन्हीं ईश्वर की सन्तानों, अपने आसपास के

समस्त प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए? यदि हम उनकी परवाह नहीं करते, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारी प्रार्थना निकृष्ट और स्वार्थपूर्ण है? क्या यह वर्ष में एक बार गाय की पूजा करके पुण्य अर्जित करने और बाकी दिन उसकी उपेक्षा करने के समान नहीं है? दार्शनिक शॉपेनहावर ने कहा है कि पशुओं के प्रति क्रूरता दिखानेवाले लोग कभी सज्जन नहीं हो सकते।

यह दिखाने के लिए असंख्य उदाहरण विद्यमान हैं कि पशु अपने प्रति किए गए किसी सदाचार को न तो कभी भूलते हैं और न ही कभी अपने हितकारकों के प्रति कृतघ्नता दिखाते हैं। एक बार गोआ के एक बाजार के मार्ग पर एक उन्मत्त हाथी सर्वनाश कर रहा था और अपने सामने आनेवाली सभी चीजों को नष्ट कर रहा था। मार्ग में उसे एक बच्चा मिला। हाथी ने उसे सूँड़ से उठाकर, बिना कोई क्षति पहुँचाए, एक दुकान के बरामदे में रख दिया और पुनः विनाश का कहर ढाने लगा। कई वर्षों पूर्व उस हाथी के सड़क पर निकलने पर उस बच्चे की माँ उसे कुछ-न-कुछ खिलाया करती थी। अपनी पागलपन की अवस्था में भी हाथी वह उपकार नहीं भूल सका था।

चित्रकूट में, पयोष्णी नदी के तट पर एक अन्य घटना घटी थी। एक बालक फिसलकर नदी में गिर गया और धारा में बहने लगा। बालक की माँ उसे गिरते देखकर सहायता के लिए चिल्ला रही थी। सहसा उसने किसी के नदी में कूदने की आवाज सुनी और वह उसी दिशा में देखने लगी। एक बड़ा बन्दर नदी में कूद पड़ा था। उसने बच्चे को उठाकर उसकी माँ के पास रखा और तत्काल गायब हो गया।

ऐसी कई घटनाएँ सुनने में आती हैं, जिनमें पिछले विश्वयुद्ध के दौरान कुत्तों ने सैनिकों की कई प्रकार से सहायता की थी। बेल्जियम की पुलिस के एक कुत्ते ने एक वर्ष की अवधि में दो हजार लोगों की जान बचाने का चमत्कार किया था। यहाँ तक कि मूक पशु भी

निश्चित रूप से प्रेम को समझते हुए उसका आदान-प्रदान कर सकते हैं। पशुओं के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करना अनुचित है। परन्तु स्वार्थी लोग अपनी सहायता कर चुके पशुओं के प्रति भी कृतघ्नतापूर्ण व्यवहार करते हैं। इंग्लैंड में पशुओं के प्रति दुर्व्यवहार करनेवालों पर जुर्माना लगाया जाता है। यद्यपि इंग्लैंड की जनसंख्या हमारे देश की अपेक्षा दसगुनी कम है, तो भी वहाँ ६३ चिड़ियाघर, ७९ पशु-चिकित्सालय और १८० पशु-कल्याण-केन्द्र हैं। वहाँ ऐसे अनेक चिड़ियाघर हैं, जो सरकार से किसी भी तरह का अनुदान पाए बिना ही चलाए जाते हैं। बीमार पशुओं की चिकित्सा के लिए वहाँ सचल चिकित्सालय हैं। ऐसी सूचन है कि इंग्लैंड में प्रति वर्ष लगभग २,९०,००० पशुओं की चिकित्सा की जाती है। वस्तुतः यूरोपवासियों का प्रकृति-प्रेम अनुकरणीय है। गौतम बुद्ध ने कहा था, 'पृथ्वी पर जन्मा हर प्राणी सुख चाहता है। सबके प्रति दया रखो।' 'दया के बिना धर्म नहीं होता' - कहकर बसवन्ना ने लोगों से दयालु और सहानुभूतिशील बनने का आह्वान किया।

अहिंसा की अभिव्यक्ति

योगसूत्रों के रचयिता महर्षि पतंजलि कहते हैं कि अहिंसा-भाव में प्रतिष्ठित व्यक्ति के सान्निध्य में आकर पशु-पक्षी भी अपने स्वाभाविक वैर-भाव को त्याग देते हैं। भारतीय काव्य में, आश्रमों के वर्णन में हम पढ़ते हैं कि वहाँ बाघ और हिरण एक साथ निर्भय व स्वच्छन्द भाव से विचरण किया करते थे। यह मात्र एक काव्यात्मक अतिशयोक्ति नहीं, अपितु सत्य है।

अहिंसा का अर्थ विचारों और कर्मों द्वारा किसी अन्य को क्षति पहुँचाने से विरत रहना मात्र नहीं है। इसमें सबके प्रति विशुद्ध प्रेम-भाव भी आ जाता है। प्रेम, मैत्री और दया अहिंसा के अन्य पहलू

हैं। जब साधु-सन्त अहिंसा की साधना करते हैं, तो उनके हृदय से पवित्र प्रेम की धाराएँ निःसृत होती हैं। ऐसे उदाहरण दिखते हैं, जिनमें ध्यान, प्रार्थना जैसी साधना न करनेवाले लोग भी इन महापुरुषों के सान्निध्य में शान्ति और सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें ऐसे महात्माओं के सान्निध्य में पशु-पक्षी भी अतीव सुख तथा निर्भयता का अनुभव करते हैं।

जब रमण महर्षि अपने आश्रम में रहते थे, तो जंगली पशु-पक्षी निर्भय होकर उनके हाथों से खाने की चीजें लेकर खाया करते थे। पशु-पक्षियों के प्रति उनका प्रेम बेमिसाल था। पशुओं के लिए वे उभयनिष्ठ नपुंसक लिंग का प्रयोग न करके पुल्लिंग या स्त्रीलिंग-वाचक सर्वनाम का प्रयोग किया करते थे। यदि वे पूछते, 'क्या बच्चों का भोजन हो गया?' तो इसका अर्थ होता, 'क्या कुत्तों ने खा लिया?' यदि वे पूछते, 'क्या लक्ष्मी ने भोजन किया?' तो इसका अर्थ होता, 'क्या लक्ष्मी नाम की गाय को चारा मिला?' वे मोरों के आवाज की नकल करके उन्हें बुलाया करते और मोर उनके पास आकर दाल, चावल या आम लेकर जंगल में वापस लौट जाते। गौरैयाँ उनके हाथों पर बैठी उनकी हथेली से दाना चुगा करतीं। अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व यद्यपि वे तीव्र पीड़ा से ग्रस्त थे, तो भी मोरों का कलरव सुनकर उन्होंने पूछा, 'क्या उनका रोज का भोजन उन्हें मिल गया है?'

वे आश्रम परिसर में कभी साँपों को मारने की अनुमति नहीं देते थे। वे कहते, 'हम यहाँ उनके राज्य में आए हैं। अतः उन्हें हानि पहुँचाना उचित नहीं है। वे भी हमें हानि पहुँचाना नहीं चाहते।' जब एक बार वे एक पहाड़ी पर बैठे थे, तो एक नाग उनके पाँवों पर चढ़कर, वहाँ थोड़ा रेंगकर चुपचाप चला गया। वे अविचलित और निर्भय बैठे रहे। बाद में जब उनसे पूछा गया कि नाग के रेंगने पर उनको कैसा अनुभव हुआ, तो उन्होंने बताया, 'शीतल, मुलायम।'

आश्रम में कमला नामक एक बुद्धिमती कुतिया थी। महर्षि उसे आश्रम के भक्तों और अतिथियों को पहाड़ी के चारों ओर घुमा लाने को कहते। वह उन लोगों को आश्रम के आसपास की मूर्तियों, सरोवरों और मन्दिरों का दर्शन करा लाती।

रमण महर्षि परम ज्ञानी के सहज सद्गुणों से परिपूर्ण थे। वे ज्ञान, निर्भयता, प्रेम, दया और सहानुभूति के आगार थे। उन्होंने पशुओं के व्यवहारों, आवाजों तथा उनके सामाजिक आचारों का बड़ी गहराई से निरीक्षण किया था। बन्दरों के बीच कोई झगड़ा होने पर वे हस्तक्षेप करते और फिर महर्षि की उपस्थिति में ही बन्दर अपने झगड़े सुलझा लेते। सामान्यतः जंगलों से भागकर गाँवों में आनेवाले बन्दर पकड़ लिए जाते हैं और लोग उन्हें पालते-पोसते हैं। फिर कभी-कभी उन बन्दरों के जंगल में लौट आने पर जंगल के बन्दर उन्हें अस्वीकार करके उन्हें बहिष्कृत कर देते। परन्तु रमण महर्षि का सत्संग पा चुके बन्दर इस निर्वासन से मुक्त थे। जंगल के बन्दर ऐसे बन्दरों का अपनी जाति में स्वागत करके उन्हें स्वीकार कर लेते। एक बार महर्षि जंगल में घूमने गए। जब उन्हें भूख लगी, तो न जाने कहाँ से वहाँ बन्दरों का एक झुण्ड आ गया। वे बन्दर एक फलदार वृक्ष पर चढ़ गए और कुछ फल नीचे गिराकर, उन्हें उठाए बिना ही वहाँ से चले गए।

प्रेम की शक्ति असीम है! भगवान रमण महर्षि सबके मित्र थे। उन्होंने विश्व के सामने पशु-पक्षियों को परम स्नेह की दृष्टि से देखने का आदर्श प्रस्तुत किया।

परन्तु साँपों से मत खेलो

यह सच है कि रमण महर्षि अविचलित और निर्भय होकर बैठ रहे और नाग उन्हें कोई क्षति पहुँचाए बिना ही उनके पाँवों के ऊपर से चला गया। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वन्य पशु

हमेशा ही मानवीय दया और उदारता का वैसा ही प्रत्युत्तर देते हों । एक प्रौढ़ व्यक्ति ने एक घटना सुनायी थी । बाढ़ के दिनों में एक बार एक गाँव पूर्णतः जलमग्न हो गया । तब एक आदमी और एक नाग एक पेड़ पर रहने लगे । बाढ़ का जल घटने पर, उस व्यक्ति को खोजनेवाले उसके बन्धु उसे पेड़ पर पाकर उसे बचाने आए । वहाँ से जाते समय उस व्यक्ति ने बाढ़ के दिनों में उसे हानि न पहुँचाने के लिए नाग के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हुए प्रेम और स्नेह-भाव के साथ नाग को सहलाना चाहा । परन्तु नाग इस पर क्रोधित हो गया । उसने फुफकारते हुए फन उठाया और उसे जोरों से डँस लिया । वह आदमी तत्काल मर गया ।

द्वेष-भाव रूपी दोष

वैरभाव का बोधक 'द्वेष' शब्द संस्कृत के 'द्विष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है दुगुना विषैला । मन में घृणा-भाव का पोषण करनेवाले लोग न केवल स्वयं को जलाते हैं, अपितु उन्हें भी जलाते हैं, जो उनकी घृणा के पात्र हैं । द्वेष या घृणा मनुष्य को विष का भण्डार बना देती है । वह खुद विनष्ट होकर दूसरों को भी विनष्ट कर देता है । घृणा एक ऐसी नकारात्मक शक्ति है, जो सब कुछ बरबाद कर देती है ।

प्रेम आपसी संवेदना, आपसी सहमति तथा स्वीकृति, आपसी समझ और सौहार्द उत्पन्न करता है, परन्तु घृणा आपसी द्वेष, दुर्व्यवहार, संघर्ष, गलतफहमी, उदासीनता तथा ईर्ष्या को बढ़ावा देती है । यह मनुष्य को विनाश के कगार पर पहुँचाकर उसका सर्वनाश कर देती है । यदि यह संसार ईर्ष्या और घृणा से मुक्त होता, तो साक्षात् स्वर्ग ही बन जाता !

यह कैसी विचित्र बात है कि आजकल संसार में हर व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में केवल घृणा की आग को ही हवा दे रहा है । सन्तों का

कहना है कि घृणा भक्ति का शत्रु है। जब तक हृदय में घृणा को आश्रय मिलता है, तब तक उसमें भक्ति के लिए कोई स्थान न होगा। यदि आप यथार्थ रूप से धार्मिक हैं, यदि आप ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति-श्रद्धा रखते हैं, तो आप किसी से भी कभी घृणा नहीं करेंगे। निःस्वार्थ प्रेम से परिपूर्ण हृदयवाले साधु-सन्त सबके ऊपर समान भाव से प्रेम तथा आशीर्वाद का वर्षण करते हुए मानवता की सहायता करते हैं। दुष्ट लोग ही घृणा का विष फैलाकर समाज का स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं।

ईर्ष्या की आग

ईर्ष्या घृणा की चिरसंगिनी है। ये दोनों सदैव साथ-साथ विचरण किया करती हैं। पूर्णतः अस्वास्थ्यकर ईर्ष्या-भावना से ग्रस्त लोग बेचैन तथा परेशान-से रहते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो दूसरों की सफलता देखते ही बेचैन हो जाते हैं।

मानव के छह शत्रुओं में ईर्ष्या का छठा स्थान है। यह असीम क्षतिकारक है। ऐसे लोग भी हुए हैं, जिन्होंने काम और क्रोध पर विजय पा ली है। परन्तु वे लोग भी ईर्ष्या से ग्रस्त होकर अन्याय और छल-कपट करने से नहीं हिचकते। ईर्ष्या से पूर्णतः मुक्त रहनेवाला व्यक्ति ही सचमुच महान है।

स्वामी विवेकानन्द ने 'ईर्ष्या से मुक्त हो जाना' ही अहिंसा की परिभाषा बताई है।

एक नदी के दोनों तटों पर दो साधक तपस्या कर रहे थे। दीर्घ काल की तपस्या के बाद ईश्वर ने उनमें से एक के समक्ष प्रकट होकर पूछा, 'तुम्हारी क्या इच्छा है?' तपस्वी बोले, 'नदी के उस ओर भी कोई वरप्राप्ति के लिए तप कर रहा है। उसे जो फल मिले, मैं उसका दुगना चाहता हूँ।' भगवान् दूसरे तपस्वी के सामने भी प्रकट हुए और उसे पहले तपस्वी की इच्छा के बारे में बताने के बाद पूछा, 'तुम्हें

क्या वरदान चाहिए?’ वह बोला, ‘मेरा एक नेत्र चला जाए और मैं काना हो जाऊँ ।’ इससे पहले तपस्वी को यह वरदान मिला कि वह अपनी दोनों आँखें खो बैठा !

यह कहानी दर्शाती है कि ईर्ष्या किस प्रकार तपस्वियों तक को अभिभूत कर सकती है । कठोर तपस्या के उपरान्त साधक को ईश्वर-दर्शन होने पर उसमें रंच मात्र भी अहंकार नहीं रह जाना चाहिए । यह अहंकार ही मन के षड्रिपुओं का मूल आधार है । यह कहानी तपस्या या तपस्वी के बारे में नहीं, अपितु ईर्ष्या के दूरगामी प्रभाव की ओर इंगित करती है ।

महाभारत कहता है, ‘भले लोगों से घृणा करना पाप है ।’ श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ‘यदि हम सज्जनों का आदर न करें, तो भगवान हमसे नाराज होते हैं ।’ बर्ट्रेण्ड रसेल का कथन है, ‘ईर्ष्या सुख का सबसे बड़ा शत्रु है ।’

बच्चे भी ईर्ष्या कर सकते हैं । यदि माँ एक बच्चे से पक्षपात करती है, तो दूसरा बच्चा ईर्ष्यालु और अधीर हो जाता है । माता-पिता यदि बच्चों को खाद्य पदार्थ या स्नेह-दुलार आदि सब कुछ देने में निष्पक्ष रहें, तो सन्तानों को सुख मिलेगा । प्रौढ़ लोग बच्चों की तरह खुले तौर पर अपनी ईर्ष्या प्रकट नहीं करते, पर उनकी नीयत का उनके व्यवहार से पता चल ही जाता है । वे दूसरों द्वारा किए हुए अच्छे कार्यों को दुर्भावना से प्रेरित मानते हैं । ईर्ष्यालु लोग कभी दूसरों के भले गुणों की प्रशंसा नहीं कर सकते । वे इस प्रकार बातें करते हैं मानो वे पूर्णतः निष्पक्ष, बुद्धिमान और नितान्त संवेदनशील हों, परन्तु शेक्सपियर के नाटक ‘ओथेलो’ के पात्र इयागो की भाँति वे ईर्ष्यान्ध होकर दूसरों के विनाश का षड्यंत्र रचते रहते हैं ।

एक बार एक अध्यापक ने अपने उत्तम व्यवहार तथा शिक्षण के द्वारा विद्यार्थियों का प्रेम और स्नेह जीत लिया । वे विद्यालय के

प्रधानाध्यापक पर भी पुत्रसुलभ स्नेह-दृष्टि रखते थे। यद्यपि वे शिक्षक विनम्र और निष्ठावान तथा ईर्ष्या-भाव से मुक्त थे, तथापि प्रधानाध्यापक उन शिक्षक को देखते ही चिढ़ जाते। चार-पाँच वर्षों तक प्रधानाध्यापक ने कभी उन शिक्षक के साथ प्रेम व आदरपूर्वक बातें नहीं की। उस शिक्षक की उपस्थिति में प्रधानाध्यापक थोड़े चिड़चिड़े दिखते। उनके अधिकाधिक लोकप्रिय होने के साथ ही प्रधानाध्यापक की ईर्ष्या भी क्रमशः तीव्र होती गई। अन्ततः उन्होंने चालबाजी करके उस अध्यापक का तबादला करा दिया। इससे उन्हें थोड़ी राहत मिली। वे यह समझ पाने में विफल रहे कि ये अध्यापक अच्छा कार्य कर रहे थे और इससे उनके विद्यालय का गौरव भी बढ़ा रहे थे।

सुचित्रा ने जब सुना कि उसके देवर के बच्चों को मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल गया है, तो वह बड़ी उद्विग्न हो उठी। वह दूसरों को सुनाते हुई बोल पड़ी, 'ओह! आजकल तो गली-गली में डॉक्टर मिलते हैं। लगता है कि यह व्यवसाय अब आकर्षक नहीं रहा। आज भला कौन डॉक्टर बनना चाहेगा! मेरा बेटा तो कतई नहीं।' वस्तुतः उसके पुत्र ने भी मेडिकल कॉलेज में भरती होने का खूब प्रयास किया था, पर उसके अंक काफी कम होने के कारण वह प्रवेश नहीं पा सका था। इससे यही सिद्ध होता है कि 'हम चीजों को उनके यथार्थ रूप में नहीं, अपितु अपने मनोभाव के अनुसार देखते हैं।'

कहते हैं कि महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक ईर्ष्यालु होती हैं। कहा जाता है कि स्त्रियाँ अन्य सभी स्त्रियों को अपनी प्रतिद्वन्द्विनी मानती हैं। इसे व्यावसायिक ईर्ष्या कहते हैं। 'एक विद्वान दूसरे विद्वान से वैसे ही ईर्ष्या करता है जैसे एक कुत्ता दूसरे कुत्ते को देखकर गुर्गता है।' यदि एक संगीतकार के सामने आप किसी अन्य संगीतकार की प्रशंसा करें, तो आपको तिरस्कार से परिपूर्ण बातें सुनने को मिलेंगी। अधिकांश लोग ईर्ष्या नामक इस चुड़ैल से आक्रान्त हैं।

ईर्ष्यालु लोग हमेशा असन्तोष के कारण क्रुद्ध रहते हैं। प्राप्त सुख-सुविधा तथा सम्पत्ति से सुखी होने के बजाय वे दूसरों की उन्नति से कुढ़ते रहते हैं। वे दूसरों का दुर्भाग्य मनाकर उनके सर्वनाश की आशा करके स्वयं अपने भावी सर्वनाश का बीज बोते हैं। वे यथासम्भव दूसरों को कष्ट देते हुए अपने जीवन में भी दुःख को बुलावा देते हैं।

ईर्ष्या से मुक्त होने के लिए इसके दुष्प्रभावों को समझकर मनुष्य को उनसे अपना बचाव करना चाहिए। व्यक्ति को दूसरों के सद्गुणों की प्रशंसा तथा आदर करना सीखना चाहिए। व्यक्ति अपने प्रयत्न और कठोर परिश्रम के बल पर ही उत्कर्ष प्राप्त करता है। ईर्ष्या से पराभूत होने के पूर्व व्यक्ति को स्वयं से प्रश्न करना चाहिए कि क्या वह बिना संघर्ष के ही सफल होना चाहता है? भक्ति और विश्वासपूर्वक नित्य प्रार्थना करके व्यक्ति ईर्ष्या की दुर्भावना को दूर भगा सकता है। ईर्ष्यामुक्त न होने पर लोग इहलोक और परलोक में दुर्गति को ही प्राप्त होते हैं।

जिना सरमिनारा का कहना था, 'ज्योंही कोई व्यक्ति स्वयं से जुड़े अरुचिकर या झगड़ालू व्यक्ति से सच्चा प्रेम करना सीख लेगा, वह बन्धन से मुक्त हो जाएगा।'

शत्रुता का दुश्चक्र

घृणा करनेवाले लोग हमेशा उत्तेजित और कटु होते हैं। घृणा मन को संकुचित करके विवेक तथा विचार को पंगु बना देती है। शत्रुता काला चश्मा लगाने के समान है। यह हमारी बुद्धि को ढँक लेती है। जिस चीज को आप दूसरों में सबसे अधिक नापसन्द करते हैं, उसे ही अपने अन्दर विकसित करते हैं। घृणा का शिकार बननेवाला व्यक्ति दूसरों से घृणा करके अपने भीतर घृणा का विकास करता है। वह अपने अत्याचारी को घृणा की दृष्टि से देखता है और

हमेशा बदले की आग में सुलगता रहता है। घृणा करनेवाला अपनी मानसिक और शारीरिक सेहत को चौपट कर लेता है। घृणा को प्रश्रय देनेवाले तनाव और चिन्ता से भरे रहते हैं। वे सबसे परित्यक्त होकर उदास रहते हैं और एकाकीपन के दुःख से पीड़ित रहते हैं।

उत्तर भारत में एक बार एक अकिंचन संन्यासी विभिन्न स्थानों में विचरण कर रहे थे। लोग आ-आकर उनकी ज्ञान की बातें सुनते थे। वे लोगों से दूसरों के प्रति क्रूरता छोड़कर सज्जन बनने का उपदेश दे रहे थे। एक बार हजार से भी अधिक लोगों को सम्बोधित करते हुए वे बोले थे, 'घृणा से अधिक भयंकर दूसरा कोई पाप नहीं है। घृणा सबसे भयंकर रोग है; घृणा को कभी घृणा से नहीं जीता जा सकता। उसे प्रेम और सहानुभूति के हथियार से जीतो।'।

५ संन्यासी थे महात्मा गौतम बुद्ध। भगवान बुद्ध द्वारा २५०० वर्षों पूर्व लोगों को दिया गया सन्देश, सभी युगों में समस्त प्रकार के दुःख-कष्टों के उपचार हेतु एक आश्चर्यजनक औषधि है। क्या तुम किसी से घृणा करते हो? यदि हाँ, तो यह तुम्हारी सबसे बड़ी दुर्बलता है, तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है। इसे यहीं और तत्काल छोड़ दो।

मन में दूसरे के प्रति घृणा का विचार लाते ही तुम अपने ऊपर नियंत्रण स्थापित करने का समस्त अधिकार उसे सौंप देते हो। फिर वही तुम्हारी निद्रा, भूख, रक्तचाप, स्वास्थ्य और प्रसन्नता पर नियंत्रण रखना शुरू कर देता है। यदि तुम्हारे शत्रुओं को पता लग जाए कि उनके प्रति तुम्हारे घृणा-भाव से तुम्हारा मन सदा चिड़चिड़ा बना रहता है, तो वस्तुतः वे खुशी से उछलने लगेंगे। तुम्हारी घृणा-भावना तुम्हारे दुश्मनों को तो कोई क्षति नहीं पहुँचाती, उलटे तुम्हीं को दुःख और शोक के नरक की ओर ले जाती है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'यदि तुम अपने हृदय से ईर्ष्या और घृणा के भाव बाहर भेजो, तो वह चक्रवृद्धि ब्याज सहित तुम पर

आकर गिरेगा। दुनिया की कोई भी ताकत उसे रोक न सकेगी। यदि तुमने एक बार उस शक्ति को बाहर भेज दिया, तो फिर निश्चित जानो, तुम्हें उसका प्रतिघात झेलना ही पड़ेगा। यह याद रखोगे तो कुकर्मों से बचे रह सकोगे।'

क्रोधोन्माद की अग्नि

एक महिला को एक बार एक पागल कुत्ते ने काट लिया। समुचित उपचार न हो पाने के कारण कुछ समय बाद उसमें रैबीज या हाइड्रोफोबिया के लक्षण प्रकट हुए। उसके रिश्तेदारों ने उसे एक अस्पताल में भर्त कर दिया। जब उसका मन कुछ शान्त हुआ, तो डॉक्टर ने उससे कहा, 'इस कागज और कलम से तुम अपनी इच्छा लिख सकती हो।' उसने लिखना तो शुरू किया, पर रुकने का नाम नहीं ले रही थी। डॉक्टर ने सोचा कि उसका मन पुनः दुर्बल हो रहा है, और उसने पूछा, 'तुम क्या कर रही हो?' महिला ने कहा, 'मैं उन लोगों की सूची बना रही हूँ, जिन्हें मैं काटना चाहती हूँ।' मृत्यु की दहलीज पर खड़े होकर भी कुछ लोग बदला लेने की ही बातें सोचते हैं और दूसरों के जीवन को नष्ट करने के उपायों की योजना बनाते रहने हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं, 'मैं तुम्हारे विश्वासघात को नहीं भूल सकता। मैं भूत बनकर तुम्हें दुःख-कष्ट दूँगा।' शरीर पंच-तत्त्व में विलीन हो सकता है, परन्तु बदला लेने की इच्छा नहीं जाती।

राख रे ढँका अंगार

कुछ लोग छिपे तौर पर बदले का भाव रखते हैं। उनका व्यवहार उनके मन के भाव व्यक्त नहीं होने देता। पर यह घृणा-भाव उनके चरित्र को दुर्बल करता रहता है।

कई महीनों से अनिद्रा, चिन्ता और घोर थकावट से बेचैन एक ३४ वर्षीय महिला एक डॉक्टर के पास आयी। वह अन्य डॉक्टरों से इलाज करा रही थी, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। वह प्रायः आत्महत्या करने की सोचती थी। गहराई से जाँच-पड़ताल करनेवाले प्रश्न पूछकर ही डॉक्टर उसकी पीड़ा का वास्तविक कारण ढूँढ़ सके। वह अपनी उस बहन के प्रति घृणा-भाव से पीड़ित हो रही थी, जिसका विवाह उस पुरुष से हुआ था, जिसे वह स्वयं छिपे तौर पर प्यार करती थी। यद्यपि अपनी बहन के प्रति उसका बाह्य व्यवहार स्नेहपूर्ण ही था, तथापि उसके मन में क्रोध पनप रहा था। उसके मानसिक और शारीरिक दुःख-दर्द का यही कारण था।

इसी दौरान एक महात्मा ने उसे सांत्वना देते हुए समझाया, 'देखो, घृणा एक दुर्भावना है। तुम भगवान की शरण में जाकर अपनी बहन के प्रति उत्पन्न क्रोध-भाव से मुक्ति पाने के लिए प्रार्थना करो।' प्रार्थना और ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता में अपने विश्वास से अन्ततोगत्वा वह क्रोध-भाव से मुक्त हो गई। धीरे-धीरे उसकी अनिद्रा, उदासी और चिन्ता घटने लगी और वह पहले से अधिक सुखी और प्रसन्न होकर मानो एक नवीन महिला बन गई।

प्रेम से जीतो

लोगों द्वारा दुर्व्यवहार करने, हेकड़ी दिखाने और हमें धोखा देने का प्रयत्न करने पर, हम स्वाभाविक रूप से नाराज हो जाते हैं। झूठे आरोप, निन्दा और दुष्प्रचार से हम क्रोधित हो उठते हैं। जब लोग तुम्हारे सच्चे इरादे को गलत समझ बैठें, जब लोग तुम्हें ठग लें, तो यह स्वाभाविक ही है कि तुम उन पर रुष्ट होकर बदला लेना चाहोगे। पर साधुजन हमें बताते हैं कि हमें इस प्रतिशोध के भाव को प्रेम से जीतना चाहिए। तुम जिन लोगों से घृणा करते हो, सोने के पूर्व या

ध्यान करते समय उनके प्रति प्रेम और सद्भाव के विचार तथा स्पन्दन प्रेषित करो। धर्म और भक्ति-भाव हमारे हृदयों को पवित्र बनाने और मानवीय सम्बन्धों को सुधारने के लिए जरूरी हैं। दृढ़ अध्यवसाय के साथ प्रार्थना करने पर हम घृणा और ईर्ष्या की भूलभूलैया से सुरक्षित निकल सकते हैं।

ऋषि-मुनियों ने अपने अनुभव के आधार पर यह घोषणा की कि मनुष्य मूलतः दिव्य है। वह देहधारी आत्मा है। यदि हमें जाति, वर्ण और धर्म के भेदभाव से ऊपर उठना है, तो आत्मा के सच्चे स्वरूप को समझना होगा। यदि सबमें एक ही आत्मा विद्यमान है, तो हम किससे घृणा करें? यदि शरीर एक वाहन है, जिसे आत्मा यथेच्छ बदल सकती है, तो विभिन्न जाति के लोगों से घृणा करना, मानो विभिन्न भूमिकाओं में प्रकट होनेवाले किसी अभिनेता को नापसन्द करना है।

जैसे-जैसे हमारे ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता जाता है, वैसे-वैसे हमारे दृष्टिकोण में भी बदलाव आता है, और हमारे जीवन में ताजगी आती है।

असम्भव नहीं

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जिन लोगों ने हमारे घर तोड़े हैं, हमें पीड़ा दी है, हमारे सम्बन्धियों को क्षति पहुँचाई है या हमारी स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया है, क्या हम सचमुच उनसे घृणा किए बिना रह सकते हैं?

किसी व्यक्ति के स्वभावतः क्रूर, असंयमित, उग्र तथा पशु-प्रवृत्ति होने के कारण ही उससे घृणा करना वैसा ही है जैसा कि हाई स्कूल में अध्ययनरत किसी बालक का तीसरी कक्षा उत्तीर्ण न कर पानेवाले किसी प्राथमिक विद्यालय के बालक को तुच्छ और हेय समझना। क्या

आप किसी पत्थर के टुकड़े से केवल इसलिए घृणा करते हैं कि वह एक पत्थर है? हम केवल इतनी सावधानी भर बरतते हैं कि कहीं हम उससे ठोकर खाकर घायल न हो जाएँ। हम उसे प्रकृति की असंख्य वस्तुओं में से एक के रूप में स्वीकार करते हैं। नीच, दुष्ट, पाशविक वृत्ति तथा कम विकसित लोगों से घृणा करना एक पत्थर के टुकड़े से घृणा करने के समान ही है। गौतम बुद्ध ने कहा था, 'घृणा को प्रेम से जीतो।' स्वयं को सूली पर चढ़ानेवाले लोगों के लिए प्रार्थना करते हुए ईसामसीह ने कहा था, 'हे स्वर्गस्थ पिता! उन्हें क्षमा कर दो, क्योंकि उन्हें यह मालूम नहीं कि वे क्या कर रहे हैं।' महर्षि पतंजलि अपने योगसूत्र में इसी भाव से कहते हैं, 'दुष्टों और पापियों के प्रति उपेक्षा तथा उदासीनता का भाव रखो।' घृणा नकारात्मक ढंग से मनोबल को प्रभावित करती है। निम्नलिखित घटना दर्शाती है कि घृणा हमें कितना संकुचित मनोभाववाला बना सकती है -

पुणे के एक अखबार में यह खबर छपी थी। आठ वर्ष का एक बालक प्रेतात्मा के उत्पीड़न से त्रस्त था। उसके धनवान पिता ने इस कष्ट के निवारणार्थ काफी धन व्यय किया, पर सब व्यर्थ हुआ। उन्होंने सुना कि नरसोबा बाड़ी के दत्तात्रेय मन्दिर में ऐसे पीड़ितों का उपचार किया जाता है। माता-पिता बालक को लेकर वहाँ गए और दो माह तक वहीं रहे। उन्होंने मन्दिर के देवता की उपासना और प्रार्थना की। अन्ततः प्रेत ने उस बालक को तंग करने के रहस्य को प्रकट किया - 'मैं सड़क पर टहल रहा था। इस व्यक्ति ने गले में फन्दा डालकर मुझे मार डाला और मेरे पास के ५०० रुपये छीन लिए। मरणोपरान्त मैं प्रेत बन गया। मैं पिछले सात जन्मों से अपने हत्यारे को ढूँढ़ रहा था। अन्ततः मैंने इसे पकड़ ही लिया। मैं इसे नहीं छोड़ूँगा।' अपने पुत्र के बारे में काफी चिन्तित होकर पिता ने कहा, 'मैं ब्याज के साथ तुम्हारे रुपये, तुम जैसे भी कहो, लौटाने के

लिए तैयार हूँ।' प्रेत बोला, 'इसने मुझे मार डाला था। मैं भी इसे मार डालूँगा।' प्रेत ने उस बालक को नहीं छोड़ा और बालक शीघ्र ही मर गया।

अपने हत्यारे से बदला लेने को कृत-संकल्प वह प्रेत सात जन्मों तक उस दुःखदायी प्रेतयोनि में पड़ा रहा। उसका हत्यारा तो वैसे भी अपने पाप का दण्ड पा ही जाता। परन्तु मारे गए व्यक्ति की प्रतिकार की भावना ने उसकी कोई आध्यात्मिक उन्नति नहीं होने दी और वह सात जन्मों तक प्रेतयोनि में ही दुःख भोगता रहा।

जिससे आप घृणा करते हैं, अन्ततः आप भी वही बन जाते हैं। भय का चिन्तन जिस तरह आपको भय के गर्त में खींच ले जाता है, वैसे ही किसी के प्रति घृणा-भाव आपको घृणास्पद व्यक्ति की मानसिक स्थिति तक पहुँचा देता है।

मनुष्य जिस महानतम तथा सर्वोत्कृष्ट भाव की अभिव्यक्ति में सक्षम है, वह है निःस्वार्थ प्रेम। निःस्वार्थ प्रेम साक्षात् भगवान का रूप है। निःस्वार्थ प्रेम के माध्यम से हम अपनी अन्तर्निहित दिव्यता को ही अभिव्यक्त करते हैं।

परन्तु निःस्वार्थ प्रेम का विकास करना सहज नहीं है। इसमें दीर्घकाल तक प्रयत्न की आवश्यकता होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यक्ति देर-सबेर यह अवस्था प्राप्त कर ही लेता है। अतः हताश होने की कोई जरूरत नहीं। प्रयत्न करते रहने पर परिणाम निश्चय ही बहुत सुन्दर होगा। अंग्रेज कवि कॉलरिज कहते हैं -

छोटे-बड़े सभी जीवों से, सहज प्रेम करता जो व्यक्ति।
श्रेष्ठ प्रार्थना है यह उसकी, और यही सर्वोत्तम भक्ति ॥
सबके प्रिय प्रभु परमात्मा, करते हमसे प्रेम अपार।
सब जीवों के सर्जक हैं वे, सबसे करते हैं वे प्यार ॥

प्रतियोगिता द्वेष-भाव पैदा करती है

प्रतियोगिता-प्रथा की बुराई के बारे में समाजशास्त्री प्रिट्रिम सोरोकिन कहते हैं, 'प्रतियोगिता सिद्धान्त के लघुतम रूप से लेकर उसके गलाकाट रूप तक के आविर्भाव के कारण आपसी सहायता की जगह आपसी संघर्ष और प्रेम की जगह आक्रामकता के भाव उत्पन्न होते हैं। ये भाव व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर देखे जा सकते हैं।'

किसी प्रतियोगिता का कोई प्रत्याशी स्वभावतः जीतना ही चाहता है। अपने लक्ष्य में सफल होने के लिए वह हर प्रकार की योजनाओं तथा तरकीबों को आजमाता है। स्वस्थ प्रतियोगिता, एक सीमा तक निःसन्देह अच्छी है, परन्तु धन तथा पद-प्रतिष्ठा की प्रतिस्पर्धा में, लोक-निकायों की सदस्यता के लिए होनेवाले चुनावों में तथा व्यवसाय के क्षेत्र में यह स्पर्धा खतरनाक रूप धारण कर लेती है। प्रतिस्पर्धा की यह भावना मनुष्य के भीतर छिपी दुष्प्रवृत्तियों को उभारती है, जिससे व्यक्ति अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए शक्ति, छल-कपट, रिश्तव और भयादोहन आदि उपायों का सहारा लेता है।

भारतीय सामाजिक-प्रणाली की व्यवसाय आधारित जाति-प्रथा पाश्चात्य जगत में प्रचलित विद्वेषपूर्ण प्रतिद्वन्द्विता से बेहतर है। इसे समझने के लिए हमें प्राचीन भारत के गाँवों के लोगों के जीवन का अध्ययन करना होगा। वहाँ बढ़ई, सुनार, नाई और धोबी जैसे लोगों के बीच कोई प्रतियोगिता की भावना नहीं थी। हर व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए दूसरे पर निर्भर था। अपने बच्चों को जीविका-निर्वाह में सक्षम बनाने हेतु उनके प्रशिक्षण के लिए वे चिन्तित नहीं रहते थे। पेशे की शुरुआत के लिए उन्हें विभिन्न लोगों के पास भिक्षापात्र लेकर नहीं जाना पड़ता था। किसी अजनबी द्वारा उनके पेशे पर कब्जा जमाकर उन्हें उस व्यवसाय से निकाल बाहर करने की चिन्ता

भी उन्हें नहीं थी। क्या यह प्रथा, जो लोगों को साधारण शान्तिमय जीवन बिताने में समर्थ बनाती थी, संघर्ष और द्वेषभाव को बढ़ावा देनेवाली प्रतियोगिता-प्रणाली से बेहतर नहीं थी? यहाँ जाति-प्रथा के पुनरुद्धार के लिए वकालत नहीं की जा रही है। हमारा तो बस इतना ही कथन है कि उस प्राचीन प्रणाली में घृणा तथा वैरभाव के लिए कोई जगह नहीं थी। घृणा तथा वैरभाव सदैव प्रतियोगिता से उत्पन्न होते हैं। परन्तु आज भी हम किसी पेशे के एक जाति में रूपान्तरित होने की सम्भावना से इनकार नहीं कर सकते। यदि रेलवे के कर्मचारी अपने बच्चों के लिए रेल विभाग में रोजगार के आरक्षण की कामना करें या यदि डाक-तार विभाग के लोग अपने बच्चों की नौकरियों के आरक्षण का दावा करें, तो क्या इस पर हमें आश्चर्य होगा? यदि यही प्रवृत्ति जारी रही, तो इसके फलस्वरूप एक नये तरह की जाति-प्रथा बन जाएगी। दर्जियों और लुहारों की तरह रेल-कर्मचारियों, डाक-कर्मचारियों और इसी तरह अन्य लोगों की जातियाँ बन जाएँगी। क्या तब उन लोगों को एक-दूसरे से झगड़ा करना चाहिए?

मैं यहाँ केवल इतना ही बताना चाहता हूँ कि प्राचीन जाति-प्रथा किस प्रकार प्रतियोगिता की भावना से उत्पन्न ईर्ष्या तथा घृणा की बुराइयों से बचने में सहायक थी। चूँकि हमने स्वाधीनता-संग्राम के बाद चुनाव कराना प्रारम्भ किया, इसलिए हमारे गाँवों में लोगों के बीच मैत्री की भावना लुप्त हो गयी है। पहले वे लोग इस सिद्धान्त पर चलते थे - 'हमारी अपनी जीवन-शैली है और आपकी अपनी; जियो और जीने दो।' असंख्य राजनैतिक नेता मंच से घोषणा करते हैं, 'जाति-प्रथा समाप्त करो।' परन्तु उनके कार्य केवल जातिगत भावनाओं को उभारते हैं। वे जातीय समीकरण के आधार पर वोट हासिल करते हैं और सर्वत्र घृणा की आग फैलाते हैं। यदि आप किसी जाति से घृणा करने लगते हैं, तो आप उनके भीतर कभी कोई

अच्छाई नहीं देख सकेंगे। आप केवल उन गलतियों को ही उजागर करते रहेंगे, जिन्हें आपने अतीत में नहीं देखा था। अपने को इस पूर्वाग्रह से मुक्त किए बिना हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकेंगे।

अंग्रेजों की नीति

ऐसा लगता है कि भारत के शिक्षित लोग और नेतागण भी यह नहीं जानते कि अंग्रेज शासकों द्वारा भारतवासियों के बीच एकता का नाश करने हेतु जानबूझकर एक योजना बनाई गयी थी। ताराचन्द अपने 'भारत की स्वाधीनता का इतिहास' नामक ग्रन्थ में मिस्टर वुड द्वारा तत्कालीन वायसराय एल्गिन को लिखित एक पत्र से उद्धरण देते हैं, 'हमने एक पक्ष को दूसरे पक्ष से लड़ाकर अपनी सत्ता कायम रखी है और हमें इसे जारी रखना चाहिए। अतएव, सबको एक समान भाव रखने से रोकने के लिए आप जो भी कर सकें, करें।'।

यद्यपि अंग्रेज भाग्य छोड़कर चले गए, तथापि हम इस देश में आपसी सन्देह और घृणा की आग को हवा देते रहे हैं। हमारे शिक्षित लोग यह समझने में असफल रहे कि ईर्ष्या और आपसी घृणा से छुटकारा पाए बिना हम अच्छे नागरिक नहीं बन सकते। खेद की बात है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली प्रबुद्ध नागरिकता की भावना अपनाने में विफल रही है। कितने दुःख की बात है कि स्वतंत्र भारत में रहते हुए भी हम गुलामों की भाँति आचरण कर रहे हैं।

चलिए, हम यहाँ हिन्दू समाज की विभिन्न जातियों के बीच व्याप्त पारस्परिक घृणा और सन्देह के कारणों का अध्ययन कर लें। ब्रिटिश शासन के दौरान सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए कठिन प्रतियोगिता होती थी। इससे निम्न वर्गों में ब्राह्मणों के प्रति ईर्ष्या-भाव पैदा होने लगा। अन्य लोगों के बीच सन्देह का बीज बोने के लिए ब्राह्मणों द्वारा किया हुआ अन्याय जिम्मेदार नहीं था। ब्राह्मणों के प्रति

सन्देह तथा घृणा का यह भाव भारत के सभी भागों में विद्यमान नहीं है। उदाहरणार्थ, बंगाल में, जहाँ अब्राह्मणों को बहुसंख्य सरकारी नौकरियाँ प्राप्त हैं, घृणा की यह भावना उतनी तीव्र नहीं है।

ब्राह्मण लोग स्वयं को सर्वोच्च वर्ग का मानते रहे (पर क्या वे सचमुच ही सर्वोच्च वर्ग के हैं? अज्ञानता, निर्धनता, संकीर्ण मानसिकता, स्वार्थपरायणता और दुःख-दर्द सभी जातियों में व्याप्त हैं) और किसी-न-किसी कारण से उन्होंने अन्य जातियों के साथ प्रेम और आदरपूर्ण व्यवहार नहीं किया। अन्य वर्गों के हित के लिए कुछ लोगों ने यत्र-तत्र कुछ कार्य भले ही किया हो, परन्तु इस दिशा में चिरस्थायी तथा संगठित प्रयत्न नहीं किए गए। निम्न वर्गों में आध्यात्मिक दृष्टिकोण जागृत करने के लिए ईमानदारीपूर्वक कोई चेष्टा नहीं हुई। उच्च वर्गों ने निम्न वर्गों को ऊपर उठाने के लिए कोई सार्थक प्रयास नहीं किया। सदियों से शिक्षा और संस्कृति से वंचित रह चुके तथा लोगों द्वारा अनादृत जनता के निर्बल वर्ग ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी हीन-भावना से मुक्त होकर आत्मविश्वास प्राप्त कर लिया है। उन्होंने पूर्व काल में अपना अनादर व उत्पीड़न करनेवाले लोगों के खिलाफ अपना क्रोध प्रकट किया। पर इन असन्तुष्ट लोगों को भड़काने और ब्राह्मणों के खिलाफ खड़ा करने की अंग्रेजों की चाल को कोई भी नहीं समझ सका। उन्हें तो अपना उल्लू सीधा करना था।

पूर्व काल में ब्राह्मण गाँवों में विद्यालय चलाकर बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाते थे। उन विद्यालयों में शिक्षा पानेवाले ग्रामीण उनके जीवन-निर्वाह में मदद करते थे। केवल कुछ ब्राह्मण विद्वान ही राजकीय संरक्षण प्राप्त करते थे। अंग्रेजों ने प्रशासन चलाने में मदद लेने के उद्देश्य से लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए विद्यालय खुलवाए। ये आधुनिक विद्यालय परम्परागत ग्रामीण विद्यालयों के

प्रतिद्वन्द्वी होकर उनसे अधिक शक्तिशाली हो गए। चूँकि अध्यापन ब्राह्मण समुदाय का मुख्य पेशा था, इसलिए आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें नए विद्यालयों में दाखिल होना पड़ा। इस शिक्षा से उन्हें सरकारी नौकरियाँ मिलीं। नयी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणेतर वर्गों के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं था, परन्तु जीविका-निर्वाह के लिए अपने परम्परागत उद्यमों पर निर्भर रहने के कारण उन्होंने आधुनिक शिक्षा की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। वे नौकरी के लिए अपनी जमीन-जायदाद और घर-द्वार छोड़कर सुदूर स्थानों में जाने को भी तैयार नहीं थे। क्रमशः ब्राह्मण सरकारी नौकरियों में महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित होते गए। वे अच्छा वेतन और सम्मान पाते थे। आधुनिक शिक्षा से लैस उनके बच्चों ने स्वतंत्रता-संग्राम की चर्चा उठाकर अंग्रेजों को भगाने का संकल्प कर लिया। अंग्रेज इस चुनौती का सामना करने की कला जानते थे। वे निम्न वर्गों से कहने लगे, 'देखो, इन ब्राह्मणों ने सभी सरकारी पदों पर एकाधिकार कर लिया है। वे सदियों से तुम्हारा शोषण करते रहे हैं। क्या तुम उनकी जगह लेना नहीं चाहोगे? या तुम केवल निष्क्रिय दर्शक ही बने रहोगे?' उच्च जातियाँ निम्न जातियों का विश्वास और सद्भाव जीत पाने में विफल रहीं। उच्च जातियों ने अन्य जातियों को अंग्रेजों के इस दुश्क्र से अवगत कराने में भी उपेक्षा दिखाई। इसी बीच ब्राह्मणेतर जातियाँ भी आधुनिक शिक्षा का लाभ पाने लगीं। परन्तु तब तक रोजगार के अवसर समाप्तप्राय हो गए थे। फिर गलाकाट प्रतियोगिता एक स्वाभाविक परिणाम हो गई। आधुनिक शिक्षा के कौशल को आत्मसात् करने का अवसर ब्राह्मणों को अधिक मिला था, अतः अधिकतर नौकरियाँ उन्हीं को मिलीं। अन्य लोग स्वाभाविक रूप से उनसे ईर्ष्या करने लगे। आरोप और प्रत्यारोप बढ़ते गए और अब ब्राह्मणों को नौकरियों से वंचित करने के प्रयास

किए जा रहे हैं। न तो ब्राह्मण और न ही ब्राह्मणेतर लोग इस बात से अवगत हैं कि बाहरी शक्तियाँ इस कटुता का लाभ उठा रही हैं। कहा जाता है कि पारस्परिक घृणा और द्वेष दासता के चिह्न हैं। दुर्भाग्यवश, लोगों ने इस प्रवृत्ति को कायम ही नहीं रखा बल्कि इसका और भी अधिक विकास किया है। अतीत काल में, विदेशी शासन के अधीन, घृणा, पूर्वाग्रह और नापसन्दगी के कारण विभिन्न दास-वर्ग आपस में निरन्तर संघर्षरत रहते थे। खेद की बात है कि आज भी इस प्रवृत्ति के घटने के कोई आसार नजर नहीं आते।

किसी भी समाज में, यदि विकसित समूह निर्बल समूहों के हित-साधन का प्रयास न करें, तो वे स्वयं अपनी ही कब्र खोद लेते हैं। प्रतियोगिता के जरिए रोजगार पाने में सफल रहनेवाले ब्राह्मण क्या सचमुच सुखी हो गए? अपनी आजीविका के लिए वे अपना घर-द्वार छोड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते रहे, अपनी परम्परागत आध्यात्मिक साधन गँवा बैठे, अन्य समुदायों की दुर्भावना के पात्र बने और अपने बच्चों के भविष्य के बारे में चिन्तित रहने लगे।

पाश्चात्य देशों का अनुसरण करके, आज भारतीय लोगों ने भी प्रतियोगिता को स्वीकार कर लिया है। परन्तु प्रयत्न सच्चा हो तो आपसी दुर्भावना की तीव्रता को घटा लेना हमारे लिए कठिन नहीं होगा। एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति इस लक्ष्य को प्राप्त करने में वास्तविक मदद करेगी। समूह बनाना और सामूहिक पहचान विकसित करना प्रकृति का एक नियम है। परन्तु यदि हम घृणा के बीज बोते हैं, तो सर्वांगीण विनाश की ओर अग्रसर होंगे। सभी धार्मिक समुदायों में प्रायः अनेक समूह तथा उपसमूह होते हैं। यहाँ तक कि ईसाइयों में भी प्रायः २५० समूह तथा उपसमूह हैं। इसी तरह मुसलमानों में भी समूह हैं। इस दौड़भाग के संसार में, राजनैतिक संसार में, छोटे समूहों और दलों में विभक्त हो जाना एक स्वाभाविक बात है।

यह आवश्यक भी हो सकता है। परन्तु इस सामूहिक चेतना को विकृत होकर अन्य वर्गों के प्रति दुर्भावना में नहीं परिणत होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि घृणा एक खतरनाक शक्ति है। समझ और सद्भाव बढ़ाने हेतु हर समूह के सदस्यों को अन्य समूहों के गुणों व विशेषताओं को महत्वपूर्ण मानकर उन पर बल देने की चेष्टा करनी चाहिए। उनकी कमियों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। अन्यथा यह पाप-कर्म महान क्षति की ओर ले जाएगा।

प्रेम से सहानुभूति पैदा होती है

गोंदवलेकर ब्रह्मचैतन्य महाराज एक सिद्ध महात्मा थे, जो १९१४ ई. तक जीवित रहे। उनके द्वारा अपने एक शिष्य को बचा लेने की एक घटना स्मरणीय है। एक बार श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज से दीक्षाप्राप्त एक व्यक्ति कुसंग में पड़कर पापाचार में लिप्त हो गया। एक रखैल के मोह में पड़कर वह अपनी सारी सम्पत्ति गँवा बैठा। उसके रिश्तेदारों ने उसका परित्याग कर दिया। ब्रह्मचैतन्य महाराज के अन्य शिष्य तथा अनुयायी भी उसका आदर नहीं करते थे। एक बार ब्रह्मचैतन्य महाराज गड़ग के श्री भीमराव के घर में ठहरे थे। वह व्यक्ति उस घर के सम्मुख खड़े होकर भिखारी के सदृश प्रवेश की याचना करने लगा। ब्रह्मचैतन्य महाराज ने उसे बुलाया। घर में घुसते ही वह महाराज के चरणों में गिर पड़ा और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़ा हो गया। महाराज ने कहा, 'लोगों ने तुम्हें सदा के लिए पतित समझकर छोड़ दिया है, परन्तु मैं तुम्हें पतित नहीं रहने दूँगा।' आश्वासन तथा सांत्वना की वाणी सुनकर वह सिसक-सिसक कर रोने लगा। उसके कुछ संभलने पर महाराज बोले, 'यदि तुम्हें सचमुच पश्चात्ताप हो रहा है, तो मैं तुम्हारा उत्तरदायित्व ले लूँगा। तुम्हारे पापों

का जिम्मेदार मैं रहूँगा। परन्तु तुम्हें भगवान राम के नाम की शपथ लेकर कहना होगा कि तुम भविष्य में फिर ऐसे कार्य नहीं करोगे।' उस व्यक्ति ने दया की भीख माँगी और गुरु के प्रति निष्ठा-भक्ति की सौगन्ध खायी। महाराज के प्रेम और सहानुभूति ने उसके पापबोध को जलाकर भस्म कर दिया और उसमें आत्मविश्वास भर दिया। उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ता गया।

सकारात्मक दृष्टिकोण का महत्त्व

एक अन्धी महिला का उदाहरण है, जिन्होंने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण की सहायता से अपने दुर्भाग्य का सामना किया। वे ईश्वर या आध्यात्मिकता के बारे में कुछ नहीं कहती थीं, पर उनके चरित्र की उदारता ही हमें उनकी महान आध्यात्मिक उपलब्धि का बोध कराती है। यह घटना डॉ. प्रभु शंकर की कन्नड़ पुस्तक 'जन-मन' से ली गई है।

श्रीमती हैरियट एक अन्धी अमेरिकी महिला थीं। वे भारत में संगीत का अध्ययन करने हेतु आयी थीं। बचपन में ही एक दुर्घटना में उनकी आँखों की ज्योति चली गई, पर अपने धैर्य तथा अध्यवसाय से उन्होंने ब्रेल लिपि सीखकर विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त कर ली। लेखक के साथ वार्तालाप के दौरान उन्होंने बताया कि जीवन में इस कठिनाई का सामना करते हुए उन्नति करने में उनके माता-पिता ने उनकी किस प्रकार मदद की - 'मेरे माता-पिता विश्वास और साहस से भरे थे। उन्होंने एक अन्धी पुत्री की जिम्मेदारी स्वीकार की और धीरे-धीरे नयी परिस्थिति के साथ सामंजस्य बिठा लिया। वे अपने अन्य बच्चों के समान ही मेरी भी स्नेहपूर्वक देखभाल किया करते थे।

— 'इसका तात्पर्य?'

— 'उन्होंने यह नहीं सोचा कि अन्धेपन के कारण मुझे विशेष देखभाल और सेवा की जरूरत थी। उन्होंने मेरे क्रिया-कलापों पर अंकुश नहीं लगाया। मैं दौड़ती थी, तैरती थी और कूदती भी थी। वे केवल यह देखा करते कि मेरी प्रगति कैसी हो रही है। बहुत जरूरी होने पर या कुछ वास्तविक खतरा भाँप लेने पर ही वे मेरी मदद करने आते थे। इससे मुझे बड़ी सहायता मिली।'।

— 'कैसे?'

— 'इससे मुझमें खूब साहस और आत्मविश्वास आ गया। मैं स्वाधीन भाव से अपना विकास कर सकती थी। मुझे यह बोध ही नहीं होता था कि मैं दृष्टिहीन हूँ, या मैं दूसरों के समान जीवन में आगे नहीं बढ़ सकती।

— 'आप अपने भोजन की समस्या से कैसे निपटती हैं?'

— 'मैं अपना भोजन खुद पकाती हूँ। मुझे खाना बनाना बड़ा अच्छा लगता है। मेरी माँ इस बात पर चकित रहती हैं कि मैं इतना अच्छा खाना कैसे पका लेती हूँ। मैं रसोईघर के डब्बों और पैकेटों को स्पर्श से पहचान लेती हूँ। मेरा हाथ ही मेरा माप है। दूध के ठीक उबलने का बोध मैं उसकी आवाज से कर लेती हूँ। मुझे यह पता है कि विभिन्न अनाजों और सब्जियों को पकने में कितना समय लगता है।'।

— 'श्रीमती हैरियट, आपमें एक अन्य विस्मयकारी चीज देखता हूँ। आप हमेशा अत्यन्त प्रसन्न रहती हैं। इस भवन की सीढ़ियों पर चढ़कर अपने मित्र के पास पहुँचकर आप इतनी जोर से हँसती-चिल्लाती हैं कि मानो छत ही उड़ जाएगी। आपकी इस खुशी और मनमौजीपन का क्या रहस्य है?'

— 'मेरी खुशी के पर्याप्त कारण विद्यमान हैं। इस संसार में असंख्य लोग नियमित भोजन, वस्त्र या रहने के लिए एक झोपड़ी से

भी वंचित हैं। मुझे इनका कोई अभाव नहीं है। इसके अतिरिक्त मुझे शिक्षा और ज्ञान भी प्राप्त है। क्या ये किसी सम्पत्ति से कम हैं? ये सब आनन्द के स्रोत हैं। हमें और कितना चाहिए?’

– ‘क्या आप अन्धेपन के कारण निराश नहीं होतीं?’

– ‘कभी नहीं। संसार ने हमें काफी कुछ दिया है। इसके बदले हम संसार को कितना देते हैं? बहुत कम। फिर भी यह संसार हमें बहुत कुछ दे रहा है। शायद इससे अधिक आशा करना भी गलत है। और अधिक याचना करने का हमें क्या अधिकार है? यदि हम इसका अधिकाधिक स्मरण रखें, तो हम सुखी और प्रसन्न रह सकते हैं।’

हैरियट का साहस हमारे लिए एक अनुकरणीय उदाहरण होना चाहिए। उनमें अपनी विकलांगता को परास्त करने का असाधारण साहस था।

एक बार हैरियट बैंक गई। जिस लेन-देन में सामान्यतः दस मिनट लगते हैं, उसमें उस दिन उन्हें एक घण्टा लग गया। किसी ने शिष्टाचार के नाते भी उनसे उनकी कठिनाई के बारे में नहीं पूछा। वैसे वे किसी विशेष व्यवहार की अपेक्षा भी नहीं करती थीं। उन्होंने अमेरिका से आए हुए एक चेक को स्पर्श मात्र से समझकर उसे भुगतान के लिए दे दिया। एक अन्य चेक को तत्काल नकदीकरण हेतु देकर उन्होंने काउन्टर पर तदनुसार अपनी आवश्यकता बताई। उन्होंने एक दफ्ती के टुकड़े की सहायता से हस्ताक्षर किया। एक क्षण के लिए भी उनका तेवर नहीं चढ़ा। वे रंचमात्र भी नाराज नहीं हुईं।

एक अन्य समय उनकी एक सहेली का एक अस्पताल में ऑपरेशन हुआ। हैरियट ने अपनी अन्य सहेलियों के मना करने पर भी उस सहेली की दिन-रात सेवा की। अन्धी हैरियट दीवारों का सहारा लेकर अस्पताल में आया-जाया करती थीं।

क्या हम भी हैरियट के समान, प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव से अपने स्वभाव को बचाए रखकर, जीवन का मुकाबला कर सकते हैं? हम अपने अनेक मित्रों की अपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली हैं। परन्तु हमारी कामनाओं और असन्तोष का कोई अन्त ही नहीं। हम सदैव असन्तुष्ट और चिड़चिड़े बने रहते हैं। यदि हम स्वयं ही अपने सकारात्मक गुणों को सबल बनाकर अपने दोषों को दूर करने का प्रयत्न करें, तो हमारा जीवन सुखी और सार्थक हो जाएगा।

झूठे आरोपों पर ध्यान न दो

अपनी आलोचना सुनने पर तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया होती है? क्या तुम्हारे लिए सत्य और रचनात्मक आलोचना को भी स्वीकार करना कठिन है? क्या तुम अपनी गलतियों और दुर्बलताओं को सुधारने में हिचकते हो? जीवन में उन्नति के लिए हिचकिचाहट क्यों?

वस्तुतः तुम्हें लोगों द्वारा अपनी समालोचना से चिन्तित नहीं होना चाहिए। क्या तुम सोचते हो कि अन्य लोग केवल तुम्हारे बारे में ही सोचा करते हैं? डेल कारनेगी के अनुसार उन लोगों का अपना सिरदर्द ही उनकी चिन्ता का कारण है। यदि मान भी लिया जाए कि लोगों ने तुम्हारी कुछ कटु आलोचना की है, तो क्या तुम सोचते हो कि उनकी आलोचना समुचित विचारशीलता और तुम्हारी परिस्थिति के अध्ययन का परिणाम थी? एक कन्नड़ कहावत है - 'छिद्रान्वेषी लोग सभी अच्छे कार्यों को सदैव तुच्छ बताते रहते हैं।' यदि अन्य लोग तुम्हारे प्रति सच्चा प्रेम और सहानुभूति नहीं रखते, तो वे तुम्हारे त्याग और बलिदान को भला कैसे समझ सकते हैं?

सम्भवतः दूसरों द्वारा की गई तुम्हारी आलोचना में कुछ सत्य भी हो। आलोचना में प्रायः कुछ कल्पना, कुछ प्रभाव डालने की ललक और कुछ दूसरों को अपमानित करने की इच्छा का ही प्राधान्य होता

है। अधिकांश आलोचनाओं की पृष्ठभूमि में आलोचक की असहिष्णुता और ईर्ष्या विद्यमान रहती हैं और आलोचक दूसरों के दोष निकालकर एक प्रकार का विकृत या परपीड़नकारी सुख प्राप्त करते हैं। यदि तुम उनकी आलोचनाओं से सचमुच विक्षुब्ध हो जाते हो, तो शायद तुममें आत्मविश्वास की कमी है। यदि तुम आत्मविश्वासी और कर्तव्यपरायण हो, तो दूसरों की बेवजह की और अनुचित आलोचनाएँ तुम्हें जरा भी प्रभावित नहीं करेंगी।

ऐसे आलोचकों के बारे में तुम्हें एक चीज जान लेनी चाहिए। दूसरों की आलोचना करने से उनका अहंकार बढ़ जाता है। दोषद्रष्टा सामान्यतया स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है। कुछ मामलों में, इससे उनके अहं की सन्तुष्टि होती है कि हम भी कोई कम बुद्धिमान नहीं हैं।

अपने से अधिक योग्य और सफल लोगों की निन्दा करके लोग एक प्रकार का निम्न कोटि का आनन्द प्राप्त करते हैं। कुछ लोग अपनी भाषा के ऊपर अपनी पकड़ को प्रदर्शित करना चाहते हैं। और ऐसा करते समय उन्हें ध्यान नहीं रह जाता कि वे किस प्रकार की निन्दा में लिप्त हो रहे हैं।

दूसरों द्वारा बुद्धिमान और विवेकवान माने जानेवाले कुछ लोग यह सोचते हैं कि दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना मानो अपनी कमी को स्वीकार करना है। इसलिए वे लोग दूसरों की किसी प्रकार की प्रशंसा नहीं करते और सही या गलत आलोचना करने से हिचकिचाते नहीं।

माँ को अपना काला-कलूटा पुत्र भी सुन्दर-सलोना दिखता है। पर वही पड़ोस के किसी दुबले तथा साँवले बालक को देखकर उसका उपहास करते हुए कहती है, 'अरे, उसके पैर तो ताड़ के वृक्ष के समान हैं; चेहरा काले तवे के समान है।' एक बार मैंने अपने एक परिचित व्यक्ति से कहा, 'लगता है कि बाढ़ में सौ से भी अधिक लोग मर गए

हैं।' उसने कहा, 'ओह ! जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ती जा रही है ! भगवान इसे घटाने के लिए कोई योजना तो बनाएँगे ही ! जन्म लेनेवालों को एक-न-एक दिन किसी-न-किसी बहाने मरना ही है।' परन्तु मान लीजिए कि यदि उसी बाढ़ में उसका कोई सगा-सम्बन्धी मर गया होता और हम उससे कहते, 'वह तो केवल विश्व को जनसंख्या-विस्फोट से बचाने के लिए मरा है', तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होती?

लोग अपने से जुड़े विषयों पर बातें करते समय भावुक हो उठते हैं, परन्तु वे दूसरों से जुड़े मसलों का विश्लेषण करते समय शुष्क युक्तिवादी बन जाते हैं। अधिकांश आलोचनाएँ इसी कोटि की होती हैं। दूसरों के दुःख-कष्टों को सहानुभूति और समझदारी की दृष्टि से देखने के लिए एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण की जरूरत पड़ती है। सभी लोगों में ऐसी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि नहीं होती।

किसी कार्य को तुम भले ही कितनी भी अच्छी तरह क्यों न सम्पादित करो, निन्दा की कुछ-न-कुछ सम्भावना तो बनी ही रहती है। आलोचना तुम्हें सजग करने हेतु चेतावनी की घण्टी मात्र है। एक अंग्रेज विद्वान के अनुसार, यदि आलोचना से पूर्णतया मुक्त होना हो, तो 'कभी कुछ मत कहो, कभी कुछ मत करो, कभी कुछ मत बनो।'।

एक संन्यासी एक खुले मैदान में लेटे थे। तक्रिए के नाम पर उनके सिर के नीचे एक ईंट रखी थी। किसी पथिक ने व्यंग्य किया, 'देखो, सर्वत्यागी संन्यासी को भी तक्रिए की जरूरत है।' अगले दिन वे संन्यासी बिना ईंट लगाए ही लेटे थे, तो उसी व्यक्ति ने फिर टिप्पणी की, 'वाह ! ये कैसे योगी हैं ! इनका ध्यान इसी ओर लगा रहता है कि लोग इनके बारे में क्या कहते हैं !' सन्तों की एक लोकप्रिय सूक्ति है - 'हे भगवान ! हम आपको प्रसन्न करने में समर्थ हो सकते हैं, परन्तु मनुष्यों को प्रसन्न करना असम्भव है !'

गौतम बुद्ध ने कहा था, 'लोग मौनी की निन्दा करते हैं, बोलनेवाले की निन्दा करते हैं और अल्पभाषी को भी नहीं छोड़ते । संसार की आलोचना से कोई भी नहीं बच सकता ।'

हाँ, कोई भी निन्दा से पूर्णतः नहीं बच सकता । आइंस्टीन का 'सापेक्षता का सिद्धान्त' प्रकाशित होने पर स्वयं वैज्ञानिकों ने ही इसका 'एक मूर्खतापूर्ण सिद्धान्त' के रूप में उपहास किया था । निन्दा बिलकुल हृदयहीन होती है; वह व्यक्ति का सम्मान नहीं करती ।

निन्दक कुछ भी कह सकते हैं । परन्तु यदि तुम आश्वस्त हो कि उनकी बातें निराधार हैं, तो तुम उनकी उपेक्षा कर सकते हो । तुम भगवान से प्रार्थना कर सकते हो, 'हे प्रभो ! उनकी कटु आलोचनाओं के प्रति मुझे बहरा बना दीजिए ।'

आत्मालोचन : एक कसौटी

ह्यूबर्ड ने कहा था, 'प्रत्येक मनुष्य दिन भर में कम-से-कम पाँच मिनट मूर्ख सदृश व्यवहार करता है ।' हम चाहे जितने भी बुद्धिमान हों, चाहे जितने भी भाग्यवान हों, हम निष्कलंक या बेदाग नहीं हैं । निश्चय ही हम पूर्ण नहीं हैं । हम अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति हो सकते हैं, हमारे पास लम्बा अनुभव हो सकता है, फिर भी हम गलती कर सकते हैं । हम अपनी ही गलती के प्रति अनभिज्ञ हो सकते हैं अथवा उसे जानकर भी हम उसकी उपेक्षा कर सकते हैं अथवा यदि हमने अपने चरित्रबल के फलस्वरूप कष्ट उठाया हो और उसकी परवाह न की हो, तो इस कारण भी लोग हमारी आलोचना कर सकते हैं । परन्तु आलोचना यदि सत्य और रचनात्मक हो, तो हमें उससे मुँह क्यों मोड़ना चाहिए?

एक ज्ञानी व्यक्ति ने एक बार कहा था, 'हमारे बारे में हमारे मित्रों की अपेक्षा हमारे शत्रुओं द्वारा कही बातें प्रायः सत्य के अधिक

निकट हुआ करती हैं।' जिस प्रकार हम अपनी पीठ नहीं देख सकते, उसी प्रकार हम अपनी कमियों को नहीं समझ पाते। कभी-कभी सत्य व रचनात्मक आलोचना भी हमें अनुचित, कटु तथा मिथ्या प्रतीत होती हैं और इस प्रकार हम खुद को धोखा देते हैं। अतः जब तक तुम पूर्णतया निश्चिन्त और आश्वस्त नहीं हो कि कोई आलोचना निराधार है, तब तक उसकी उपेक्षा करना बुद्धिमानी नहीं है।

लगभग सभी प्रकार की आलोचनाओं से बचने का एक ही उपाय है - 'स्वयं ही अपने कठोरतम आलोचक बन जाओ।'।

याद रखो - आलोचना को प्रत्यालोचना से शान्त नहीं किया जा सकता। आलोचक को अपना मित्र समझकर प्रेम और आत्मविश्वास के साथ उस पर विश्वास करो। यदि आलोचक को यह पता चल जाता है कि तुम उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हो, तो उसकी आलोचना की धार मन्द पड़ जाती है।

क्या केवल स्तुति और प्रशंसा की आशा करना उचित है? एक लेखक ने एक बार कहा था, 'लोग पाँच मिनट में ही, दस वर्षों के कठिन परिश्रम से लिखी गई पुस्तक के पन्ने पलटकर कह बैठते हैं, "आपकी पुस्तक अच्छी है।" मैं ऐसी प्रशंसा से ऊब चुका हूँ।' कुछ लोग तुम्हारे प्रति आदर भाव के कारण, तुम्हारे कुछ ऐसे गुणों का बखान कर सकते हैं, जो वस्तुतः तुममें नहीं हैं। कुछ लोग तुम्हारे सामने चापलूसी करके पीठ पीछे कहते हैं, 'देखो, मैंने तो बड़ाई के दो शब्द ही कहे और वह अहंकार से कैसा फूल गया है!' कुछ अन्य लोग अपना काम निकालने के लिए तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं। तुम्हारा ठीक मूल्यांकन करने तथा अपना स्पष्ट मत बतानेवाले लोग अत्यन्त विरले हैं। यदि तुम इस बात को समझ लो, तो चापलूसी से प्रभावित नहीं होगे।

एक बार एक आगन्तुक ने स्वामी रामतीर्थ से कहा, 'लोग आपको पसन्द नहीं करते।' स्वामी रामतीर्थ ने उत्तर दिया, 'सेब अच्छा लगने पर लोग उसे खा जाते हैं; बेर अच्छा लगने पर वे उसे भी खा जाते हैं; माँस अच्छा लगने पर वे उसे भी खा जाते हैं। अच्छा है कि वे मुझे पसन्द नहीं करते। अन्यथा, वे मुझे भी खा गए होते।'।

खुशामद के गुलाम हो जाने पर हम अपने आदर्श से च्युत हो जाते हैं। तब हम प्रसन्न रहने के लिए सदैव चापलूसी पर निर्भर हो जाते हैं और हमारा जीवन अपने नियंत्रण में नहीं रह जाता। इमर्सन ने कहा था, 'यह कभी मत पूछो कि संसार क्या कहेगा, लोग क्या कहेंगे। अपना कर्तव्य करते रहो। जो व्यक्ति जीवन में अपनी लक्ष्य-प्राप्ति की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखता है, मनुष्यों में वही सर्वाधिक सुखी है।'।

कार्यकुशल बनो, साहसी बनो

भारतीय जीवन बीमा निगम के एक वरिष्ठ अधिकारी ने एक बार मुझे बताया कि वे अपनी सुदीर्घ सेवा-काल के दौरान, प्रेम और विश्वास के जरिए अपने सैकड़ों अधीनस्थों पर कैसे नियंत्रण स्थापित करने में सफल हो सके थे -

'सभी दफ्तरों के समान ही मेरे दफ्तर में भी तीन प्रकार के कर्मचारी थे। उनमें से दो या तीन कर्मचारी तो बड़े सच्चे, ईमानदार, कुशल और आज्ञाकारी थे। दो कर्मचारी अनुशासन-हीन, विध्वंसक मानसिकतावाले, शरारती और कामचोर थे। अन्य सभी इन दो श्रेणियों के बीच के थे। ये लोग इस दल से उस दल में आते-जाते रहते थे। ये दुलमुल स्वभाववाले कर्मचारी इच्छा होने पर अच्छा काम कर लेते थे। इनमें से सभी के साथ एक ही ढंग का बर्ताव नहीं हो

सकता था। प्रत्येक का स्वभाव भिन्न था। हर कर्मचारी का स्वभाव और व्यवहार जानने के लिए उसकी पृष्ठभूमि का अध्ययन करना आवश्यक था। उनकी नाराजगी और अनुशासनहीनता के कारणों में से कुछ थे - पारिवारिक समस्याएँ, पदोन्नति के अवसरों की कमी के कारण उपजी निराशा, पिछले नियोक्ता के साथ विवाद की कटु स्मृतियाँ, अपनी पसन्द की जगह पर तबादला न होने से हुई निराशा, नेता बनने की आकांक्षा, स्वभावगत आलस्य, शरारती स्वभाव, आदि। उन समस्याओं में से एक का भी समाधान निकालना मेरे बस की बात न थी। मैं केवल इन समस्याओं के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने का प्रयास कर सकता था और उनके भीतर से कार्य-कुशलता व्यक्त करा सकता था।

‘निष्ठावान कर्मचारियों के लिए मुझे ज्यादा माथापच्ची नहीं करनी पड़ी। मैं यदा-कदा उनके कार्यों के प्रति अपना अनुमोदन प्रकट करके उनके लिए अपना प्रेम, विश्वास तथा आदर प्रकट कर दिया करता था। मैंने सावधानी बरती कि कहीं इसमें कृत्रिमता का आभास न हो। किसी कार्यालय का वातावरण बड़ा ही संवेदनशील होता है। यदि एक अच्छे कर्मचारी की प्रशंसा की जाती है, तो अन्य कर्मचारी सामान्यतया ईर्ष्यालु बन जाते हैं और फिर उनके कामचोर और आलसी बन जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। अतः मुझे अत्यन्त सजग और सचेत रहना था। कई बार मैं उन कर्मचारियों के साथ एकान्त में बैठकर उनके प्रति अपनी प्रशंसा व्यक्त करता था। मैं यह दर्शाने के लिए पर्याप्त कारण दिखाता था कि मेरी यह प्रशंसा उचित है।

‘दूसरी श्रेणी के कर्मचारी किसी रणनीति के वश में नहीं थे। वे कर्मचारी-संघ के नेतागण थे, जिनके मन में यह पूर्वाग्रह था कि एक वर्ग के रूप में अधिकारी ही उनके शत्रु थे। यद्यपि वे बुद्धिमान और

समझदार थे, परन्तु वे अपने पूर्वाग्रह पर अटल थे। वे इस विचार को छोड़ नहीं सके थे। मैंने पाया कि वे भी कभी-कभी सद्भावना रखना चाहते थे, परन्तु विरोध की अपनी घोषित नीति के कारण वे अपनी अच्छाई को दबाने का प्रयत्न करते थे। चूँकि मैं यूनियन के नेताओं की समस्या से अवगत था, अतः मैं उनके साथ सहानुभूति, समझदारी और सौहार्द की मानवीय भावना रखकर व्यवहार करता था। यह मेरे स्वभाव के अनुकूल था। प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वभाव, अपनी क्षमता और अपनी सीमाएँ होती हैं। अन्ततः यही बात महत्वपूर्ण होती है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी अन्य की नकल न करके, अपने स्वभाव के अनुरूप जीवन-प्रणाली अपनानी चाहिए। मेरा मार्ग ईमानदारी और सहानुभूति का था। इसका परिणाम आने में कुछ समय अवश्य लग सकता है, परन्तु परिणाम दीर्घकालिक होते हैं। किसी प्रकार की युक्ति या चाल मेरे वश के बाहर थी। मैं अस्थायी चमत्कारों में विश्वास नहीं करता था। कुछ घण्टों के लिए किसी को मूर्ख बनाकर उनसे कुछ करा लेने की चाल मुझे अच्छी नहीं लगती थी। मेरे अधीनस्थ कर्मचारी मेरे साथ कम-से-कम तीन या चार वर्षों तक रहते थे। यह एक दीर्घकालिक सम्बन्ध हो जाता था। मुझे कर्मचारियों के साथ व्यवहार का अपना निजी मार्ग ढूँढ़ना पड़ा था। निःसन्देह, हमारी कम्पनी में अधिकारियों के पास पर्याप्त अधिकार थे, परन्तु वे केवल कागजी ही थे। कर्मचारियों के विरुद्ध उनका प्रयोग कर पाना अत्यन्त कठिन था। इन अधिकारों के प्रयोग का अर्थ था यूनियनों का विरोध मोल लेना। मैं अनुभव के आधार पर आश्वस्त था कि सही समाधान निकालने के लिए कानूनी उपायों को लागू करना व्यर्थ था। इन सभी कारणों से, समस्या से निपटने के लिए मेरे पास ईमानदारी, निष्ठा तथा मानवीय गुणों के प्रयोग करने का विकल्प ही बचा था।

‘पहले के कुछ महीने तो कर्मचारी संदेह करते रहे कि कहीं मैं उनकी आँखों में धूल झाँकने का प्रयास तो नहीं कर रहा हूँ। मैं उनके आक्रामक व्यवहार को सहता रहा। जब कभी उत्तर देना अपरिहार्य हो जाता, तो मैं तर्कसंगत उत्तर देता। यदि असावधानीवश कोई भूल हो जाती, तो मैं उसे स्वीकार करके भूल-सुधार का प्रयत्न करता। अपने लिए निर्धारित कार्यों को मैं पूरी एकाग्रता के साथ सम्पन्न करता था। उन दिनों मैं सुबह के ९.३० बजे से रात के ९ बजे तक कार्य किया करता था। वस्तुतः तब बहुत-से कार्य करने होते थे। इसके अतिरिक्त अपने स्टाफ के साथ विश्वसनीयता बनाए रखना भी आवश्यक था। धीरे-धीरे मैंने पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लिया। मेरे भीतर असाधारण आत्मविश्वास और नैतिक साहस आ गया। कार्यालय में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक समय तक रहने और अधिकतम कार्य सम्पादित करने के कारण मुझमें श्रेष्ठता का भाव भी जाग्रत हो गया। मैंने दूसरों से कार्य करवाने का नैतिक बल प्राप्त कर लिया। इसके साथ ही मैं धैर्य-रूपी सदगुण का भी अभ्यास करता रहा। क्रोध और चिड़चिड़ेपन को नियंत्रित करना मेरे लिए एक बड़ी चुनौती थी। मैंने यह अनुभव कर लिया था कि अनियंत्रित भावनाओं के विस्फोट से एक छोटी-सी समस्या भी कैसा गम्भीर रूप धारण कर सकती है! तब से मैंने सतत अभ्यास द्वारा आत्मसंयम सीखने का प्रण कर लिया। इससे प्रारम्भ में गम्भीर मानसिक तनाव होने लगा। परन्तु मैं यह भलीभाँति जानता था कि अनियंत्रित वाणी किस प्रकार सब कुछ गुड़-गोबर कर सकती है। इसलिए मैंने धीरे-धीरे आत्मनियंत्रण की कला को आत्मसात् कर लिया।

‘परम्परा से ही बीमा एजेंटों को बीमा कारोबार का मेरुदण्ड माना जाता है। कुछ एजेंट बड़े झगड़ालू होते हैं। वे अपनी माँगों को तुरन्त पूरी करने की अपेक्षा रखते हैं। ऐसा न होने पर, वे

झल्लाकर वरिष्ठ अधिकारियों से गुमनाम शिकायतें करने लगते हैं। ऐसे ही एक एजेंट ने एक सुविधा की माँग की जो स्वीकार्य न थी। सम्बन्धित अधिकारी ने उसकी मंजूरी नहीं दी। वह एजेंट क्रुद्ध हो गया। वह हमें और हमारी कम्पनी को बुरा-भला कहते हुए चिल्लाने लगा, “तब आप एजेंटों को अपने कारोबार का मेरुदण्ड क्यों कहते हैं?” अपने कर्मचारियों का बचाव करने की गरज से मैंने कहा, “मेरुदण्ड तो हमेशा पीछे ही होता है, न कि सामने।” कार्यालय के सारे कर्मचारी जोर-जोर से हँसने लगे। एजेंट इसमें अपना अपमान समझकर लौट गया। दफ्तर के कर्मचारी प्रसन्न थे। परन्तु बाद में मुझे पता चला कि उसने मेरे खिलाफ उच्च अधिकारियों के पास शिकायत भेजी है। चूँकि वे उच्च अधिकारी मेरी सत्यनिष्ठा के बारे में जानते थे, अतः वे उस शिकायत से प्रभावित नहीं हुए। ऐसी घटनाएँ कई बार घटीं थीं।’

प्रेम किसी के जाति या वर्ग को नहीं पहचानता। पवित्र प्रेम अधीनस्थ का दिल जीत सकता है तथा अफसरों की प्रशंसा दिला सकता है। हाँ, यही प्रेम का जादू है।

प्रेम सबसे बड़ा इलाज है

एक कहावत है, ‘युद्ध पहले मानव-मन में और तदुपरान्त युद्ध के मैदान में लड़े जाते हैं।’ हाँ, सभी युद्धों का मूल उद्गम घृणा, ईर्ष्या और द्वेष में है; दूसरे शब्दों में कहें तो प्रेम के अभाव में है। घृणा की चिनगारी हृदय को जलाने लगती है। यह ईर्ष्या, बेचैनी और असन्तोष की अग्नि को प्रज्ज्वलित करती है। इसके कारण मनुष्य विवेक-शक्ति गँवा बैठता है। प्रेम का स्रोत सूख जाने पर घृणा के पात्र की हर वस्तु, उसके तौर-तरीके, उसका व्यवहार, उसकी मुद्रा, उसके कार्य, उसका परिधान और उसकी कार्य-प्रणाली आदि असह्य

हो उठते हैं। उसका दुःख हमारे लिए आनन्द-स्रोत बन जाता है। उसकी पीड़ा हमारे हर्ष का विषय बन जाती है। यह कैसी विडम्बना है !

प्रकृति का सावधानीपूर्वक निरीक्षण करनेवाले लोग उसके प्रेम के सन्देश को समझकर कभी हिंसा में लिप्त नहीं हो सकते। मधुमक्खियों के स्पर्श से क्या हमने कभी पुष्पों को संकुचित होते देखा है? कामधेनु क्या कभी अपने पास दूध दुहने के लिए आनेवाले व्यक्ति पर आक्रमण करती है? क्या मछलियों को परेशान करने के लिए कभी तुमने समुद्र को सूखते देखा है? क्या मनुष्यों की क्रूरता को देखते रहने के बाद भी सूर्य नित्य उदय होने से विरत होता है? प्रकृति-माता के वक्ष से हम प्रेम का अजस्र स्रोत बहता देख पाते हैं। वह हमें पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम का पाठ पढ़ाती है। समग्र मानवता के कल्याण हेतु प्रकृति निरन्तर यही सन्देश दे रही है।

हाँ, यदि किसी मनुष्य का हृदय पवित्र हो जाए, तो वह दया और प्रेम का खजाना और स्नेह का धाम बन जाता है। यह प्रेम हमारे घरों से असन्तोष और अभाव-बोध को दूर भगाकर वहाँ विशुद्ध आनन्द और सुख के लिए जगह बना देता है। प्रेम सचमुच ईर्ष्या और असहिष्णुता को विनष्ट करनेवाली शक्ति है। चलिए हम सभी प्रेम की पुकार का उत्तर दें। सर्वत्र सुख-शान्ति और समृद्धि व्याप्त हो जाए! हम भेदभाव को छोड़कर सभी लोगों पर पवित्र और अहैतुक प्रेम की वर्षा करें।

‘सभी लोग सुख-शान्ति से रहें’ – यही हमारा मंत्र बन जाए और यह सदैव हमारी जिह्वा पर स्थित रहे।

अध्याय ३

अविश्वसनीय परन्तु सत्य

अपने जन्म के पहले का मैं नहीं जानता । अपनी मृत्यु के बाद के बारे में भी मैं नहीं जानता । इन दोनों के बीच की अवस्था में यदि मैं कहूँ कि 'मैं सब कुछ जानता हूँ' तो यह कितनी हास्यास्पद बात है ।

— कनकदास

मनुष्य के अत्याचार से भयभीत होकर सत्य को विकृत मत करो ।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अपनी सामर्थ्य और ज्ञान के परे की चीजों के बारे में अपने अज्ञान को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करो । उसी से ज्ञान की खिड़की खुल सकती है ।

— कन्ययूशियस

यह केवल विश्वास या अभिमत का विषय नहीं है । मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि मरने के बाद भी जीवन होता है ।

— डॉ. एलीजाबेथ कुबलर रोज

विज्ञान को अब तक अनछुए अपसामान्य क्षेत्र से बहुत कुछ सीखना है ।

— जे. जी. फुलर

मुझे पूरा विश्वास है कि इस समय हम अनन्त में निवास कर रहे हैं, पर एक अजन्मे शिशु की भाँति गहरी निद्रा में हैं । कभी-कभी कुछ शान्त क्षणों में हमें बोध होता है कि संसार जैसा दिखता है, वस्तुतः वैसा नहीं है । सचमुच ही जाग्रत हो जाने पर हम यह पाते हैं कि अनन्त हमारे सम्मुख धुँधले रूप में व्याप्त है और हमारा अतीत सुस्पष्ट रूप से पीछे की ओर स्थित है ।

— डा. गुस्ताफ स्ट्रामबर्ग

हम इस संसार में अपने कर्मों द्वारा आए हैं । जैसे हम अपने वर्तमान कर्मों का पूरा भण्डार लेकर यहाँ से जाते हैं, वैसे ही अतीत के कर्मों को साथ लेकर यहाँ आते हैं । जो चीज हमें बाहर निकालती है, वही हमें यहाँ लाकर बन्धन में भी डालती है । हमें इस संसार में कौन-सी वस्तु ले आती है? हमारे अतीत के कर्म । हमें इस संसार से कौन ले जाता है? इस संसार में किए हुए हमारे अपने ही कर्म । और इसी प्रकार हम आते-जाते रहते हैं ।

— स्वामी विवेकानन्द

विचित्र किन्तु सत्य !

ऊपरी तौर से चमत्कार-जैसी दिखाई पड़नेवाली वस्तु या घटना सावधानीपूर्वक परीक्षण के बाद सत्य के रूप में स्वीकार की जाती है। यह सर्वदा, सर्वत्र और बारम्बार होता आया है। एक बालक एक प्रकाशमान बिजली के बल्ब को देखकर चकित हो सकता है, एक गतिमान बस को देखकर विस्मित हो सकता है, परन्तु एक वयस्क व्यक्ति जानता है कि बल्ब विद्युत्-प्रवाह से जलता है और बस डीजल से चलती है। वयस्क व्यक्ति के लिए ये चमत्कार नहीं हैं। इसका अर्थ है कि चमत्कार व्यक्तिपरक या स्वानुभूतिमूलक होता है। ऐसे अनेक चमत्कार हमारे जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं।

श्रीरामकृष्ण कहते थे - 'एक व्यक्ति भेड़-जैसी आवाज निकालता था और उसे सुनने के लिए लोगों की भीड़ जुट जाती थी। उसकी इस क्षमता पर सभी चकित रह जाते। एक बुद्धिमान व्यक्ति ने एक सचमुच की भेड़ लाकर लोगों को उसकी आवाज सुनाई। परन्तु लोगों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।' सत्य मुखौटे के पीछे छिपा है, पर लोग नकली वेष हटाकर उसके भीतर छिपे सत्य को खोजने का प्रयास नहीं करते। दर्शक एक जादूगर के जादुई कारनामों को देखकर विस्मित हो जाता है। यदि आप किसी जादूगर के मित्र बन जाएँ, तो आपको पता चल जाएगा कि उसका जादू चतुराईपूर्ण हाथ की सफाई मात्र है। जादुई करतब का चमत्कारी प्रभाव समाप्त हो जाए और उसकी चमक-दमक भी चली जाए, तथापि उसे देखने की इच्छा समाप्त नहीं होती। इस परिवर्तन का कारण जादूगर के करतबों में नहीं, अपितु दर्शक के दृष्टिकोण में है।

समुद्र में गोता लगानेवाले लोग ही मोती और कीमती रत्नों को खोज पाते हैं। गहराई से जाँच-पड़ताल करने पर, जीवन और मृत्यु

की चमत्कारिक घटनाएँ, उनके पीछे निहित सत्य के प्रकट होने पर साधारण प्रतीत होती हैं। ये घटनाएँ हमें अपने जीवन के अतीत तथा भविष्य का बोध प्रदान करती हैं।

दृश्य और अदृश्य सत्य

क्या मनुष्य अस्थि, रक्त, मांस तथा मांसपेशियों का संयोजन मात्र है? क्या शरीर के भीतर कोई चेतन तत्त्व है, जो इन सब से भिन्न है तथा शरीर को भीतर से नियंत्रित करता है? क्या शरीर इस चेतन तत्त्व के लिए एक बाह्य आवरण मात्र है?

यद्यपि हम जीवित और मृत मनुष्य के बीच आसानी से भेद कर लेते हैं, तथापि जीवन के बारे में हमारी समझ गहरी और व्यापक नहीं है। जिसे हम 'जीवित' कहते हैं, वह भौतिक पदार्थों का एक संयोजन मात्र नहीं है। वनस्पति, पशु या मानव आदि कोई भी जीवित प्राणी, अपने पूरे जीवन काल में पर्यावरण से निरन्तर वायु तथा पोषण प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है और आवश्यक तत्वों को आत्मसात् करने तथा अनावश्यक तत्वों का उत्सर्जन करने की क्षमता भी रखता है। अत्यन्त जटिल शारीरिक प्रक्रियाएँ बड़े सुसंगत ढंग से और एक विशेष उद्देश्य से सम्पन्न होती हैं। श्वास-प्रश्वास, दिल की धड़कन, रक्त का संचार, ग्रन्थियों से सम्बन्धित क्रियाएँ, पाचन, विलयन तथा मल-विसर्जन, ऊतकों का पुनर्नवीनीकरण, शारीरिक तापमान का सन्तुलन - ये सभी चीजें पूर्ण नियमितता और आवश्यकता के अनुसार घटित होती हैं। जैसे बिजली चली जाने पर पंखा बन्द हो जाता है, वैसे ही जीवित शरीर से, उसके क्रिया-कलापों के लिए जिम्मेदार उस स्वयं-प्रकाश तत्त्व के चले जाने पर वह मृत कहलाता है। अब प्रश्न उठता है कि उस चले जानेवाले तत्त्व का स्वरूप क्या है? जब तक वह शक्ति क्रियाशील रहती है, तब तक शरीर के भीतर

लाखों कोशिकाएँ पूर्ण निष्ठा और दक्षता के साथ अपना कार्य पूरा करती रहती हैं। परन्तु उस तत्त्व के लुप्त हो जाने पर सारे क्रिया-कलाप स्थगित हो जाते हैं और शरीर विकृत होने लगता है। जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक ये सभी क्रिया-कलाप ठीक ढंग से निरन्तर चलते रहते हैं। एक जीवित व्यक्ति कभी-कभी इन क्रिया-कलापों के बारे में अवगत भी होता है। वह अतीत की घटनाओं का स्मरण कर सकता है, इच्छानुसार चयन कर सकता है और भविष्य की झलक भी पा सकता है। वह मृत्यु का पूर्वाभास तक पा सकता है। इस प्रकार मृत्यु एक ऐसी अवस्था है, जहाँ पहुँचकर वह चेतन तत्त्व भौतिक शरीर और मन को फिर से जीवित और क्रियाशील नहीं कर पाता। इस चेतन तत्त्व की उपस्थिति के कारण जब तक मन क्रियाशील रहता है, तब तक हम प्राणी को जीवित मानते हैं। यद्यपि यह सुस्पष्ट है कि यह चेतन तत्त्व भौतिक शरीर से भिन्न है, फिर भी वैज्ञानिक लोग जीवन के इस चेतन तत्त्व को अलग से पहचान नहीं सके हैं।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने अस्थि, मांस तथा रक्त से निर्मित स्थूल भौतिक शरीर से पृथक् एक सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व की अनुभूति की थी। उन्होंने इसे 'सूक्ष्म शरीर' कहा है। यह 'लिंग शरीर' के नाम से भी जाना जाता है। भौतिक शरीर की मृत्यु हो जाने पर भी यह सूक्ष्म शरीर रहता है। सूक्ष्म शरीर विद्युत् की भाँति एक पूर्ण चमत्कारिक तरीके से, स्थूल भौतिक शरीर के अत्यन्त जटिल क्रिया-कलापों को निर्देशित तथा नियंत्रित करने की क्षमता रखता है। अतीत काल में योगियों ने ध्यान के द्वारा इस सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व की अनुभूति की थी। यह ऋषियों की कोई कल्पना-कथा नहीं, अपितु निजी अनुभव और अनुभूतिजन्य विश्वास था। यहाँ तक कि कभी-कभी साधारण लोग भी इसकी सत्ता की अनुभूति कर सकते हैं। देहातीत

अस्तित्व अथवा देहातीत अनुभव, किसी मृत व्यक्ति की आत्मा का अन्य जीवित व्यक्ति के शरीर में देहान्तरण और किसी व्यक्ति पर अन्य आत्मा का 'आवेश' - ये बातें सभी देशों में, सभी कालों में और यहाँ तक कि आधुनिक युग में भी देखने में आती हैं। यद्यपि कुछ मामलों में छल-कपट, कल्पना या अन्धविश्वास की सम्भावना हो सकती है, परन्तु एक निश्चित वास्तविक सत्ता के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हम इन सच्ची घटनाओं का अध्ययन करें, तो हमें इस स्थूल भौतिक शरीर से पृथक् एक तत्व (आत्मा) के अस्तित्व का पता चलता है। मानव जीवन शरीर तक ही सीमित नहीं है, इसका एक लोकोत्तर या आध्यात्मिक आयाम भी है।

भौतिक-विज्ञान सामान्यतया मस्तिष्क से पृथक् किसी मन के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। परन्तु वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में कुछ घटनाओं का अध्ययन किया है और सत्य को जानने की चेष्टा भी की है। विशेषज्ञों ने अधोलिखित यथार्थ घटनाओं का परीक्षण तथा विश्लेषण किया है। आप भी इन घटनाओं के 'क्यों तथा कैसे' को समझने का प्रयास कर सकते हैं।

एक के भीतर दूसरा व्यक्ति

यहाँ एक व्यक्ति की सच्ची कथा है, जिसे हजारों ऐसे लोगों ने प्रत्यक्ष देखा तथा जो उसके ऋणी थे। वह कोई महान व्यक्ति या संन्यासी या ज्ञानी पुरुष नहीं था। वह ब्राजील का एक निर्धन कृषक था। बुद्धिजीवियों और वैज्ञानिकों के लिए यह एक विस्मय की बात थी कि वह नाटकीय ढंग से कैसे एक कुशल शल्य-चिकित्सक में परिणत हो गया। उसने न तो औषधि-विज्ञान का अध्ययन किया था और न ही कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उसके द्वारा उपयोग में लाए गए औजारों का निर्माण किसी आधुनिक कारखाने में

नहीं हुआ था। उसने रसोईघर के एक साधारण चाकू से असंख्य ऑपरेशन किए थे। चाहे आँख का मोतियाबिन्द हो, या शरीर के किसी भाग में दर्दनाक जलन हो, व्यक्ति के अंगों को संज्ञाशून्य किए बिना ही और बिना किसी पीड़ा के, शल्य-चिकित्सा के दौरान रोगी को पूरे होश में रखकर, वह चाकू से कुशलतापूर्वक ऑपरेशन किया करता था।

उसके पास उपचार हेतु नित्य लगभग ३०० रोगी आया करते थे। उसका ऑपरेशन-कक्ष निहायत छोटा था, जिसमें मात्र एक मेज तथा एक कुर्सी थी। ब्राजील के सभी भागों से लोग रोगमुक्त होने के लिए इस चमत्कारी चिकित्सक के पास आते थे। अन्धों को नेत्रज्योति मिल जाती और अपंग अपनी बैसाखियों को छोड़कर स्वाभाविक ढंग से चलने लगते थे। जिन अलसर, ट्यूमर और संक्रान्त ग्रन्थियों का विशेषज्ञ लोग पता तक नहीं लगा पाते थे, उन्हें वह अपने चाकू की मदद से कुछ ही मिनटों में निकाल देता था। फिर पल भर में ही वह दवा का नुस्खा भी दे देता। वह भोलेभाले ग्रामीणों की आँखों में धूल झाँकनेवाला कोई ओझा नहीं था। रियो-डि-जेनरो क्षेत्र, पॉलो विश्वविद्यालय के और मेडिकल अकेडमी ऑफ ब्राजील के चिकित्सक इस ऑपरेशन-प्रणाली की जाँच-पड़ताल करके स्तब्ध रह गए। यह जानकर वे चकित रह गए कि उसके सभी ऑपरेशन सफल थे। अमेरिका के विख्यात चिकित्सक डॉ. पुहारिक ने ब्राजील के इस विचित्र सर्जन से अपना ऑपरेशन कराया और उसका फोटो खींचा। वे स्वयं इस सर्जन के असाधारण ऑपरेशन-कौशल के साक्षी बन गए। पर उसके द्वारा किए गए सैकड़ों ऑपरेशन उनके लिए एक अबूझ पहेली ही बने रहे।

उस चिकित्सक का नाम था जी. एरिगो। वह एक निर्धन ग्रामीण था, जिसकी औपचारिक शिक्षा नगण्य थी। परन्तु उसका संवेदनशील हृदय लोगों के दुःख-कष्टों को देखकर द्रवित हो जाता था। उसकी

सेवा के पीछे यही प्रेरणा-शक्ति थी। १९५५ से १९७१ ई. में अपनी मृत्यु तक वह यह चमत्कारिक शल्य-चिकित्सा करता रहा। उसके क्लिनिक का नाम था, 'नाजरेथ के प्रभु ईसा का आध्यात्मिक केन्द्र'। वह प्रातःकाल ७ बजे वहाँ पहुँच जाता। तब तक लोग अपने उपचार हेतु वहाँ पंक्तिबद्ध होकर प्रतीक्षा करते हुए मिलते। प्रातःकालीन प्रार्थना करके जब वह ऑपरेशन के लिए तैयार होता, तब वह एक ग्रामीण नहीं रह जाता। तब वह डॉ. फ्रिट्ज का अवतार हो जाता था और अपनी जर्मन-मिश्रित-पुर्तगाली भाषा बोलता था। इसके पूर्व, अपनी सामान्य अवस्था में, वह जर्मन भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता था, परन्तु अब वह उस भाषा में धाराप्रवाह बातें करता था।

ईसाई पादरियों ने सोचा कि बिना किसी मेडिकल डिग्री या लाइसेंसवाले इस व्यक्ति द्वारा किया जानेवाला उपचार एक तरह का काला जादू है और उन्होंने इसका विरोध किया। जी. एरिगो को कारागृह में डाल दिया गया। उसका एकमात्र दोष यह था कि वह कानूनी अधिकार के बिना ऑपरेशन और उपचार किया करता था। उसे यह सब कार्य रोक देने को कहा गया। वस्तुतः वह उसे रोकने के लिए तैयार भी था। परन्तु वह पीड़ित और व्यथित लोगों के दुःख देखकर उसे सहन नहीं कर पाता था, अतः वह उपचार करने को मजबूर हो जाता। फलस्वरूप उसे पुनः कारागार में डाल दिया गया। उसके उपचार से स्वस्थ हुए लोगों ने करुणार्द्र होकर आठ लाख चालीस हजार डॉलर की चन्दे की धनराशि एकत्र करके उसे उपहार-स्वरूप भेजी। परन्तु उसने वह धनराशि लौटा दी। उसने अपने रोगियों से एक पैसे की भी अपेक्षा नहीं की।

११ जनवरी, १९७१ को एक सड़क दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी अंत्येष्टि-क्रिया में हजारों लोगों ने भाग लेकर उसे श्रद्धांजलि दी। उसका जीवन वृत्तान्त प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक 'रीडर्स'

डाइजेस्ट' (मई, १९७५) में सचित्र प्रकाशित हुआ था। यह हर किसी के लिए पठनीय है।

अपनी चमत्कारिक शक्ति का रहस्य पूछे जाने पर उसने इतना ही कहा था - 'चिकित्सक जैसी वेशभूषावाला एक व्यक्ति रात में प्रायः मेरे सम्मुख प्रकट होता था। वह अपने ही जैसे अन्य चिकित्सकों के साथ कुछ बातें करने के बाद शल्य-क्रिया के लिए तैयार हो जाता था। बाद में उसने बताया, "मैं डॉ. फ्रिट्ज हूँ। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान एक सर्जन के रूप में सेवा करते हुए मेरी मृत्यु हो गयी थी। पीड़ित लोगों की सेवा करने की मेरी तीव्र और हार्दिक इच्छा है। अब मेरा भौतिक शरीर नहीं है। परन्तु मेरा व्यक्तित्व, मेरी स्मृति तथा सर्जन के रूप में मेरी दक्षता अभी भी यथावत् है। अतः मैं तुम्हारे शरीर को माध्यम बनाकर शल्य-क्रिया और चिकित्सा-सम्बन्धी निर्देश दूँगा।'"

जब डॉ. फ्रिट्ज का व्यक्तित्व एरिगो के भीतर आविर्भूत हो गया, तब एरिगो समझ नहीं पाया था कि वह कौन है और क्या कर रहा था। अपने वचन और व्यवहार में तब वह पूर्णतया उस मृत चिकित्सक के समान हो जाता था।

यह कोई काल्पनिक बात नहीं, अपितु एक सत्य घटना है, जिसे हजारों लोगों ने प्रत्यक्ष देखा। वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी लोग इससे भ्रम में पड़ गए और इसका विश्लेषण करने लगे। तो फिर क्या यह सत्य है कि भौतिक शरीर के विनाश के साथ ही किसी का व्यक्तित्व, क्षमता, मनोवृत्तियाँ, पसन्द-नापसन्द और दक्षता समाप्त हो जाती है? ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में विशेषज्ञों की क्या राय है? उनके अध्ययनों के क्या परिणाम हैं?

क्या मृत्यु वस्तुतः सब कुछ समाप्त कर देती है? अथवा यह जीवन का अन्त नहीं, अपितु एक सोपान मात्र है? क्या इस विषय का सच्चा ज्ञान हमारी जीवनचर्या में आमूल परिवर्तन ला देगा?

क्या मृत्यु के बाद जीवन है?

मृत्यु सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव के लिए जिज्ञासा तथा चिन्ता का विषय रही है। वह इस पर विचार करता रहा है। जन्म और मृत्यु के रहस्य को सुलझाने के प्रयत्न भी होते रहे हैं। ये प्रश्न उठते रहे हैं - मृत्यु के समय जीव को कैसी अनुभूति होती है? क्या मृत्यु-काल में असीम कष्ट होता है? भारतवासी मानते हैं कि मनुष्य एक देहधारी आत्मा है और स्वरूपतः दिव्य है। हम मानते हैं कि आत्मा शरीर में प्रविष्ट होकर भी इससे भिन्न एक अमर चेतन तत्त्व है, जिसे 'जीवात्मा' कहते हैं। क्या यह सत्य है? जब हम कहते हैं, 'वह संसार से विदा हो गया', तो इससे हमारा क्या अभिप्राय है? यह कहावत बड़ी प्रचलित है - 'देहरूपी पिंजरे को छोड़ जीवरूपी पखेरू उड़ गया।' यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि शाश्वत आत्मा तथा शरीर के बीच वही सम्बन्ध है, जो हमारे तथा हमारे मकान या परिधान के बीच है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'मृत्यु म्यान से तलवार निकालने के समान है। देहधारी आत्मा अपने देहरूपी आवरण को छोड़ देती है।' तो फिर आत्मा कहाँ चली जाती है?

हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्म 'मरणोत्तर जीवन' और कर्म के सिद्धान्त की दृढ़ नींव पर स्थित हैं। सेमेटिक धर्म कर्मवाद तथा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते, परन्तु किसी-न-किसी रूप में वे विश्वास करते हैं कि शरीर की मृत्यु के बाद भी आत्मा स्वर्ग या नरक में विद्यमान रहती है। क्या भारतीय दर्शन की आधारशिला-रूप कर्मवाद और आत्मा के पुनर्जन्म की धारणा सचमुच ही तर्कसंगत है? या फिर क्या ये एक विश्वास मात्र हैं? क्या आधुनिक विज्ञान यह सिद्ध कर सकता है कि वे सार्वभौमिक सत्य हैं? गुरुत्वाकर्षण के नियम की भाँति क्या इन नियमों की समझ व स्वीकृति सभी धर्मों के

लोगों के बीच मेल-मिलाप तथा सौहार्द की भावना पैदा कर सकती है? इस अध्याय में इन प्रश्नों का उत्तर पाने का प्रयास किया गया है।

विगत कुछ वर्षों से अमेरिका तथा रूस के मनोवैज्ञानिक और मनो-चिकित्सक अतीन्द्रिय अनुभवों के विषय में शोध कर रहे हैं। अमेरिका की डॉ. एलीजाबेथ कुवलेयर रोज एक विश्वप्रसिद्ध मनो-चिकित्सक हैं। उन्होंने मृत्यु-शैया पर लेटे रोगियों के बारे में चिकित्सकों, नर्सों और रिश्तेदारों के मनोभाव में प्रायः एक क्रान्ति ला दी है। इस विषय पर दस वर्षों तक अध्ययन के बाद अपने निष्कर्षों के रूप में उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने असाध्य रोगों और मरणासन्न रोगियों तथा विभिन्न बीमारियों से पीड़ित हजारों रोगियों से बातें करके उनकी तत्कालीन मनोदशा का अध्ययन किया है। प्रायः २५ वर्षों तक एक चिकित्सक के रूप में कार्य करते हुए उनमें मरणासन्न रोगियों की प्रतिक्रियाओं के बारे में रुचि जगी। कुछ रोगी शोकातुर होकर विलाप करते थे, जबकि कुछ अन्य ने अभूतपूर्व सुख-शान्ति का भाव प्रकट किया। कुछ रोगी अज्ञात शक्तियों के सम्पर्क से इस संसार से अपने प्रस्थान का दिन प्रसन्नतापूर्वक बता देते। कुछ समय के लिए तो चिकित्सकों ने सोचा कि यह भावना किसी दवा के फलस्वरूप होती है। परन्तु कोई दवा न लेनेवाले रोगियों में भी यही बात दीख पड़ी। कुछ रोगियों की प्रतिक्रिया बड़ी विचित्र थी और वह मरणोत्तर अस्तित्व की ओर भी संकेत करती थी।

डॉ. रोज ने अमेरिकी लोगों के समक्ष स्पष्ट स्वर में 'मृत्यु के बाद जीवन' विषयक अपनी धारणा घोषित की और इस प्रकार उत्तरीय विशेषज्ञों तथा मीडिया-जगत में एक विवाद खड़ा कर दिया। यद्यपि वे अपने अध्ययन के निष्कर्षों को प्रकट करने की इच्छा न थी, पर एक माता के भावुक प्रश्न के उत्तर में वे बोल उठीं, 'यह विश्वास था

अभिमत का प्रश्न नहीं है। मैं निःसन्दिग्ध रूप से जानती हूँ कि मृत्यु के बाद जीवन है।^१

जब विवाद कुछ ठण्डा पड़ा, तो केनेथ वुडवर्ड नामक एक सज्जन डॉ. कुवलेयर रोज से मिले और 'मृत्यु के बाद के जीवन' के विषय में अधिक विस्तार से जानने की इच्छा व्यक्त की। डॉ. रोज ने वुडवर्ड के समक्ष एक अन्य महत्वपूर्ण घटना का वर्णन किया, जो तब तक उनकी किसी भी पुस्तक में प्रकाशित नहीं हुई थी। वह घटना इस प्रकार है -

मृत्यु के बाद फिर जी उठना

यह घटना अमेरिका के इण्डियाना अस्पताल में हुई थी। ४० वर्ष की एक महिला यकृत की गम्भीर बीमारी से पीड़ित थी। उसकी हालत खतरे में थी, पर किसी प्रकार उसमें सुधार आया। उसकी बीमारी फिर बढ़ी और आपातकालीन उपचार हेतु उसे अस्पताल में भर्ती किया गया। एक दिन दोपहर में उसकी अवस्था बिगड़ने लगी। उसे साँस लेने में तकलीफ हो रही थी। एक नर्स डॉक्टर को बुलाने दौड़ पड़ी। तभी उस रोगी को एक अद्भुत अनुभव हुआ। उसने देखा कि वह शरीर छोड़कर कमरे की भीतरी छत के नीचे एक बादल की भाँति तैर रही है। उसने नीचे शय्या पर अपना पड़ा हुआ शरीर और अपना पीला पड़ गया चेहरा भी देखा। परन्तु तब तक उसे उस अभूतपूर्व शान्ति तथा उन्मुक्तता के भाव का अनुभव हो चुका था। इस घटना का और भी विचित्र पहलू यह था कि वह महिला अपने शरीर को पुनर्जीवित करने के चिकित्सकों के अथक प्रयास को भी देख रही थी। उसे चिकित्सकों की बातें भी सुनाई दे रही थीं। चिकित्सक-दल के एक सदस्य ने थोड़ा हँसी-मजाक करके कुछ देर के लिए तनाव को दूर

^१ अमेरिकी मासिक 'मैकगाल' के अगस्त, १९७६ अंक से उद्धृत।

करने का प्रयास किया था। उस महिला ने चिकित्सकों को यह भी बताना चाहा कि उन्हें और अधिक प्रयत्न करने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह बिलकुल ठीक-ठाक है। परन्तु तब तक उसकी साँस तथा नाड़ी की गति रुक चुकी थी। रक्तचाप इतना घट गया था कि उसे मापा नहीं जा सका। मस्तिष्क में जीवन के कोई लक्षण नहीं दिखे। चिकित्सकों ने बताया कि वह मर चुकी है। पर कुछ घण्टों बाद वह बड़े विचित्र ढंग से जीवित हो गयी। उसके मस्तिष्क को कोई क्षति नहीं पहुँची थी। वह अगले १८ महीनों तक जीवित रही।

अमेरिकी श्रोताओं के समक्ष, जिसमें चिकित्सक, नर्स, मनो-वैज्ञानिक और पादरी लोग सम्मिलित थे, डॉ. रोज द्वारा परीक्षित इस घटना को प्रस्तुत किया गया। डॉ. रोज द्वारा यह घोषित किए जाने पर कि वे इसे मानसिक भ्रम मानने को तैयार नहीं हैं, लोगों ने उनका मजाक उड़ाया। डॉ. रोज बोलीं, 'चेतना लौटने पर उस महिला ने जो कुछ कहा, वह सब सच था। हम इसे भ्रम कैसे कह सकते हैं? मैं इस चमत्कारिक घटना की सच्चाई पर विवाद नहीं कर सकती।' ऐसे सैकड़ों मामलों की अध्येता डॉ. कुवलेयर रोज ने घोषणा की, 'मैं एक धार्मिक महिला हूँ, पर इस विषय में कट्टर नहीं हूँ।'

ऐसे ही अनुभवोंवाले कई चिकित्सक तथा अन्य लोग भी ऐसी अद्भुत घटनाओं के बारे में लगातार लिखते रहे हैं।

इसमें ध्यान देने की बात यह है कि ऐसे अतीन्द्रिय अनुभव पानेवाले लोगों को मृत्यु का सामना करने के लिए असाधारण साहस और तत्परता प्राप्त हुई थी। यहाँ तक कि वे मृत्यु का दुबारा सामना करने को उत्सुक थे।^१

^१ परन्तु डॉ. रोज तथा अन्य विशेषज्ञों ने यह भी बताया है कि आत्महत्या जैसे पापों से आत्मा को अतीव दुःख मिलता है।

देह यहाँ, पर देहधारी अन्यत्र

अब यह बात भी सच है कि अनेक लोग वास्तविक अनुभवों या देहातीत अनुभूतियों को मस्तिष्क का भ्रममात्र या बहुत हुआ तो स्वप्न का सजीव रूप मानकर नकार देते हैं। मनो-चिकित्सक और तथाकथित बुद्धिजीवी लोग कई वर्षों से इन अतीन्द्रिय अनुभवों को इसी भाँति समझाने का प्रयास कर रहे हैं। लोगों का यह भी विश्वास था कि केवल दुर्बल और विकृत मस्तिष्क के लोगों को ही ऐसे अनुभव होते हैं। परन्तु आज कम-से-कम कुछ मनोवैज्ञानिकों को बोध हो रहा है कि यह दृष्टिकोण अनुचित है। अमेरिका के ट्रांस-पर्सनल मनोविज्ञान विभाग ने अपने शोधों में इस विषय में यथेष्ट विवरण दिए हैं।

उनका कहना है कि अब वह समय आ गया है, जब हमें इस बात को स्वीकार कर लेना होगा कि मन मस्तिष्क से पृथक् है। एक अन्य अवधारणा, जिसे स्वीकार किया जा रहा है, यह है कि मन को नियंत्रित करके हम तंत्रिका-तंत्र और दैहिक क्रिया-कलापों को नियंत्रित कर सकते हैं। ऐसे भी संकेत हैं कि बहुत जल्दी ही वैज्ञानिक इस प्राचीन सत्य को प्रमाणित करके स्वीकार कर लेंगे कि आत्मा शाश्वत है और शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होती।

टोपेका में स्थित नासा के भूतपूर्व सैनिकों के अस्पताल में मनो-चिकित्सा विभाग के प्रमुख स्टुअर्ट ट्वेम्ब्लोव कहते हैं, 'वैज्ञानिकों को यह परा-वैयक्तिक अनुभव स्वयं प्राप्त करना चाहिए।' उन्होंने स्वयं भी अनेक प्रयोगों के परिणामों के आधार पर ही इस सत्य पर विश्वास किया था। उनके कथन उनके निजी अनुभवों पर आधारित हैं। उनका एक अनुभव इस प्रकार है -

ट्वेम्ब्लोव एक बार कैंटकी के एशटॉन प्रयोगशाला के एक सुसज्जित कक्ष में बैठे थे। उनका मस्तिष्क अल्ट्रासाउण्ड तरंगों

द्वारा उत्प्रेरित किया गया था। वे अपने परा-वैयक्तिक अनुभव का वर्णन करते हुए कहते हैं, 'मैं शरीर से पृथक् होते हुए मन को देख रहा था। मैं उसी अवस्था में द्रुत गति से एक अँधेरी सुरंग में चल पड़ा। कुछ ही पलों में मैं टोपेका के अपने घर में था। याद रहे कि उस प्रयोगशाला से मेरा घर करीब ४० किलोमीटर दूर है। मैंने देखा कि मेरी पत्नी पानी पीने रसोईघर में जा रही थी। इसके बाद वह अपने शयनकक्ष में चली गई। रात के लगभग ९.३० बजे का समय था। मैं कुछ देर उसकी बगल में खड़ा रहा, उसके बाद दर्पण के पास जाकर अपना प्रतिबिम्ब देखने की चेष्टा करने लगा। पर मुझे उसमें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। कुछ ही मिनटों में मुझे बोध हुआ कि मेरी आत्मा पुनः मेरे शरीर में प्रविष्ट हो चुकी है।

'मैंने अपनी पत्नी को ये बातें नहीं बतायीं। ऐसे अतीन्द्रिय अनुभवों में उसका विश्वास नहीं था। बाद में, जब मैं घर गया, तो मेरी पत्नी खुद ही बताने लगी, "उस दिन जब आप कैंटकी में थे, तो मैं करीब ९.३० बजे रसोईघर में गई थी। फिर वहाँ से शयनकक्ष में लौटते समय मुझे लगा कि एक छाया मेरे पास, वहाँ आकर कुछ देर रुककर, दर्पण के पास जाकर स्थिर हो गयी और उसके बाद अन्तर्धान हो गयी।"'

इस प्रमाण और अन्य प्रयोगों के निष्कर्षों के आधार पर ट्वेम्ब्लोव ने सीधे तथा साहसपूर्वक आत्मा के अस्तित्व पर बोलना शुरू कर दिया। आम तौर पर ऐसे विचारोंवाले लोग हँसी-मजाक के पात्र बन जाते हैं। अत्यधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त किसी देश में, वस्तुतः यह एक बड़ा साहसिक कदम था। ट्वेम्ब्लोव अब भी सजग भाव से कहते हैं, 'इस विचार का समर्थन करना तर्कसंगत है कि शरीर के बिना भी जीवन का अस्तित्व रह सकता है।'

स्वप्न नहीं, बल्कि सच्चाई

ऐसे असंख्य उदाहरण मिलते हैं जिनमें वैज्ञानिकों और गणितज्ञों ने अपनी समस्याओं का समाधान स्वप्न में पाया है। भारत के महान गणितज्ञ, श्री रामानुजन, एक ऐसे ही व्यक्ति थे। ऐसी घटनाएँ सिद्ध करती हैं कि हमारी चेतना विभिन्न स्तरों पर क्रियाशील रहती है। विशेषज्ञों द्वारा परीक्षित एक अन्य घटना यों है -

अमेरिका के फ्लोरिडा के विंटर पार्क में एलीजाबेथ विल्सन नाम की एक ३० वर्षीया महिला रहती थी। उसने कई बार स्वप्न में सुप्रसिद्ध विशाल जलयान 'टाइटैनिक' के समुद्र में डूबने का भयंकर दृश्य देखा और यह स्वप्न देखने पर वह भय के मारे चिल्ला उठती थी। उसने स्वयं को कथई रेशमी वस्त्रों में जहाज के नृत्यालय में खड़े देखा। उसने स्पष्ट रूप से जहाज के हिलते हुए दीपाधार तथा एक प्रकाशमय कक्ष को देखा। ज्योंही वह अपने कमरे से निकलकर जलयान के बाहरी भागों तक पहुँची, उसे सागर के खारे जल की गन्ध मिली। उसने लोगों को जीवन-रक्षक नौकाओं में कूदते देखा। वह जलयान एक ओर झुक गया और लोगों की भयावह चीत्कारों के बीच डूब गया। वह स्वयं भी गहरे पानी में डूब गयी।

जलयान के डूबते समय पल भर के लिए सर्वत्र अँधेरा छा गया। कुछ समय बाद उसने खुद को बॉस्टन में एक पार्क के निकट स्थित 'कैसिंग्टन'-भवन के सामने पाया। उस घर के पास उसे एक युवक भी खड़ा दिखा, जिसका चेहरा लम्बा तथा आँखें काली थीं। वह युवक उसका पति था। उसका स्वप्न यहीं समाप्त हो जाता था। उसने यह स्वप्न कई बार देखा।

वर्जीनिया विश्वविद्यालय के मनो-चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष डॉ. इयान स्टीवेंसन और उनके सह-शोधकर्ता पूर्व जन्मों की स्मृतियों के

बारे में शोध कर रहे थे। उन लोगों ने इस मामले में रुचि ली और जाँच-पड़ताल शुरू की। एलीजाबेथ फ्लोरिडा की निवासी थी और कभी बॉस्टन नहीं गई थी। स्टीवेंसन और उनके मित्रगण बॉस्टन गए। वहाँ उन्होंने एलीजाबेथ के देखे हुए स्वप्नों में वर्णित भवन को खोज निकाला। उस भवन का नाम और रंग एलीजाबेथ के वर्णन के अनुरूप ही थे। वहाँ वे लोग एक ८० वर्षीय व्यक्ति से मिले। उसका चेहरा लम्बा और आँखें काली थीं। वार्तालाप के दौरान उन लोगों ने उस व्यक्ति से उसके अपने जीवन के बारे में पूछा। उसका उत्तर सुनकर वे लोग विस्मित रह गए। उसने बताया कि किस प्रकार टाइटेनिक जलयान से घर लौटते समय उसकी युवा पत्नी खो गयी थी। उन लोगों ने उससे पूछा कि क्या उसके पास उसकी पत्नी का फोटोग्राफ है। उसने दराज से एक फोटो निकाल कर दे दिया। वे लोग भौचक्के रह गए। वह स्त्री मानो फ्लोरिडा निवासी एलीजाबेथ की प्रतिरूप प्रतीत होती थी।

क्या उसकी वर्तमान मनोदशा और उसके पूर्ववर्ती जीवन की दुर्घटना के बीच कोई सूत्र दिखता है? कथई रंग को देखकर वह इतनी विक्षुब्ध क्यों हो जाती थी? 'सागर' शब्द सुनते ही वह भयभीत क्यों हो जाती थी? क्या स्वप्न मानवीय चेतना के गहनतर सोपानों को देखने की एक खिड़की है? उसका स्वप्न सत्यापित हो सकनेवाले तथ्य पर आधारित था और यह पुनर्जन्म के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

मृतक महिला का पुनर्जन्म

एंटोनी क्रैक्सी इटली के मिलान शहर के एक बड़े धनी व्यक्ति थे। वे अपनी पत्नी और १२ वर्ष की पुत्री के साथ अपने बँगले में सुखपूर्वक रहते थे। एक दिन किसी ने उनकी सुन्दर तथा बुद्धिमान पुत्री का अपहरण कर लिया। उसे ढूँढ़ने के सारे प्रयत्न विफल रहे।

अन्त में उसकी लाश मिली। उनके पास सम्पत्ति, स्वास्थ्य, युवावस्था और सामाजिक प्रतिष्ठा होने के बावजूद इस दुर्घटना ने उन्हें तोड़कर रख दिया। वे इस आशा में भारत आए कि कोई आध्यात्मिक व्यक्ति उनकी मानसिक शान्ति बहाल करने में समर्थ होगा। कई तीर्थों में जाकर उन्होंने महात्माओं से भेंट की। अन्ततः उन्हें एक सन्त से आश्वासन मिला। जब उन्होंने अपनी दुर्दशा का वर्णन किया, तो सन्त ने उत्तर दिया, 'यह स्वाभाविक ही है कि माता-पिता अपनी सन्तानों को प्रेम और उनकी हित-कामना करें। पर मनुष्य द्वारा अनुभूत समस्त सुखों व दुःखों का कोई-न-कोई कारण होता है। कतिपय कार्य-कारण सम्बन्ध के कारण आपकी पुत्री को आपका प्रेम और संरक्षण मिला। अपने विगत जीवन के कर्म के फल से उसका जीवन चला गया। बालिका की देह भले ही चली गयी, पर उसकी आत्मा अब भी विद्यमान है। पुत्री के प्रति आपका प्रेम भी यथावत् है। ईशकृपा से वही बालिका कुछ वर्षों में आपके घर पुनः जन्म लेगी। चिन्ता मत कीजिए।'।

क्रैक्सी दम्पति शान्त और सन्तुष्ट हो गए। उन्होंने भारत में ही रह जाने का निश्चय किया। अपनी सम्पत्ति की देखभाल के लिए वे वर्ष में एक-दो बार इटली चले जाते। कुछ समय बाद उनके घर एक कन्या का जन्म हुआ। महात्मा ने उन्हें दर्शन देकर कहा, 'क्रैक्सी, इटली में खोई हुई बालिका अब तुम्हें मिल गई है।' उस कन्या की वाणी और व्यवहार पहली पुत्री के जैसे ही थे। क्रैक्सी दम्पति बिलकुल निश्चिन्त थे कि उनकी मृत पुत्री फिर उनके पास लौट आई है।

मृत्यु बनारस में, पुनर्जन्म पेरू में!

दक्षिण अमेरिका में स्थित पेरू के घने जंगलों में अयामारा इंडियन आदिवासी रहते हैं। ये इतने आदिम हैं कि अपने देश का

नाम तक नहीं जानते; यह भी नहीं जानते कि स्पेनिश उनकी राष्ट्रभाषा है। उनके गाँव में चर्च चलाने के लिए लीना से एक पादरी आया करते थे। उस क्षेत्र में वे ही एकमात्र शिक्षित व्यक्ति थे। एक बार एक अयामारा दम्पति अपने ६ वर्ष के सुन्दर पुत्र के साथ आए और बोले, 'इस बालक को किसी भूत ने पकड़ लिया है। यह कहता है कि इसके माता-पिता बनारस में हैं और यह वहाँ जाने के लिए हठ कर रहा है।' पादरी ने बच्चे से पूछा, 'बनारस कहाँ है?' बालक ने बेहिचक उत्तर दिया, 'भारत में।' वह अपने ब्राह्मण माता-पिता का नाम तथा बनारस में उनके घर की गली के बारे में बताने लगा। बच्चा बोला, 'मेरे पिताजी ने मेरे सातवें जन्मदिवस पर एक खिलौने की कार देकर मुझे खेलते समय सड़क पर न जाने की चेतावनी दी थी। पर उस चेतावनी की उपेक्षा करके मैं सड़क पर गया और एक कार से दबकर मर गया। मैं अपने घर लौट जाना चाहता हूँ।' सात वर्ष की आयु में कार से दबकर मर जाने के बाद, अब ठीक सात वर्ष की आयु में वह बनारस में अपने माता-पिता के पास लौट जाना चाहता था।

पादरी आश्चर्यचकित रह गया। परन्तु साथ ही वह आश्चस्त था कि उस बालक में कोई कृत्रिमता या अभिनय नहीं है। उसने यह सारा विवरण लिखकर लीना के अपने वकील मित्र ऑगस्टो को भेज दिया, जो परा-मनोविज्ञान में गहरी रुचि लेता था। ऑगस्टो ने उस पते पर रहनेवाले लोगों के नाम और बालक के माता-पिता का विवरण माँगते हुए बनारस की नगरपालिका को एक पत्र लिखा। उसने बताया था कि उसके पास उस परिवार के लिए काफी महत्वपूर्ण जानकारी है। कुछ महीनों बाद उसे उत्तर मिला। आश्चर्य की बात यह थी कि उस पते पर वही ब्राह्मण परिवार रहता था। यह भी सच था कि उसके सात वर्षीय पुत्र की मृत्यु कार-दुर्घटना में हो गई थी।

उनका विवरण पेरू में उस बालक द्वारा दिए गए विवरण से पूर्णतः मिलता था। पादरी ने इस घटना को लीना के एक समाचारपत्र में प्रकाशित किया।

जीन बगलर ने इस घटना के आधार पर 'गंगा से अमेजन तक' शीर्षक एक लेख लिखा, जो तिरुवन्नामलै के रमणाश्रम के मासिक पत्र 'माउंटेन पाथ' (वर्ष १९६६, सं.३) में प्रकाशित हुआ था। उसने यह भी लिखा, 'चूँकि मैंने लीना छोड़ दिया, इसलिए बाद में क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता। यह घटना १९४६ में घटी थी।'

अविश्वसनीय होने पर भी यह घटना सच्ची है।

जन्म और उसके पूर्व^३

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक चैम्बरलेन 'जन्म और उसके पूर्व' नामक अपनी पुस्तक में कहते हैं कि नवजात शिशु अपने अनुभवों और अपने चारों ओर हो रही घटनाओं को समझने में समर्थ होते हैं। उन्होंने अपने प्रयोगों के आधार पर यह पाया है कि शिशु जन्म के दौरान चिकित्सकों द्वारा प्रयुक्त उपकरणों से हुई असुविधा को महसूस कर सकते हैं। वे ऊपर उठाने, निद्रा से हिलाकर जगाने का अनुभव कर सकते हैं। ऐसे अध्ययनों का गहराई से अध्ययन करनेवाले चैम्बरलेन ने अपनी पुस्तक में ऐसी करीब १०० घटनाओं का वर्णन किया है। कुछ लोगों ने सम्मोहन की अवस्था में चैम्बरलेन के सम्मुख अपने जन्म का विस्तार से वर्णन किया था।

^३ 'Birth and Before, What people say about, in Hypnosis' ('सम्मोहित अवस्था में लोग जन्म और उसके पूर्व के बारे में क्या कहते हैं') - डेविड चैम्बरलेन (एक मनोचिकित्सक)। 'डेक्न हेराल्ड' अखबार में प्रकाशित उक्त पुस्तक की बेथ अन्ना क्रायर कृत समीक्षा का यह संक्षिप्त रूप है।

स्टुअर्ट नामक एक वयस्क व्यक्ति ने सम्मोहन की अवस्था में अपने जन्म का वृत्तान्त बताया था। उसका सार निम्न है -

‘मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मुझे चारों ओर से धक्का देकर गर्भ से नीचे की ओर ढकेला जा रहा था। मैं गर्भ की दीवाल पर पाँव नहीं चला पा रहा था, पाँव चलाने से मुझे ही पीड़ा होती थी। इसलिए मैंने घुटने मोड़ लिए। मुझे सिर पर दबाव का अनुभव हुआ। कोई मुझे नीचे ढकेल रहा था। परन्तु मैं हिल-डुल नहीं सकता था। मेरे जबड़ों में दर्द हो रहा था। चिकित्सक मेरा कन्धा पकड़कर खींच रहा था। मैं बाहर नहीं आ सकता था। चिकित्सक बार-बार कह रहा था, “धक्का दो।” मेरी माँ केवल रोती जा रही थी। उसे जरा भी आराम नहीं मिल रहा था। माँ का शरीर कड़ा और तना हुआ था। मेरा शरीर भी तना हुआ था। चिकित्सक अधीर था। चिकित्सक द्वारा अपेक्षित गति से मैं बाहर नहीं आ रहा था। वह मुझे साँस लेते देखने को व्यग्र था। अब मेरा कन्धा बाहर निकल आया था। मेरा शरीर अब पहले जैसा कड़ा नहीं रहा। अब चिकित्सक पहले जैसी कठोरता से मुझे नहीं खींच रहा था। परन्तु वह कहता जा रहा था कि मुझे जल्दी बाहर आना चाहिए। परन्तु मैं जल्दी नहीं निकल पा रहा था। मुझे फिर पकड़ लिया गया। चिकित्सक कहता है कि मैं हाथ-पाँव फैला नहीं रहा हूँ। मैं इसे नहीं समझ पाता।’

सन् १९७५ में डॉ. चैम्बरलेन गर्भस्थ भ्रूण के जीवन और जन्म की स्मृतियों के विषय में रुचि लेने लगे। उनके अपने ही एक रोगी ने उन्हें इस अध्ययन हेतु प्रेरित किया। सम्मोहन अवस्था में उक्त रोगी ने अपने जन्म और शैशव-काल की घटनाओं का स्पष्ट रूप से वर्णन किया। दो माह बाद उन्हें पता चला कि सैनफ्रांसिस्को के डॉ. डेविड बी. चीक विगत २० वर्षों से इसी तरह के एक अध्ययन में लगे हुए हैं। उनके लेखों को पढ़ने के बाद डॉ. चैम्बरलेन यह

जानकर आश्चर्य हो गए कि उनका शोध सही रास्ते पर चल रहा था ।

‘Psychiatric Treatment through Hypnosis’ (‘सम्मोहन के द्वारा मनो-चिकित्सा’) नामक ग्रन्थ के लेखक डॉ. डेविड बी. चीक ‘American Society of Clinical Hypnosis’ के अध्यक्ष थे । उनकी राय में नवजात शिशु अपने परिवेश को भलीभाँति समझते हैं । विशेषज्ञ लोग पहले ही इस विषय में जान गए थे । कभी-कभी नवजात शिशुओं को उनकी माँ को बताए बिना ही प्रसूतिगृह से हटा दिया जाता है । डॉ. चीक कहते हैं कि दत्तक के रूप में ग्रहण करने हेतु हटाए गए शिशु अपनी माँ से बिछुड़कर विशेष दुःखी थे । दीर्घकालीन अध्ययन के बाद उन्होंने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले –

१. जन्म लेते ही शिशु अपनी माँ से यह अपेक्षा रखता है कि वह उससे या उसके विषय में बातचीत करेगी । ‘गोद’ के रूप में दिए जाने हेतु निर्धारित शिशु अपनी माँ की स्नेहपूर्ण वाणी और स्पर्श का सुख नहीं ले पाते । ऐसे प्रसव के समय माँ प्रायः बेहोशी की अवस्था में रहती है अथवा शिशु का जन्म होते ही उसे अलग कक्ष में रख दिया जाता है । इस प्रकार शिशु अपनी माँ के सान्निध्य से वंचित रह जाता है ।

२. अपनी माताओं को प्रसव-पीड़ा से चिल्लाते-कराहते देखनेवाले शिशुओं में माँ की इस पीड़ा हेतु उत्तरदायी होने की अपराध-भावना उत्पन्न हो जाती है । जब शिशु को यह महसूस होने लगता है कि वह अपनी माँ के लिए सुख और आनन्द का स्रोत बन गया है, तो वह अपराध-भावना से मुक्त होकर शान्त हो जाता है ।

३. गोद लिए गए या अन्य शिशुओं को जब नर्सरी (संवर्धन-गृह) में ले जाया जाता है, तो वे इस बात का ठीक-ठीक अनुभव कर पाते हैं कि लोग उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते हैं या नहीं । एक साथ

रखे गए शिशु अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करना जानते हैं। जब सम्मोहित व्यक्तियों को अपनी शैशवावस्था की स्मृति आई, तो उन्हें नर्सों का मृदु स्वर और स्नेहिल स्पर्श याद आ गया था।

४. किसी अनाथालय या विशेष नर्सरी से, 'गोद' के रूप में नये माता-पिता के पास ले जाए जाने से पूर्व शिशुओं में असन्तोष व क्रोध उत्पन्न हो जाता है। अपनी माँ के वात्सल्य-प्रेम से वंचित शिशुओं का नए वातावरण और नए प्रकार के लोगों के साथ सामंजस्य बैठाना कठिन हो जाता है।

'पहले के विशेषज्ञों का विश्वास था कि नेत्र, श्रवणेन्द्रिय या तंत्रिका तंत्र के उचित विकास के पूर्व कोई शिशु देखी या सुनी हुई बातों को याद नहीं रख सकता। ऐसा भी विश्वास था कि कुछ शिशुओं में पाई जानेवाली विशेष शक्तियाँ संयोग मात्र हो थीं। परन्तु इस विचार के विपरीत अनेक साक्ष्य मिले। हम शैशवकालीन स्मृतियों के बारे में कही जानेवाली बातों को सत्य सिद्ध करने में सफल रहे हैं।' डॉ. चीक आगे कहते हैं कि सम्मोहन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जन्म का अनुभव मन के अवचेतन स्तर में छिपा रहता है और सम्मोहन के द्वारा इसे पुनः सक्रिय बनाया जा सकता है।

अभी हाल ही में मनोवैज्ञानिकों ने खोज की है कि जन्म तथा शैशव में होनेवाली घटनाएँ तथा संस्कार मन के गहन स्तरों में छिपी रहती हैं और वयस्क होने पर वे कई तरह के भागीदार, शोषण और चिन्ताओं का कारण बनती हैं। सर्वप्रथम डॉ. शिशु के लिए कोशिशों से पकड़कर हिलाने-डुलाने के कारण सम्भव है कि वे संभवतः अनाथालय में शिशुवेदना से पीड़ित हों। या फिर, जन्म के समय अनाथालय में वहाँ एकत्र अन्य लोगों द्वारा व्यक्त चिन्ता और अथवा कोशिशों से वयस्क अवस्था में उसे के रूप में प्रभावित हुआ हो। यह बात यदि शिशु को स्मरण न करने के लिए उसे यह सोचना पड़े कि वह अपने माँ को

डॉ. चैम्बरलेन ने डॉ. चीक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को सत्य सिद्ध करने का प्रयास किया। जो लोग भौतिक-विज्ञान की वर्तमान धारणाओं के आधार पर चीजों का मूल्यांकन करने के अभ्यस्त हैं, उनके लिए यह बात स्वीकार करना कठिन है कि शिशु जन्म से ही चिन्तन और अनुभव कर सकता है। डॉ. चैम्बरलेन कहते हैं, 'हमारे प्रयोग का विषय मन था। यह जरूरी नहीं कि स्मृति मस्तिष्क के विकास पर निर्भर रहे। मन हर व्यक्ति का एक अभौतिक पहलू है।'।

पिछले जन्म की भाषा

लॉरेंट हे अपने माता-पिता की इकलौती पुत्री थी। अभी वह ७ वर्ष की भी नहीं थी। माता-पिता के कार्यवश बाहर चले जाने पर, वह घर में अकेली ही रहती थी। वह अपने में ही कुछ गुनगुनाकर गाने की अभ्यस्त थी। उसके माता-पिता ने उसे किसी अपरिचित भाषा में बोलते हुए भी सुना। उन्होंने सोचा कि वह केवल निरर्थक शब्द बोलती है। एक दिन एक पादरी उनके घर आए। वे उस बालिका की बातें सुनकर विस्मित रह गए। वे पादरी दीर्घकाल तक पूर्वीय देशों में रहने के बाद हाल ही में लौटे थे। नाश्ते के समय उन लोगों से बातें करते समय पादरी ने उस बालिका का गाना भी सुना। थोड़ा पास जाकर ध्यानपूर्वक सुनने के बाद वे विस्मित होकर पूछने लगे, 'लॉरेंट ने फारसी भाषा कहाँ से सीखी?' लॉरेंट के माता-पिता स्तब्ध रह गए और उन्होंने विस्मित होकर कहा, 'फारसी!' पादरी बोले, 'उसका गाना आधुनिक फारसी भाषा का भी नहीं, अपितु प्राचीन काल की फारसी भाषा का है।'।

लॉरेंट के माता-पिता इस बात पर विश्वास नहीं कर सके। उनके सभी रिश्तेदार पाश्चात्य देशों के ही थे। फारसी जाननेवाला कोई व्यक्ति उनकी पुत्री से कभी मिला भी नहीं था। वे यह विश्वास नहीं कर सके

कि उनकी पुत्री फारसी बोल सकती है। जब वह गुनगुना रही थी, तब उन लोगों ने उस गाने को रेकार्ड कर लिया। वह रेकार्डिंग भाषाविदों को सुनाई गई। उन लोगों ने कहा, 'ये गाने प्राचीन फारसी की देहाती बोली में हैं। उस बालिका से इस सम्बन्ध में पृछे जाने पर उसने कहा, 'पहले हम दूर के देश में ऐसे ही बोला करते थे।'

सामान्य जाग्रत अवस्था में हर व्यक्ति बचपन में सीखी गई भाषा बोलता है। परन्तु ऐसे कई उदाहरण मिले हैं, जिनमें कुछ लोग सम्मोहित अवस्था में ऐसी विदेशी भाषाएँ बोलते हैं, जिन्हें उन्होंने पहले कभी सीखा या सुना नहीं था। वे उस भाषा के केवल कुछ शब्द या वाक्यांश ही नहीं, अपितु उसमें धाराप्रवाह बोलते हैं। वे सम्मोहन की अवस्था में उसी भाषा में स्वच्छन्द वार्तालाप और प्रश्नों के उत्तर भी देने की सामर्थ्य रखते हैं। वे जो भाषा बोलते हैं, वह पहले किसी विशिष्ट क्षेत्र में प्रचलित थी। अतीत जीवन के अनुभवों को परवर्ती जीवन में धारण करने के कारण ही ऐसा सम्भव है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त का यह एक अन्य प्रमाण है। मान लीजिए कि इंग्लैंड के जॉन फॉक्स सम्मोहन की अवस्था में कन्नड़ भाषा बोलने लगे। वह दक्षिण कन्नड़ जिले के कुण्डपुर क्षेत्र में अठारहवीं शताब्दी में बोली जानेवाली कन्नड़ भाषा हो सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जॉन कभी कुण्डपुर के निवासी थे। सम्मोहन की दशा में व्यक्ति को अपने पिछले जन्म के नाम, पते, जाति, व्यवसाय और अन्य विवरण याद आ सकते हैं। इसे responsive xenoglossy (सक्रिय अज्ञात भाषा-ज्ञान) कहते हैं। स्टिवेंसन की पुस्तक में ऐसी अनेक घटनाएँ दी हुई हैं।

सम्मोहन का उपयोग

अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'मिरर' के सितम्बर, १९८३ के अंक में एक रोचक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें श्री जे. वी. राव

सम्मोहन-विषयक अपने प्रयोगों का वर्णन इस प्रकार करते हैं - 'किसी व्यक्ति को सम्मोहित करके उसे उसकी पुरानी आदतों से मुक्त कराना सम्भव हो सकता है। एक सम्मोहित पुरुष या स्त्री को उसके पिछले जीवन की घटनाओं को याद करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। कुछ वर्षों पूर्व मैं मुम्बई में एक कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहा था। उस समय मुझे एक १८ वर्षीय कैथोलिक बालिका को सम्मोहित करने का मौका मिला। मैंने उसे उसके पूर्व-जीवन में चले जाने का सुझाव दिया। सहसा वह एक ऐसी भाषा बोल पड़ी, जिसे मैं समझ नहीं सका। मैं तो चकित रह गया। मंच के पास प्रथम पंक्ति में बैठे एक इटैलियन पादरी ने बताया कि वह मुसोलिनी के दिनों में एक विशेष गाँव में बोली जानेवाली इटैलियन भाषा बोल रही है, जो बाद में लुप्त हो गई थी। सम्मोहित बालिका ने कहा कि वह पहले एक पुरुष थीं। उसने अपने इटैलियन माता-पिता का नाम बताया। वह एक सड़क दुर्घटना में मारी गयी थी। सामान्य अवस्था आने पर वह सम्मोहित अवस्था में कही गई किसी भी बात को याद नहीं कर सकी। उसने कहा कि वह कभी भारत की सीमाओं से बाहर नहीं गई और वह इटैलियन का एक शब्द तक नहीं जानती। परन्तु अपनी सम्मोहित निद्रा में वह इटैलियन बोली थी। इटैलियन पादरी ने इस बात को सत्यापित कर दिया था। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान न था। सौभाग्यवश उसकी बात को समझने के लिए वे पादरी वहाँ मौजूद थे।' इस घटना से हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

प्रो. राव से पूछा गया कि इस विषय का गहनतर अध्ययन करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किए जाने पर क्या ऐसी घटनाएँ प्रमाणित की जा सकती हैं? इस पर प्रो. राव ने कहा, 'निःसन्देह, यह सम्भव है। अवचेतन मन जन्म से मृत्यु तक की सभी स्मृतियों

का भण्डारगृह है। विशेषज्ञ लोग चेतन मन से परे जाकर अवचेतन मन को क्रियाशील करते हैं। हममें से हर व्यक्ति सम्मोहित किए जाने पर कमो-बेश पूर्व जीवन के अनुभवों का स्मरण कर सकता है। यह कैसे सम्भव है, यह बात अब भी एक रहस्य है।'

प्रो. राव ने इसी प्रकार की एक अन्य घटना का भी वर्णन किया है - 'एक बार जमशेदपुर में एक प्रदर्शन के समय मैंने एक १३ वर्षीय गुजराती बालक को सम्मोहित किया। जब सम्मोहित बालक से उसके पिछले जीवन के बारे में पूछा गया, तो उसने बतलाया कि पूर्व जीवन में उसका जन्म मुम्बई में हुआ था। उसने जुहू के एक बँगले का पता बताया। उसने बताया कि ९ वर्ष का होने पर वह समुद्र में डूब गया था। सम्मोहित बालक का एक इंजीनियर भाई संयोगवश कुछ दिनों बाद मुम्बई गया। उसके भाई की बातें किस हद तक सत्य हैं यह पता लगाने के लिए वह जुहू गया और अपने भाई के बताए पते के अनुसार बँगले को ढूँढ़ने लगा। वह उसका पता नहीं लगा सका, परन्तु आश्चर्य की बात है कि उस मुहल्ले के कुछ लोगों ने कहा कि उस स्थान पर एक बँगला था। इसे कुछ वर्षों पहले बेच दिया गया था और एक नयी इमारत बनाने के लिए पुराने बँगले को ध्वस्त कर दिया गया था। इंजीनियर ने पूछा कि तब उस बँगले में कौन लोग रह रहे थे और वे लोग अब कहाँ रहते हैं? उसे उचित उत्तर नहीं मिल सका। परन्तु एक वृद्ध ने केवल इतना ही बतलाया, "परिवार के नौ-वर्षीय एक बालक के मर जाने के कारण गृहस्वामी ने वह बँगला बेच दिया।"'

जिस प्रकार सरकारी कार्यालयों में प्रत्येक फाइल की गहन जाँच करने के बाद रेकार्ड एकत्र किए जाते हैं, उसी प्रकार यदि अवचेतन मन को उचित ढंग से क्रियाशील किया जाए, तो इससे पिछले जन्मों की बातों का पता लग सकता है।

पिछले जन्म की स्मृति

इंग्लैंड के मनो-चिकित्सक डेनिस केल्सी ने सम्मोहन की सहायता से करीब ३०० मानसिक रूप से विक्षिप्त रोगियों का उपचार किया और उनके मन के आन्तरिक स्तरों में प्रसुप्त अनेक ग्रन्थियों का इलाज किया। सभी रोगियों ने सम्मोहन की अवस्था में अपने मन के गहन स्तरों में प्रवेश करके अपने पिछले जन्म की बातें याद करके अपने दोषों का विवरण दिया। मनो-चिकित्सक आम तौर पर सम्मोहित अवस्था में पुनर्जाग्रत होनेवाले बचपन के संस्कारों की मदद से अपने रोगियों की बीमारियों के कारण को ढूढ़ने का प्रयास करते हैं। परन्तु इससे हमेशा सन्तोषजनक परिणाम नहीं मिलते। केल्सी का कहना है कि ऐसे मामलों में रोगियों के पिछले जन्म की घटनाओं से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है।

कुछ वर्ष पूर्व विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में कार्यरत लोग आत्मा और देहातीत अस्तित्व जैसे विषयों पर कुछ कहना अपनी मर्यादा के अनुरूप नहीं मानते थे। 'भौतिक नियमों के नियंत्रण के परे भी कुछ हो सकता है' - ऐसा विश्वास मात्र अन्धविश्वास माना जाता था। परन्तु हाल के वर्षों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण में बदलाव आया है। 'साइंस डाइजेस्ट' के जुलाई, १९९२ अंक में जॉन ग्लैडमैन का एक रोचक लेख प्रकाशित हुआ है - 'आत्मा की खोज में वैज्ञानिक'। ग्लैडमैन बताते हैं कि अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने अपने विचारों द्वारा विस्मयजनक तथा रहस्यमय आध्यात्मिक जगत के अस्तित्व का समर्थन किया है। नोबल पुरस्कार विजेता आस्ट्रेलियायी न्यूरोलॉजिस्ट जॉन इक्लीस इस प्राचीन धार्मिक विश्वास का दृढ़ समर्थन करते हैं कि भौतिक पदार्थ तथा अमूर्त आत्मा के एक विचित्र संयोजन से मनुष्य की सृष्टि हुई है। यह अभौतिक आत्मा भौतिक देह की मृत्यु के बाद भी जीवित रहती है।

वह सूचना लेकर वापस आयी

मृदुला शर्मा एक कुशल गृहवधू हैं। उन्हें दो विषयों में स्नातकोत्तर उपाधि मिली है। पर ये दोनों उपाधियाँ उन्हें एक ही जन्म और एक ही विश्वविद्यालय से नहीं मिली हैं। पहले उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की थी। फिर उन्होंने राजनीति-विज्ञान का अध्ययन किया और मेरठ विश्वविद्यालय से उस विषय में एम.ए. की उपाधि पाई। प्रथम और द्वितीय उपाधि प्राप्त करने के बीच की अवधि का अन्तर एक जीवन-काल था। यह स्वाभाविक है कि इसे सुनकर कोई हक्का-बक्का रह जाएगा। मृदुला शर्मा कहती हैं, 'मैं पिछले जन्म में मुन्नू थी और इस जन्म में मृदुला शर्मा हूँ।' उनका पिछला जन्म देहरादून में बीता था। अभिलेखों के अनुसार उनकी मृत्यु १९४५ ई. में हुई थी। मृदुला का विश्वास है कि मुन्नू के रूप में अपनी मृत्यु के चार साल बाद १९४९ में उनका मृदुला के रूप में पुनर्जन्म हुआ। अब वे २४ वर्ष की हैं। पूर्ववर्ती जीवन में उनका जन्म बनिया जाति में हुआ था और इस बार वे ब्राह्मण जाति में जन्मी हैं। उनका बयान भ्रान्ति मात्र कहकर नहीं टाला जा सकता। इसा घटना की विशेष रूप से जाँच-पड़ताल के लिए अमेरिका में स्थित वर्जीनिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर इयान स्टीवेंसन १८ मार्च, १९७४ को भारत आए। उन्होंने कहा, 'पुनर्जन्म के विषय में यह एक निर्विवाद प्रमाण है।' वे आश्चर्य से थे कि केवल पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही इसकी व्याख्या कर सकता था। इस दृढ़ विश्वास के साथ वे अपने स्वदेश लौट गए।

सचमुच ही यह एक दुर्लभ घटना थी। उन दिनों की एक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यकर्त्री, सत्यवती सेट्टी, पिछले जन्म में मृदुला की माता थीं। वे स्वतंत्रता सेनानियों के साथ कार्य कर चुकी थीं। इस जन्म में

उनकी माता शान्ता शास्त्री हैं। दोनों ही जीवित हैं। दोनों ही माताएँ पुत्री मृदुला को खूब स्नेह करती हैं। पूर्व जीवन की बातों को याद करने की घटना तब घटी, जब मृदुला केवल २ वर्ष की थी। जब उसे लीची खाने को दी गई, तब उसे अपने विगत जीवन की घटनाओं की स्पष्ट याद हो आई। वह अपनी माता से कहने लगी कि देहरादून के घर में उसे अच्छे किस्म की लीचियाँ खाने को मिलती थीं। इस पर विस्मित होने के बावजूद माता-पिता ने उसकी बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। कुछ हफ्तों बाद उसके पिता की मृत्यु हो गयी। मानो दैवयोग से शान्ता शास्त्री को देहरादून के एक विद्यालय में शिक्षिका की नौकरी मिल गयी। मृदुला अपनी माँ के साथ वहीं रहने लगी। वहाँ रहते समय वह बीच-बीच में अपने पिछले जन्म की घटनाएँ बताया करती थी।

एक दिन मृदुला अपनी माता के साथ देहरादून के एक धार्मिक कार्यक्रम में गई। वहाँ एक कोने में बैठी हुई एक प्रौढ़ महिला को उसने पहचान लिया। वह सीधे उनके पास जाकर उनकी गोद में बैठ गयी। प्रौढ़ महिला स्नेहपूर्वक बालिका को दुलारने लगी। उन्हें क्या पता था कि उन्हीं की पुत्री ने अब यह रूप धारण कर लिया है और उनकी गोद में बैठी है? उस बालिका ने आत्मविश्वास के साथ उन वृद्ध महिला की बगल में बैठी एक अन्य महिला को सम्बोधित करते हुए कहा, 'तुम मेरी छोटी बहन हो।'

वह महिला बोली, 'ऐसा कैसे हो सकता है? मैं तो बड़ी हूँ और तुम अभी बच्ची हो।'

मृदुला ने कहा, 'मैं तुम्हारी बड़ी बहन मुन्नु हूँ।'

उस महिला की आँखें फटी-की-फटी रह गईं। उसे लगा कि दाल में कुछ-न-कुछ काला अवश्य है। उसने उस बालिका से ऐसी बातें पूछीं, जिनके उसे ज्ञात होने की जरा भी संभावना न थी। मृदुला के उत्तर से उसे विश्वास हो गया कि उसकी बातों में सच्चाई है। परन्तु

माँ सत्यवती का सन्देह बना रहा। उसकी परीक्षा करने के लिए वे उसे घर ले गईं। वह बालिका घर के सभी कक्षों को देखकर आनन्दित हो गई। उसने अपनी पुस्तकों की आलमारी की ओर संकेत किया। घर के हाल ही में मरम्मत कराए हुए भाग को देखकर उसने कहा कि वह नया लग रहा था। उसने बताया कि अटारी में रखा पंखा नया है। सभी बातें सत्य थीं।

वह पुराने लोगों को पहचान सकती है या नहीं यह देखने के लिए उसे बाजार में ले जाया गया। दुकान में बैठे एक वृद्ध व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए उसने कहा, 'इस दुकान से कोई चीज मत खरीदना। इस दुकानदार ने जबरदस्ती मेरा पर्स छीन लिया था।' वृद्ध व्यक्ति ने पुरानी घटना का स्मरण कर उस बात को स्वीकार किया। वह कुशलचन्द को भी पहचान गयी, जो अब आनन्द स्वामी बन गए थे। उसने कहा, 'स्वामीजी, आपने गेरुआ पहनना कब से शुरू कर दिया? पहले तो आप श्वेत वस्त्र ही धारण किया करते थे।' कुशलचन्द बिलकुल ही चकित रह गए।

इस बीच उसके पिताजी छद्मवेश में यह सब कुछ देख रहे थे। अचानक वे कह उठे, 'बेटी, तुमने सबको तो पहचान लिया, पर अपने इस वृद्ध नौकर को नहीं पहचान सकी।' मृदुला ने उन्हें अपनी बाँहों में भरकर कहा, 'आप नौकर नहीं हैं। आप मेरे पिताजी हैं।' सत्यवती इस बात से बड़ी प्रसन्न थीं कि उनकी मृत पुत्री का पुनर्जन्म हुआ है। उन्होंने इस पुत्री पर खूब प्रेम वर्षाया। मृदुला के विवाह के समय उन लोगों ने उसे अनेक उपहार दिए।

स्टीवेंसन ने मृदुला से पूछा, 'अपनी स्मृतियों के अतिरिक्त क्या तुम अपने पिछले जन्म का कोई अन्य प्रमाण दे सकती हो? मृदुला ने कहा, 'मैं और कुछ नहीं जानती।' स्टीवेंसन स्वीकार करते हैं, 'यह पुनर्जन्म की एक सच्ची घटना है।' वे अब त्वचा पर के तिलों

के बारे में अध्ययन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि पिछले जन्म के तिल वर्तमान जन्म में भी दीख पड़ते हैं।

स्टीवेंसन ने पूछा, 'क्या तुम्हें याद है कि तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई?

मृदुला ने कहा, 'हाँ, मुझे याद है। मुझे भयंकर पीड़ा का बोध हुआ। मुझे महसूस हुआ मानो कोई मुझे पाँव से ऊपर उठा रहा हो। वह दर्द क्रमशः ऊपर उठने लगा और मेरे सिर में दर्द होने लगा। फिर मुझे पानी में बहने का अनुभव होने लगा। इसके बाद मुझे लगा कि मैं हवा में तैर रही हूँ। जब मैं दो वर्ष की थी, तब मुझे और अधिक बातें याद थीं।'

पाँच वर्ष की आयु में मृदुला अपनी माँ के साथ ऋषीकेश गयी और स्वामी शिवानन्द से मिली। स्वामी शिवानन्द की एक पुस्तक में इस घटना का उल्लेख मिलता है। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया', ३१ अक्टूबर, १९७६ ई. के रविवासरीय अंक में भी इस घटना पर एक लेख छपा था। यह विवरण उसी लेख पर आधारित हैं।

देहान्तरण

स्टीवेंसन ने गर्भाधान की प्रक्रिया से गुजरे बिना ही नया जन्म प्राप्त करने की एक अन्य विचित्र घटना का उल्लेख किया है। यह एक अनूठी घटना है, जिसमें साढ़े तीन वर्ष के एक बालक का शरीर एक अन्य आत्मा का निवासस्थान बन गया। यह घटना १९५४ ई. में उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले में स्थित रसूलपुर में घटी। गिरिधरलाल जाट का पुत्र, जसबीर, चेचक से ग्रस्त था। बीमारी गम्भीर होती गई और एक दिन बालक मर गया। गिरिधरलाल ने बच्चे का अन्तिम-संस्कार करने के लिए रिश्तेदारों से सम्पर्क किया। परन्तु रात हो जाने के कारण उन लोगों ने अगले दिन सुबह ही उसकी दाह-क्रिया करने का निश्चय किया। मृत घोषित होने के दो या तीन घण्टे के बाद

जसबीर के शरीर में जीवन के चिह्न दिखाई पड़े। फिर थोड़ी देर बाद वह गहरी साँसें लेने लगा। क्षीणकाय बालक शीघ्र ही ठीक होकर बातचीत करने लगा। उसकी बातों से अन्य लोगों को महसूस हुआ कि कोई अन्य आत्मा जसबीर की देह में प्रविष्ट हो गयी है।

उसने कहा कि वह विहेड़ी के शंकरलाल का पुत्र शोभाराम है। उसने अनुरोध किया कि उसे उसके गाँव ले जाया जाए। ब्राह्मण कुलोद्भूत होने के गर्व के कारण उसने जाट के घर भोजन करने से मना कर दिया। वह इतना दुराग्रही था कि उन लोगों को उसका भोजन पकाने के लिए पड़ोस की एक ब्राह्मण महिला को लाना पड़ता था। उसका यह दुराग्रह दो वर्ष तक चलता रहा। यदा-कदा उसके अनजाने में वे लोग उसे घर में बना भोजन भी खिला देते थे।

उसने बताया कि वह अपने पूर्वजन्म में विहेड़ी में शोभाराम के रूप में एक विवाह-भोज में सम्मिलित हुआ था। एक गाड़ी में लौटते समय उसी के कर्जदार एक व्यक्ति ने उसे जहर खिलाकर मार दिया था।

शोभाराम जसबीर के शरीर में देहान्तरित हो गया है - यह बात जसबीर के पिता सार्वजनिक नहीं करना चाहते थे। परन्तु बच्चे की बातें तथा व्यवहार देखकर लोग पूछताछ करने लगे। गाँव के अन्य ब्राह्मणों को पता चल गया कि एक ब्राह्मण महिला शोभाराम के लिए भोजन पकाती है। यह खबर धीरे-धीरे विहेड़ी तक पहुँच गयी। इस घटना के तीन वर्ष बाद इसके सत्य को प्रमाणित करनेवाले साक्ष्य क्रमशः प्रकाश में आने लगे। जब विहेड़ी से शंकरलाल और अन्य सम्बन्धी वहाँ आए, तो जसबीर ने प्रत्येक को पहचानकर उनसे प्रेमपूर्ण बातें कीं। कुछ दिनों बाद उसे विहेड़ी लाया गया और रेलवे स्टेशन के पास ही छोड़ दिया गया। उसने आसानी से अपने घर का रास्ता पहचान लिया। यहाँ तक कि गलत दिशा बताए जाने पर भी वह ठीक-ठीक गन्तव्य तक पहुँच गया। वह त्यागी-परिवार का सम्पूर्ण

वृत्तान्त जानता था। वह अपने नवीन जन्मस्थान रसूलपुर लौटने के बजाय विहेड़ी गाँव के त्यागी-परिवार में रहने को इच्छुक था। एक बार अनिच्छापूर्वक रसूलपुर लौटते समय वह फूट-फूटकर रोने लगा। यद्यपि वह एक बालक के शरीर में था, फिर भी वह स्वयं को वयस्क मानता था। वह प्रायः अपने पिछले जन्म की पत्नी और बच्चों का उल्लेख किया करता था।

जसबीर अपने वार्तालाप के दौरान शोभाराम के रूप में अपनी पहचान के प्रति सचेत था। जसबीर की वाणी में एक ब्राह्मण की शब्दावली पर भी गिरिधरलाल का ध्यान गया। पहले-पहल तो उसे बालक के इस सनकीपन पर क्रोध आया, पर सच्चाई का पता लगने पर वह उसे सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। जैसा कि स्वाभाविक था, विहेड़ी में पत्नी तथा बच्चे होने का दावा करने पर उस बालक की हँसी उड़ायी गयी थी। परिवार की अरुचि और बारम्बार हँसी उड़ाने तथा डाँट-फटकार ने उसे उस विषय पर चर्चा छोड़ देने को बाध्य कर दिया। पर जब कभी वह विहेड़ी जाता, तो वहाँ अपने पूर्वजन्म के पुत्र के साथ बड़ी आत्मीयता का व्यवहार करता। जाटों ने इसका अनुमोदन नहीं किया और वे लोग उसके आने-जाने को हतोत्साहित करने लगे।

स्टीवेंसन ने उस बालक से पूछा कि शोभाराम के रूप में उसकी मृत्यु और जसबीर की देह में पुनः प्रकट होने के बीच क्या उसे कोई इन्द्रियातीत अनुभव हुए थे? उसने बताया, 'एक साधु ने मेरे समक्ष प्रकट होकर मुझे जसबीर की देह में शरण लेने की सलाह दी थी।' अब भी संकट के क्षणों में उसे कभी-कभी उन साधु से मार्गदर्शन प्राप्त होता था।

इस घटना के गहन अध्ययन के लिए स्टीवेंसन ने १९५७ से १९७४ ई. के बीच मुजफ्फरनगर की कई यात्राएँ कीं। इस बीच जसबीर का विवाह एक जाट युवती से हो गया था। अब वह धीरे-

धीरे अपने पूर्वजन्म की घटनाओं को भूल रहा है और अपने नये माता-पिता और भाइयों के साथ मिल-जुलकर रहता है ।

तुम मर नहीं सकते !

आप पूछ सकते हैं कि क्या पूर्वजन्म की बातें हर व्यक्ति के सन्दर्भ में केवल इसलिए मान ली जाएँ, क्योंकि ऐसी घटनाएँ बीच-बीच में घटती रहती हैं? परन्तु ऐसी घटनाएँ संसार के प्रायः सभी भागों से एकत्र की गई हैं । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पुनर्जन्म में विश्वास न करनेवाले समुदायों में भी पूर्वजन्म की बातें याद करनेवाले लोग जन्म लेते रहते हैं । इयान स्टीवेंसन ने ऐसी हजारों घटनाओं का संग्रह और अध्ययन किया है । इयान क्यूरी द्वारा लिखित - 'You Cannot Die' ('तुम मर नहीं सकते') ग्रन्थ में, अतीन्द्रिय अनुभव तथा शताधिक वर्षों के दौरान एकत्रित बड़े विचित्र मृत्यु विषयक तथ्यों के विवरण हैं । इस अध्ययन से प्राप्त हुए निष्कर्ष इस प्रकार हैं -

१. मृत्यु जीवन को समाप्त नहीं करती । शरीर का नाश हो जाने पर भी हम जीवित रहते हैं ।

२. अपने निर्वास की देहों को छोड़ने के बाद आत्माएँ अन्य लोकों या अस्तित्व के विभिन्न स्तरों में रहकर पूर्वजन्म की चेतना को जगाए रखती हैं ।

३. इन लोकों से लौटकर पुनः इस पृथ्वी पर नया शरीर धारण करने के बाद, पिछले लोक तथा अन्य पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ धीरे-धीरे क्षीण होती जाती हैं ।

४. आत्मा अकारण ही बारम्बार देह धारण नहीं करती । आत्मा के प्रस्थान तथा पुनरागमन के बीच हमेशा कोई-न-कोई कार्य-कारण सम्बन्ध रहता है ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि इयान क्यूरी ने मानव-विज्ञान, समाज-शास्त्र और परा-मनोविज्ञान का गहन ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही, बिना किसी पूर्वाग्रह के, अतीन्द्रिय सत्ता तथा कर्म-सिद्धान्त के बारे में अपना अनुसन्धान शुरू किया।

पारलौकिक अनुसन्धानों का योगदान

लन्दन के एबेकस पब्लिशिंग हाउस ने कुछ वर्षों पूर्व शैला आस्ट्रेण्डर और लिन श्रोएडर कृत 'Psychic Discoveries Behind the Iron Curtain' ('लोहे की दीवारों के उस पार की पारलौकिक खोजें') शीर्षकवाली तथा पुष्ट प्रमाणों से युक्त एक पुस्तक प्रकाशित की। विगत आठ वर्षों के दौरान उक्त दो महिलाओं ने वैज्ञानिकों की सहायता से अतीन्द्रिय विषयों पर अनेक लेख प्रकाशित किए थे। १९६८ ई. में ये महिलाएँ मास्को में आयोजित परा-मनोविज्ञान विषयक विशेष सम्मेलन में आमंत्रित की गयीं। वहाँ वे कई विशेषज्ञों से मिलीं और उनके साथ अतीन्द्रिय अनुभवों के बारे में असंख्य शोधों पर चर्चा करने के बाद एकत्रित सामग्री का प्रयोग इस पुस्तक के लेखन में किया। लेखिकाओं का कहना है कि रूसी सरकार ऐसे प्रयोगों पर हर वर्ष २ करोड़ रूबल खर्च करती है और परा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में रूसी लोग अमेरिकी लोगों से कम-से-कम ५० वर्ष आगे हैं। उन्होंने अनुरोध किया कि इस क्षेत्र में अमेरिकी लोगों को अपने शोध में और तीव्रता लानी चाहिए। रूसी वैज्ञानिक अपने अधिकांश अनुसन्धानों को गोपनीय ही रखते हैं। 'Iron Curtains' ('लोहे की दीवारें') का यही तात्पर्य है।

उन महिलाओं ने डॉ. वेलीसिव नामक एक परा-मनोवैज्ञानिक से साक्षात्कार लिया। डॉ. वेलीसिव का कहना था, 'सोवियत वैज्ञानिकों ने २५ वर्ष पहले ही दूरबोध (टेलीपैथी) में सफल प्रयोग कर लिए

थे ।' यह इस बात का प्रमाण है कि रूसी वैज्ञानिक काफी काल से इस शोध में लगे हुए हैं । यदि हम रूसी रॉकेट युग के जनक, के. ई. ट्सीवोल्कोवस्की, के लेखों को पढ़ें, तो समझ सकते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में वार्यरत वरिष्ठ वैज्ञानिक किस प्रकार विज्ञान की इस शाखा में भी शोध को प्रोत्साहन दिया करते थे । वे कहते हैं, 'सुदूर ग्रहों की यात्रा करते समय टेलीपैथी में प्रशिक्षित होना अत्यावश्यक है । इस कला में निष्णात लोग मानव-जाति के पूर्ण विकास में योगदान करते हैं । सुदूर ग्रह-नक्षत्रों की ओर जाते हुए रॉकेट जिस तरह बाह्य जगत के रहस्यों को खोलते हैं, उसी तरह इन्द्रियातीत अनुभवों का अध्ययन मानव-मन के स्वरूप के रहस्यों को अनावृत कर देगा । यह मानवता की सबसे बड़ी उपलब्धि या सफलता होगी ।'

एडवर्ड सोउमोव और दूरबोध-विशेषज्ञ कार्ल निकोलोव ने सोवियत रूस में परा-मनोविज्ञान पर प्रकाशित पुस्तकों की लोकप्रियता का विवरण दिया है । हाल ही में, अतीन्द्रिय अनुभवों पर लिखित पुस्तकों की संख्या में १५२% तक की वृद्धि हो गयी है । तत्कालीन सोवियत सरकार ने सरकार द्वारा अस्वीकृत सामग्रियों को मुद्रित न करने का अधिकार सुरक्षित रखा था । इस प्रकार की पुस्तकें अब भी बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रही हैं । इसका अर्थ यह है कि इस क्षेत्र में शोध को प्रोत्साहित किया जाता है और लोग इस विषय में रुचि रखते हैं । वहाँ चमत्कारिक खोजें हुई हैं और हो रही हैं ।

क्या हमारे दो शरीर होते हैं?

रूसी विशेषज्ञ १९३९ ई. में ही इस बात से आश्चस्त हो गए थे कि अस्थि-मांस-रक्त आदि से निर्मित बाह्य भौतिक देह की पृष्ठभूमि में एक अन्य सूक्ष्म देह भी विद्यमान है और प्राचीन काल से ही महात्मागण उसका साक्षात्कार करते आए हैं । तब दक्षिणी रूस के

क्यूबन प्रान्त के क्रेस्नोडर में पहले से ही इस पर शोध आरम्भ हो गया था। वैज्ञानिकगण एक ऐसे विशेषज्ञ की तलाश कर रहे थे, जो स्थूल भौतिक देह के भीतर स्थित सूक्ष्म शरीर को पहचाननेवाली कुछ मशीनों का निर्माण कर सके। यद्यपि सैम्यान डेविडोविच किर्लियन कोई विख्यात वैज्ञानिक न था, तथापि वह एक तकनीकी विशेषज्ञ के रूप में इस टोली में शामिल हो गया। वह एक प्रतिभावान, साहसी तथा परिश्रमी युवक था और एक सुप्रशिक्षित तकनीशियन भी था। वह विद्युत-उपकरणों की मरम्मत तथा उनकी प्रणाली में सुधार करने में भी सक्षम था। उसकी पत्नी वैंलेंटाइन एक पत्रकार तथा अध्यापिका थी। किर्लियन-दम्पति ने पहले ही वनस्पतियों के जीवन के गहन निरीक्षण के लिए एक नया सूक्ष्मदर्शी यंत्र बना लिया था। और अब किर्लियन ने एक ऐसे उपकरण का आविष्कार किया, जिसमें एक शक्तिशाली इलेक्ट्रानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र था और इसी से वह अमर हो गया। जब उसने उच्च फ्रीक्वेंसी की विद्युत्-धारा के पास फोटोग्राफिक कागज को अपने हाथ से थपथपाया, तो उसे उस पर अस्पष्ट चिह्न और रेखाएँ मिलीं। इसी से वह एक बेहतर यंत्र की खोज के कार्य में अग्रसर हुआ और एक महान आविष्कारक बना।

सरल भाषा में कथित निम्नलिखित उदाहरण से इस तथ्य को समझने में मदद मिल सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञात है कि चुम्बक एक निश्चित दूरी के भीतर के लौहकणों को आकर्षित किया करता है। इस चुम्बकीय क्षेत्र की तुलना एक जीवित व्यक्ति के शरीर से निःसृत विकिरण-क्षेत्र से की जा सकती है। जब चुम्बक लौहकणों को अपनी ओर खींचता है, तो हम उसकी शक्ति के अस्तित्व से अवगत हो जाते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि मानव-देह से विकिरित होनेवाली ऊर्जा विद्युत्-धारा को भी प्रभावित कर सकती है। मानव-शरीर के चतुर्दिक स्थित विकिरण या आभा-मण्डल का चित्र

लेने में सक्षम होने के लिए शरीर के किसी अंग को उच्च फ्रीक्वेंसी की विद्युत्-धारा के क्षेत्र के पास रखा जाना चाहिए। देह से विकिरित होनेवाली ऊर्जा विद्युतीय क्षेत्र पर इसके प्रभाव को दर्शाती है और आभा-मण्डल के रंग में परिवर्तन को पकड़ लेती है। किलियन यंत्र किसी गैर-विद्युतीय पदार्थ को दृश्यमान बनाने के लिए उसे मानो विद्युतीय पदार्थ में बदल देता है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने किलियन यंत्रों की सहायता से जाना कि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर को ढँके रहता है। स्थूल शरीर को आलोकित रखनेवाला सूक्ष्म शरीर ही है। यह मानो वैसा ही है जैसे कि सूर्यग्रहण के समय चन्द्रमा सूर्य को ढँके रहता है। पौधे, जन्तु तथा मनुष्य - प्रत्येक जीवधारी का न केवल अणु-परमाणुओं से बना एक स्थूल भौतिक शरीर होता है, वरन् ऊर्जा से बना हुआ उसके प्रतिरूप भी एक शरीर होता है। वैज्ञानिकों ने इसे 'जैविक प्लाज्मा शरीर' कहा है। विभिन्न देशों के अतीन्द्रिय अनुभव-सम्पन्न लोगों ने इसका विभिन्न नामों से उल्लेख किया है, यथा - ऊर्जा शरीर, गौण शरीर, वायवीय शरीर, तरल शरीर, प्रतिरूप शरीर, पूर्वभौतिक शरीर, आदि।

इस सूक्ष्म शरीर या ऊर्जा शरीर को किलियन यंत्र से देखनेवाले लोग केवल अतीन्द्रिय विषयों के जिज्ञासु साधारण मानव नहीं थे। वे लोग सोवियत संघ के विज्ञान-अकादमी की प्रधान परिषद, अन्य प्रयोगशालाओं के वरिष्ठ वैज्ञानिक तथा विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक लोग थे। सूक्ष्म-निरीक्षण के बाद उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं -

'अकल्पनीय! उसी विद्युत्-धारा की तरंगें विभिन्न रंगों में प्रकाशित होती हैं। उस ज्योति का अग्रभाग नीले तथा नारंगी रंग का होता है। ज्योति के कुछ भाग निरन्तर चमकते रहते हैं, जबकि कुछ भाग तारों के समान रुक-रुककर चमकते हैं। सचमुच ही, यह एक आश्चर्यजनक, कौतुकपूर्ण, रहस्यमय और ज्योतिर्मय जगत है!'

इस यंत्र की सहायता से सूक्ष्म शरीर से निःसृत होनेवाली ज्योति के विभिन्न रंगों का अध्ययन किया गया था। व्यक्ति के भावुक हो जाने पर इस ज्योति के रंगों में परिवर्तन दीख पड़ा। उत्तेजना के समय भी रंगों में परिवर्तन आता था। शोधकर्ताओं ने पाया कि इन रंगों के आधार पर मनुष्य के स्वास्थ्य का निर्धारण किया जा सकता था और भविष्य में होनेवाली बीमारियों की सम्भावना के बारे में भी भविष्यवाणी की जा सकती थी।

किर्लियन यंत्र के द्वारा दीर्घकाल तक शोध करनेवाले सोवियत विशेषज्ञों ने व्यक्ति की मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर में होनेवाले परिवर्तनों के भी चित्र खींचे थे। उन्होंने पाया कि जीवों तथा वनस्पतियों की मृत्यु होने पर उनका सूक्ष्म शरीर वायु-मण्डल में लुप्त हो गया था। मृत जीवों या वनस्पतियों में इस सूक्ष्म शरीर का नामो-निशान तक न था।

संक्षेप में, निम्नलिखित बातें सत्य हैं - रूस में अतीन्द्रिय जगत से सम्बन्धित विषयों पर विपुल शोध हुए हैं और हो रहे हैं। रूसी वैज्ञानिकों ने अतीन्द्रिय साधनों से आविष्कृत तथ्यों का उपयोग खुफिया तंत्र और सेना में करने की योजनाएँ बनाई हैं। कहते हैं कि रूसी लोगों ने असामाजिक गतिविधियों में लिप्त लोगों को सुधारने में भी इस दूरबोध-प्रणाली (टेलीपैथी) के उपयोग की शुरुआत की है। अति उच्च-पदस्थ वैज्ञानिक अब अतीन्द्रिय अनुभूतियों पर नकारात्मक दृष्टि नहीं रखते। रूसी वैज्ञानिकों ने संसार के किसी भी कोने में घटित होनेवाली रहस्यमय घटनाओं या अतीन्द्रिय अनुभूतियों के क्षेत्र से जुड़ी सभी उपलब्ध विवरणों को एकत्र करने की एक तरकीब ढूँढ़ निकाली है।

रूस के लोग इन्द्रियातीत अनुभूति-सम्पन्न लोगों तथा इस विषय के शोधकर्ताओं की जानकारी रखते हैं। वे दूरबोध के सभी ज्ञाताओं,

भविष्यज्ञों, विश्वास-चिकित्सकों तथा आध्यात्मिक आचार्यों के पास जाकर उनकी प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने की चेष्टा करते हैं। डॉ. लोजानोब ने इस क्षेत्र में बीस वर्षों तक शोध किया और अनेक वर्षों तक भारतीय योगशास्त्र का भी अध्ययन किया।

भारत में यह उपेक्षा क्यों?

वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत देशों में मानव-मन के अवचेतन स्तरों के गहन अध्ययनों के प्रामाणिक विवरणों से यदि हम परिचित हो जाएँ, तो इससे हमें पुनर्जन्म के बारे में परम्परागत भारतीय दृष्टिकोण को समझने में मदद मिलेगी। आज भारत के पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त अधिकांश छात्र तथा बुद्धिजीवी इन विचारों को पुराना, युक्तिहीन तथा अवैज्ञानिक मानते हैं। शायद मुट्ठी भर लोगों ने ही इस विषय का विधिवत् अध्ययन करके अपने विश्वासों को सुदृढ़ बनाया है। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के आलोक में हमारे प्राचीन विचारों की महानता और महत्ता को समझने का समर्पित प्रयत्न लुप्तप्राय हो चुका है। यद्यपि भारतीय वैज्ञानिकों ने आधुनिक भौतिक विज्ञानों के प्रचार-प्रसार में कोई कसर नहीं छोड़ी है, तथापि वे मन तथा आत्मा-सम्बन्धी विषयों पर चिन्तन करने में असम्मान का बोध करते हैं। भारतीय वैज्ञानिक सभी अतीन्द्रिय अनुभूतियों को काल्पनिक, अप्रासंगिक और अन्धविश्वास मानकर उसे अस्वीकार करने पर तुले हैं। भारतीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष करनेवाले राष्ट्रवादी लोगों और जनता ने सामान्यतया इन्हीं भारतभूमि के सदियों पुराने धर्म तथा संस्कृति का आदर किया है। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत निश्चित रूप से विश्व-संस्कृति को सार्थक रूप से प्रभावित करेगा। वे इस बात से आश्चस्त थे कि प्राचीन भारतीय शास्त्रों में आधुनिक विज्ञान द्वारा उद्भूत चुनौतियों का मुकाबला करने की सामर्थ्य विद्यमान है।

परन्तु परवर्ती पीढ़ियों ने खेदजनक ढंग से इन धार्मिक और दार्शनिक आदर्शों की उपेक्षा की। पाश्चात्य लोग भारतीय योगशास्त्र, दर्शन, संगीत और कला की ओर क्यों आकृष्ट हो रहे हैं? निश्चय ही केवल जिज्ञासा या उत्तेजना के लिए नहीं। इस देश के प्राचीन ऋषियों ने मानव-मन की गहराइयों में उतरकर जीवन के अभिप्राय को ढूँढ़ निकाला था। उन्होंने समाज को जीवन के शाश्वत मूल्य प्रदान किए। विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर रहे देशों में मानव-मन की गहराइयों में छिपे रहस्यों की छानबीन करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। मन की कार्य-प्रणाली से परिचित लोग स्वाभाविक तौर पर मानव-मन के बारे में भारतीय दृष्टिकोण को अधिकाधिक जानना चाहेंगे। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए अपना सर्वस्व त्याग करनेवाले नेताओं का विश्वास था कि हमें अपनी संस्कृति को विस्मृत करके अपने ही देश में विदेशी बनकर नहीं रहना चाहिए। दीर्घकालिक औपनिवेशिक दासता, अज्ञानता, हीन-भावना और अनुकरणशीलता के कारण भारतीय लोग अपनी संस्कृति और परम्परा के विषय में शर्मिन्दा होते रहे हैं। इसलिए मैंने मन के स्वरूप के विषय में भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के पूर्व पाश्चात्य देशों में उपलब्ध प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं।

विस्मृत सत्य

मानवीय इतिहास के प्रारम्भ से ही लोग ऐसे चमत्कारों, अनुभवों और घटनाओं में विश्वास करते रहे हैं, जिनकी व्याख्या वे अपनी तर्कबुद्धि से नहीं कर सकते थे। भारत में योग और ध्यान की सहायता से ऐसी घटनाओं की संकल्पना की गई थी। इन अनुसन्धानों ने परवर्ती शताब्दियों में ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म और धर्म (नीतिशास्त्र) के बारे में दृढ़ धारणाओं को जन्म दिया। विज्ञान की

चकाचौध-भरी खोजों के इस युग में ऐसी असाधारण घटनाओं के बारे में भी यदा-कदा भरोसेमन्द सूचनाएँ मिलती रही हैं। कभी-कभी ऐसी सूचनाएँ मनगढ़न्त भी हो सकती हैं, तथापि वे सत्य की सम्भावित अभिव्यक्ति की ओर संकेत करती हैं। सामान्यतया, वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने का दावा करनेवाले लोग अतीन्द्रिय तथ्यों की ऐसी अभिव्यक्ति को तुच्छ मानते रहे हैं। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानव की पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही प्रकृति और ब्रह्माण्ड के तथ्यों के अनुभव और बोध का प्रयत्न करता है। परन्तु अतीन्द्रिय तथ्य या चमत्कार कही जानेवाली घटनाएँ ऐसी वैज्ञानिक छानबीन की परिधि में नहीं आतीं, क्योंकि वे पाँच ज्ञानेन्द्रियों की सीमा से परे घटित होती हैं। ऐसे कई तथ्य हैं जो आधुनिक विज्ञान के लिए भी बोधगम्य नहीं हैं, परन्तु वैज्ञानिक उनके परीक्षण की इच्छा नहीं रखते। कुछ लोगों ने भले ही संयोगवश इन तथ्यों का निरीक्षण तथा अनुभव प्राप्त कर लिया हो और वे उन तथ्यों की सच्चाई के बारे में भले ही आश्चस्त हों, पर वे इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने में संकोच करते हैं, क्योंकि इन घटनाओं की प्रायः खिल्ली उड़ायी जाती है। वे प्रायः अन्धविश्वासी वैज्ञानिकों के रूप में हेय और तुच्छ समझे जाने की आशंका से भयभीत रहते हैं। यद्यपि शोधकर्ता और वैज्ञानिकगण इन अलौकिक घटनाओं का पता लगाने में सफल हो सकते हैं, परन्तु वे जनता द्वारा इन व्याख्याओं के विरुद्ध दीर्घकाल से व्यक्त प्रतिकूल भावना और घृणा को समाप्त करने में समर्थ नहीं हो पाते। यदि ये शोधकर्ता अपनी खोजों को प्रकाशित भी करें, तो उनके विचार विरोधियों के कोलाहलपूर्ण विरोधों के सम्मुख अरण्य-रोदन मात्र ही सिद्ध होते हैं। यहाँ तक कि धार्मिक आचार्यगण भी उनके घोषित विश्वासों के अनुरूप न होने पर ऐसी खोजों की सशक्त भर्त्सना करते हैं। राजनीतिज्ञ और अधिकार-प्राप्त लोग भी अपनी राजनीतिक

विचारधाराओं या सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्तों के साथ इन तथ्यों का संघर्ष देखकर स्वाभाविक रूप से उनकी निन्दा करते हैं। अतः यह सत्य प्रतिकूल भावना से ग्रस्त लोगों के विरोध के बीच दबा प्रतीत होता है। लेकिन यह सदा-सर्वदा छिपा नहीं रह सकता। निष्पक्ष शोधकर्ताओं के समक्ष इस सत्य का निश्चय ही रहस्योद्घाटन होगा।

अतीत में, जब यातायात तथा संचार के साधन बड़े सीमित थे, तब किसी समुदाय में इन विचारों के फैलने तथा बद्धमूल होने में कई शताब्दियों का समय लग जाता था। भौतिक शरीर में ही स्थित जीवात्मा के अस्तित्व के बारे में ज्ञान होने में दीर्घ काल लग गया। जब मनुष्य जीवात्मा और शरीर के बीच के सम्बन्ध से अवगत हो गया, तब उसके मन में जीवात्मा के उद्भव, लक्ष्य, विकास-क्रम तथा स्वरूप के बारे में प्रश्न उठने लगे। यद्यपि समय बीतने के साथ कुछ सिद्धान्तों का विकास हुआ, पर उन्हें विरोधों का सामना करना पड़ा था। मगर हमारे पूर्वजों ने चुनौती स्वीकारने में संकोच नहीं किया और उन्होंने संशयों का निवारण करके सत्य को इस ढंग से प्रस्तुत किया कि वह सार्वभौम रूप से स्वीकार्य हो सके।

यदि हम 'योगशास्त्र' जैसी एक पुस्तक का भी अध्ययन करें, तो हम उसमें निहित विचारों, चर्चाओं, निष्कर्षों और प्रयोगों के क्रियान्वयन से दंग रह जाएँगे। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों ने अपने अनुभवों तथा सिद्धान्तों को भावी पीढ़ियों के लाभार्थ रख छोड़ा है। मैक्समूलर के अनुसार 'योगशास्त्र' लगभग ६००० वर्षों पहले लिखा गया था। कतिपय अन्य स्रोतों के अनुसार यह ग्रन्थ और भी प्राचीन है।

कहते हैं कि बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व, गौतम वनों में परिव्रजन करते समय योग में सिद्ध असंख्य तपस्वियों से मिल चुके थे। मैक्समूलर के अनुसार योगसूत्र के लेखक पतंजलि का काल द्वितीय

शताब्दी ईसापूर्व था। यह ग्रन्थ अनुभूतियों के आधार पर स्पष्ट तथ्य युक्तिसंगत ढंग से बताता है कि मानव-मन को जब टोंक-टोंक प्रशिक्षित किया जाता है, तो वह किन ऊँचाइयों तक पहुँच सकता है। हम जानते हैं कि ३०० वर्षों के वैज्ञानिक विकास के उपरान्त ही परमाणु हथियारों और राकेटों के युग की शुरुआत हुई। इसी प्रकार निश्चय ही काफी ज़ाल तक अन्वेषण तथा शोधों के बाद ही लोगों के मन में ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म के रहस्यों तथा कर्म-सिद्धान्त के विषय में दृढ़ विश्वास प्रतिष्ठित हुआ होगा।

सत्य की खोज का राजमार्ग

चार्वाक सम्प्रदाय के अलावा भारत के अन्य सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने सत्य-शोध की एक सर्वमान्य प्रणाली स्वीकार की थी। इस प्रणाली में शास्त्र-प्रमाण, तर्क तथा अनुभव — ये तीन चरण हैं। क्या ये आधुनिक विज्ञान द्वारा अंगीकृत निरीक्षण, अनुमान तथा प्रयोग के सोपानों के सदृश नहीं हैं? वैसे इन दोनों के बीच एक अन्तर है।

दर्शन-शास्त्र भौतिक जगत से सम्बन्धित तथ्यों का नहीं, अपितु मानवीय चेतना के अन्तर्जगत के तथ्यों की छानबीन करता है। मन का क्या स्वरूप है? सुख और दुःख का क्या अभिप्राय है? जीवन का क्या अर्थ तथा उद्देश्य है? मृत्यु क्या है? मृत्यु के बाद क्या होता है? एक व्यक्ति को अन्य व्यक्ति से पृथक् करने के मूलभूत कारण क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर देना या इन तथ्यों के नियामक सिद्धान्तों को पता लगाना ही इसका उद्देश्य था।

ज्ञान सामान्यतः इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है। वे अनुभव-जन्य ज्ञान के प्रत्यक्ष माध्यम हैं। आँख, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा जब पदार्थों के सम्पर्क में आते हैं, तो वे व्यक्ति को ऐन्द्रिक विषयों के

अनुभव में समर्थ बनाते हैं। यह ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव का परिणाम है। सूर्योदय होने पर हमारी आँखें उस घटना को देखती हैं। तब यदि कोई यह कहे कि अभी प्रातःकाल नहीं हुआ है, तो उसे मिथ्याभाषी कहना पड़ता है। इसी तरह जब हम कोई ध्वनि सुनते हैं, कोई सुगन्ध या दुर्गन्ध सूँघते हैं, कोई खट्टा या मीठा स्वाद लेते हैं, कुछ गर्म या ठण्डा छूते हैं, तो हम उन गुणों को धारण करनेवाले पदार्थों के अस्तित्व का निर्विवाद प्रमाण प्राप्त करते हैं। इस प्रमाण पर कोई भी विवाद नहीं करता। इसी तरह, यदि कोई पिछले जन्मों की घटनाओं का स्मरण करता है और यदि उन्हें पर्याप्त प्रमाणों से प्रमाणित किया जाता है, तो इसे हम एक तरह के प्रत्यक्ष ज्ञान के समान ही स्वीकार करेंगे।

विश्व के सभी आध्यात्मिक लोगों ने एक सर्व-शक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी तथा कृपालु ईश्वर में अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है। निःसन्देह लोगों के धार्मिक कृत्यों और क्रिया-विधियों में प्रत्यक्ष भेद हो सकते हैं, परन्तु सभी धर्मों के लोग एक ऐसे ईश्वर में विश्वास करते हैं, जो इस संसार में प्राणियों के जन्म, वृद्धि तथा मृत्यु को सम्पन्न करता है और जो ब्रह्माण्ड का सर्वोच्च शासक हैं। बिना किसी अपवाद के, सभी शास्त्र ईश्वर की शक्ति का गुणगान करते हैं। पर कभी-कभी सर्वाधिक उत्साही श्रद्धालुओं को भी एक न्यायी और परम दयालु ईश्वर की सृष्टि के रहस्य बड़े विस्मयकर लगते हैं। कुछ लोग जन्म से ही सुख तथा आनन्द का भोग करते हैं। वे स्वस्थ शरीर, सबल मन व इच्छाशक्ति तथा अनुकूल परिवेश का सौभाग्य प्राप्त करते हैं और जीवन में उनकी अबाध उन्नति होती जाती है। परन्तु अन्य अनेक लोग मानो दुःखभोग के लिए ही जन्म लेते हैं। कुछ लोग शारीरिक रूप से विकलांग, तो कुछ मानसिक रूप से अक्षम होते हैं। उन्हें अपना जीवन दुःख-कष्ट में ही बिताना पड़ता है। कुछ

लोग दुःख सहने में असमर्थ होकर आत्महत्या का जघन्य पाप तक कर बैठते हैं। कुछ धर्मों में यह सात्वता दी जाती है कि यदि कोई व्यक्ति इस जीवन में दुःख उठाता है, तो उसे परलोक में सुख मिलेगा। पर इससे समस्या का समाधान नहीं होता। ये धर्म इन कठिनाइयों, दुःखों तथा कष्टों की कोई समुचित व्याख्या नहीं प्रस्तुत करते। अब यहाँ से तर्क की भूमिका आरम्भ होती है। वस्तुतः तर्क के माध्यम से इस भौतिक जगत में एकत्रित ज्ञात आँकड़ों के आधार पर, सामान्यतः न समझ में आनेवाली चीजों को समझने के प्रयत्न किए जाते हैं।

‘बिना बीज के कोई पेड़ नहीं होता और बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता’ – यह विज्ञान का एक निर्विवाद नियम है। कार्य और कारण को भिन्न मानना उचित नहीं है। कारण प्रायः सूक्ष्म रहता है, पर कार्य प्रत्यक्ष-गोचर होता है। सामान्य प्रेक्षक कार्य और कारण के बीच उचित सम्पर्क-सूत्र को समझ पाने में असमर्थ रहता है। यदि कोई बच्चा कहता है, ‘पहले तो आम हरे रंग का था, अब यह पीला क्यों है?’ तो आप कह सकते हैं – ‘कच्चा रहने पर आम हरा होता है और पकने पर पीला हो जाता है।’ पर यह तो केवल वर्णन है, कारण की व्याख्या नहीं। यदि हम कहते हैं, ‘कार्बोहाइड्रेट्स को फ्रक्टोज में परिणत करनेवाली रासायनिक प्रतिक्रियाएँ इस रंग-परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं’, तो कुछ हद तक कारण बताना होगा। वैज्ञानिक-प्रवृत्ति-सम्पन्न शोधकर्ता किसी वस्तु की वर्तमान अवस्था का कारण उस वस्तु के भीतर ही ढूँढ़ने की चेष्टा करते हैं। ‘कार्य’ के पहले विद्यमान रहनेवाली एक अप्रकट अवस्था को ‘कारण’ कहते हैं। कार्य कारण का प्रत्यक्ष-गोचर रूप है। इससे हमें कार्य और कारण के बीच सम्बन्ध की थोड़ी धारणा हो जाती है। वस्तुतः विशालकाय वटवृक्ष एक लघु बीज में ही छिपा रहता है। मिट्टी,

जल, वायु और सूर्य के प्रकाश से आवश्यक पोषण को आत्मसात् करके बीज एक शक्तिशाली वृक्ष बन जाता है; एक लघु वस्तु विशाल में परिणत हो जाती है। पौधे की हर जाति मिट्टी, जल, वायु और सूर्य के प्रकाश के उन्हीं निर्धारित स्रोतों से अपना पोषण प्राप्त करके विकास के अपने ही नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त होती है। नीम का बीज बोकर हम उससे आम का पौधा होने की आशा नहीं कर सकते। 'कारण' को हम 'कार्य' के रूप में अभिव्यक्त होने से नहीं रोक सकते। प्रत्यक्ष-गोचर कार्य सर्वदा एक अदृश्य कारण का फल होता है। यह बात तर्क पर आधारित है तथा वैज्ञानिक ढंग से की गई खोजों की प्रणाली के अनुसार है।

एक बालक था, जो ठीक-ठीक बोलना सीखने के पहले ही अन्य लोगों द्वारा गाये हुए गीतों के सुरों को पहचान सकता था। वह करीब २०० सुरों को पहचान लेता था। उसके इस गुण के स्रोत के बारे में भला कोई कैसे जान सकता था? किसी विषय का ज्ञान या उसमें निपुणता सजग प्रयत्न तथा अभ्यास से प्राप्त होती है। इस बालक के पास यह निपुणता अर्जित करने का कोई मौका ही नहीं था। तो फिर उसने यह कौशल कैसे प्राप्त कर लिया? क्या हमें उसके ज्ञान के स्रोत की खोज उसके मन की गहराई में करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए?

यदि हम यह मान लें कि कुछ विशिष्ट गुण तथा क्षमताएँ पूर्व जन्मों में अर्जित की गई हैं, तो स्वेच्छापूर्वक किए गए अच्छे व बुरे कार्यों का उनसे प्राप्त होनेवाले सुख तथा दुःख से सम्बन्ध है - इस तर्कसंगत सिद्धान्त को क्षति पहुँचाए बिना ही हम अपना निष्कर्ष निकाल सकते हैं। अपनी सत्य-विषयक धारणा को तार्किक रूप से सुदृढ़ करने की यह एक प्रणाली है। इस प्रणाली को आगे चलकर वैज्ञानिक तरीके से जाँचा जा सकता है। विश्व के सभी देशों में और सभी युगों में ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने परम

सत्य की प्राप्ति के लिए परम व्याकुलता, आजीवन तपस्या तथा साधना के बाद अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ प्राप्त कीं। सम्भव है उन्होंने उनका प्रचार न किया, पर ऐसे लोग अब भी विद्यमान हैं। ये ऐसे महापुरुष हैं, जो सत्य की अनुभूति के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे, जिन्होंने अपनी सांसारिक कामनाओं का त्याग कर दिया, जो अपने सभी कार्यों में दया-भाव तथा मानवता के कल्याणार्थ प्रयत्नशील रहने के सद्भाव से अनुप्राणित थे। आध्यात्मिक अनुभूतियों में उनका प्रतिष्ठित होना ही उनके सच्चे त्याग, समर्पण, पवित्रता, सेवाभाव, विवेक तथा शरणागति की व्याख्या करता है। सम्भव है उनके उपदेश विद्वत्तापूर्ण न हों, परन्तु ये उनके जीवन रूपी पुस्तक के पृष्ठ होते हैं। यदि हम किसी धर्म के मूल उद्भव पर विचार करें, तो पता चलता है कि हर धर्म ठोस अनुभूति पर टिका है। महान ऋषि दृढ़ स्वर में कहते हैं कि उन्होंने कुछ ऐसे महान सत्यों की खोज कर ली है, जिसका अनुभव इन्द्रियों से नहीं किया जा सकता। फिर भी इस बात पर बल दिया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति ईमानदारी और निष्ठापूर्वक उस पथ का अनुसरण करे, तो वह भी उस सत्य की अनुभूति कर सकता है। हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा अनुभूत सत्यों को 'श्रुति' कहा जाता है। उसमें निहित महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक सत्य सार्वभौमिक हैं।

हम सभी अपने जीवन में इन सत्यों की अनुभूति कर सकते हैं। सत्य की अनुभूति करके मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर परम मुक्ति और सर्वोच्च आनन्द की योग्यता प्राप्त कर लेता है। कहते हैं कि यह पूर्ण मुक्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है।

चमत्कारों का रहस्य

दार्शनिक अन्वेषण की प्रणालियों में, शास्त्रीय प्रमाण, तर्क तथा अनुभूतियों का अध्ययन किया जाता है। परम सत्ता का स्वरूप मन

के परे होने के कारण, शास्त्र एक कामचलाऊ अवधारणा प्रदान करते हैं, जिसकी तर्क द्वारा परीक्षा तथा आन्तरिक अनुभूति के द्वारा उपलब्धि की जानी चाहिए। युक्तिसंगत शोध के बिना केवल शास्त्रीय प्रमाण पर निर्भरता किसी भी दार्शनिक या धार्मिक प्रणाली को कट्टर, एकाधिकारवादी और अनन्यतामूलक बना देती है। कोरा तर्क इच्छाओं का यौक्तिकीकरण भी हो सकता है। शास्त्रों तथा तर्क से अप्रमाणित अनुभूति अपने ही अवचेतन मन का प्रतिबिम्ब हो सकती है। परन्तु जब ये तीनों एक ही निष्कर्ष की ओर संकेत करने लगें, तब व्यक्ति सत्य तक पहुँचने के बारे में आश्वस्त हो सकता है। देहान्तरण और पुनर्जन्म के नियम के सत्यापन के लिए भी इसी मापदण्ड को लागू किया जा सकता है। आधुनिक परा-मनोविज्ञान भी पुनर्जन्म के नियम को एक तथ्य के रूप में सिद्ध करने के लिए यथेष्ट प्रमाण प्रदान करता है।

सार्वभौमिक नियम

कर्म-सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा जन्म तथा मृत्यु के अनेक चक्रों में संघर्ष करने के बाद क्रमविकास के उच्चतर सोपानों तक पहुँचती है। डार्विन के क्रमविकासवाद के सिद्धान्त को युक्तिसंगत माननेवालों के लिए पुनर्जन्म के सिद्धान्त में क्रमविकास की प्रक्रिया को समझना कठिन नहीं होगा। इस महत्त्वपूर्ण दृष्टि से डार्विन के क्रमविकास के मूलभूत सिद्धान्त को भारतीय कर्मवाद और भी आगे ले जाता है -

१. क्रमविकास प्राणियों के बाह्य रूपों तक ही सीमित नहीं है। इसमें प्राणियों की चेतना या आत्मबोध का क्रमविकास भी सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में, कर्मवाद और पुनर्जन्म के नियमों का उद्देश्य मानव-जाति का मानसिक और आध्यात्मिक क्रमविकास है।

२. क्रमविकास प्रक्रिया में उन्नति का सम्बन्ध मन और आध्यात्मिक विषयों से है ।

भौतिक-विज्ञान के नियमों की भाँति ही कर्म और आत्मा के देहान्तरण का नियम भी 'कार्य-कारण-सम्बन्ध' के सिद्धान्त के आधार पर परिचालित होता है । उदाहरणार्थ - व्यक्ति जब जन्म लेता है, तब अपने पूर्व जन्मों के अच्छे या बुरे कार्यों के संचित परिणामों को धारण कर लेता है । इस प्रकार व्यक्ति मानो स्वयं द्वारा ही निर्मित और चुने हुए संसार में पहुँच जाता है । जिना समीनारा कहते हैं, 'मेरे सुपरिचित प्रोटेस्टेंट पुरोहित आधुनिक विचारों और विश्लेषण-पद्धतियों में रुचि रखनेवाले एक उदार व्यक्ति थे । उन्होंने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का गहन अध्ययन किया था । एक बार मैंने उनसे पूछा, "क्या आपने अपने व्याख्यानों में कभी कर्म और पुनर्जन्म के नियम के बारे में कुछ कहने का साहस किया है?" उन्होंने कहा, "हाँ, कभी-कभी, परन्तु बड़ी सतर्कता से । पिछली बार मैंने इसकी तुलना अपने ईसाई धर्ममत के नरक की अवधारणा के साथ की थी । परन्तु उस पर विश्वास करने या न करने का निर्णय मैंने श्रोताओं पर ही छोड़ दिया था ।"'

यह सचमुच ही एक साहसिक कदम था । ऐसे बयान देने के दुःसाहस करनेवाले ईसाई पादरी चर्च के धर्माचार्यों के क्रोध को आमंत्रण दे सकते हैं । उन्हें धर्म-बहिष्कृत होने के खतरे का सामना भी करना पड़ सकता है । कुछ वर्षों पूर्व तक तो ऐसे बयान धर्मविरोधी मान लिए जाते थे और इसके लिए कैद या मृत्युदण्ड तक की सजा दी जाती थी ।

सुविख्यात अंग्रेज लेखक पॉल ब्रन्टन ने कहा था कि यदि पाश्चात्य समाज और संस्कृति को जीवित रहना है, तो वहाँ के लोगों को कर्म-सिद्धान्त की शिक्षा देनी चाहिए । अर्थात् यह सिद्धान्त समाज-व्यवस्था को अति भोगपरायणता तथा स्वेच्छाचारिता से बचाने

में मदद करेगा। यह संयम और आत्मनियंत्रण के अभ्यास में भी लोगों की मदद करेगा। चर्च और ईसाई धर्म के अनुयायी लोग कर्म-सिद्धान्त को प्राच्य अन्धविश्वास कहकर इसे व्यापक रूप से अस्वीकार करते हैं। परन्तु, एक अनुमान के अनुसार अमेरिका का हर चौथा नागरिक इसे स्वीकार करता है। इंग्लैंड का 'संडे टेलीग्राफ' एक अपेक्षाकृत कट्टर समाचार-पत्र है। इसके द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार गत १० वर्षों में ब्रिटेन में कर्मवाद तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करनेवालों की संख्या १८ से बढ़कर २८ प्रतिशत हो गई है। १९८७ ई. में रोजर जे. वूलगर नामक एक मनोवैज्ञानिक ने 'Other Lives, Other Selves' ('अन्य जीवन, अन्य आत्माएँ') नामक एक पुस्तक लिखी। वे डॉ. सी. जी. युंग द्वारा विकसित प्रणाली पर कार्य करनेवाले एक मनो-चिकित्सक थे। वे कहते हैं कि हमारा अवचेतन मन कोई भी चीज नहीं भूलता। उन्होंने ऐसे अनेक अध्ययन प्रकाशित किए, जिनमें पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ जगाकर मानसिक रोगियों का उपचार किया गया था। वे कहते हैं कि अगले १० वर्षों में संसार में ऐसे अनेक चिकित्सालय होंगे, जहाँ पूर्वजन्मों की स्मृतियों को जगाकर रोगियों का उपचार किया जाएगा।

यदि औषधि-विज्ञान की आधुनिक प्रणाली द्वारा इस प्राचीन सत्य को एक सार्वभौम नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाए, तो हम लोग एक ऐसे भविष्य की आशा कर सकते हैं, जब संसार में व्याप्त घृणा, हिंसा और स्वेच्छाचारिता की शक्तियों का विनाश हो जाएगा और सम्पूर्ण मानव समाज सत्य व शान्ति के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित होगा।

अध्याय ४

जैसी करनी, वैसी भरनी

हमारी वर्तमान अवस्था हमारे विचारों का परिणाम है। विचार हमारे जीवन को रूपायित तथा निर्धारित करते हैं। यदि हमारे विचार अच्छे हैं, तो सुख छाया की तरह हमारा अनुसरण करता है। यदि हमारे विचार बुरे हैं, तो निश्चय ही दुःख हमारा पीछा करेगा।

— गौतम बुद्ध

कर्म एक मनोवैज्ञानिक नियम है और यह प्राथमिक रूप से मनो-जगत में कार्य करता है, जिसमें भौतिक परिस्थितियाँ साधन-मात्र होती हैं तथा उनके द्वारा मानसिक उद्देश्य की पूर्ति होती है। आज जिसका अस्तित्व है, वह अतीत के असंख्य दिनों, युगों और कल्पों का परिणाम है। क्योंकि जीवन में निरन्तरता है और चाहे वह भौतिक पदार्थों में अभिव्यक्त हो अथवा चेतना के अन्य क्षेत्रों में, उसकी अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक है।

— एडगर कैसी

अगर यह सत्य है कि (जीवन की) इस छोटी-सी अवधि में हम अपने भविष्य का निर्माण करते हैं, और अगर यह सत्य है कि हर

कार्य के लिए कारण अपेक्षित है, तो यह भी सत्य है कि हमारा वर्तमान हमारे सम्पूर्ण अतीत का परिणाम है। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य के भाग्य-निर्माण के लिए मनुष्य के सिवा और किसी की जरूरत नहीं है।

ज्ञान केवल अनुभव से प्राप्त होता है; जानने का और कोई उपाय नहीं है। यदि हमने अपने जीवन में इसका अनुभव नहीं किया है, तो पिछले जन्मों में किया होगा।

हममें से कोई भी शून्य से नहीं आया, इसलिए हम शून्य में विलीन नहीं होंगे। हम अनन्त काल से विद्यमान हैं और रहेंगे। ब्रह्माण्ड में या इसके परे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो हमारा अस्तित्व मिटा सके। पुनर्जन्मवाद से हमें डरना नहीं चाहिए, क्योंकि यही मानव-जाति की नैतिक उन्नति का प्रधान सहायक है।

मनुष्यों के बीच और लोगों की ज्ञानार्जन करने की क्षमताओं के बीच पाई जानेवाली व्यापक विभिन्नता के लिए पुनर्जन्म के सिवा अन्य कोई भी सिद्धान्त जिम्मेदार नहीं है।

शरीर का नाश होने के बाद आत्मा की गति का निर्णायक क्या होगा? उसने जो-जो कर्म किए हैं, जो-जो विचार किए हैं, वे ही उसे किसी विशेष दिशा में परिचालित करेंगे। यदि समवेत कर्मफल ऐसा हो कि भोग के लिए उसे एक नई देह गढ़नी पड़े, तो वह एक ऐसे माता-पिता के पास जाएगी, जिनसे वह उस शरीर के उपयुक्त उपादान प्राप्त कर सके, और उन उपादानों को लेकर वह एक नया शरीर गढ़ लेगी।

— स्वामी विवेकानन्द

मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है।

— ईसामसीह

एक तथ्यपरक बात

यदि हम नागफनी के पौधे लगाएँ, तो क्या हम उनसे गुलाबों की आशा कर सकते हैं? नहीं। अंजीर के बीज से अंजीर का पौधा ही अंकुरित होगा, आम का नहीं। यह नियम मानव-जीवन पर भी लागू होता है। हमारे अनेक जन्मों के इतिहास में हमारा वर्तमान जीवन एक कड़ी मात्र है। लम्बी यात्रा के दौरान एक गाड़ी जलपान, भोजन आदि के लिए कुछ स्थानों पर रुक सकती है। हमारा वर्तमान जीवन हमारी आत्मा की यात्रा में एक पड़ाव मात्र है। प्राचीन हिन्दू धर्म कर्म के सिद्धान्त की घोषणा करता है। हम अपने विगत जन्मों के कर्मों के फल वर्तमान जीवन में भोगते हैं। अन्य धर्मों के अनुयायी इस विचार को स्वीकार नहीं करते। उनके मतानुसार किसी व्यक्ति का जन्म या मृत्यु पूर्व-नियोजित नहीं, अपितु संयोग मात्र है। परन्तु यह एक सार्वभौमिक नियम है कि कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता। अतः हमारे जीवन का निश्चित कारण होना चाहिए। इस विचार के समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यहाँ पर मैं केवल एडगर कैसी का सन्दर्भ दे रहा हूँ, जिनका एक ईसाई के रूप में पालन-पोषण हुआ था। यद्यपि ईसाई धर्म पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता, परन्तु कैसी ने एक बड़े ही अद्भुत रूप से इनके बारे में विवरण दिया।

समाचारों का मौन विस्फोट

‘अतीन्द्रिय अनुभवों के अत्यद्भुत प्रमाण!’

‘एक्स-रे जैसी नेत्रोंवाले एडगर कैसी!’

‘सम्मोहन-निद्रा का मसीहा – वर्जीनिया तट का चिकित्सक!’

‘आधुनिक द्रष्टा के अनुभवकोष में प्राचीन सिद्धान्त!’

‘संस्कृत का कभी एक भी शब्द न सुना हुआ व्यक्ति सम्मोहित अवस्था में संस्कृत बोलता है !’

‘एक पाश्चात्य अतीन्द्रिय-द्रष्टा ईसाई के पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त विषयक अभूतपूर्व अनुभव !’

ये हैं विभिन्न अमेरिकी समाचार-पत्रों की कुछ सुर्खियाँ, जो एडगर कैसी की अतीन्द्रिय शक्तियों का परिचय देती हुई कुछ रिपोर्टों के साथ वहाँ समय-समय पर प्रकाशित हुई थीं ।

१९ अक्टूबर, १९१० ई. को ‘न्यूयार्क टाइम्स’ नामक पत्र ने अपने रविवासरीय अंक के साहित्य खण्ड में एक अद्भुत रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो इस प्रकार है -

‘सम्मोहन की अवस्था में चिकित्सक की भूमिका में रूपान्तरित हो जानेवाले एडगर कैसी एक दुर्लभ व्यक्ति हैं, जिनसे विश्व के चिकित्सक विस्मय-विमुग्ध हो गए हैं ।’ पत्र में आगे लिखा था, ‘एडगर कैसी ने जो चमत्कारिक शक्ति अर्जित की है, वह देश के सुविख्यात चिकित्सकों का ध्यान आकर्षित करती है । चिकित्सा-विज्ञान से पूर्णतया अनभिज्ञ यह व्यक्ति सम्मोहन-प्रसूत निद्रा की अवस्था में रोगों का निदान करके उनके लिए दवाइयाँ भी बता देता है !’

उसे केवल रोगी का नाम, स्थान और पता मात्र जानने की जरूरत थी । फिर रोगी चाहे पास के कक्ष में हो या हजारों मील दूर, एडगर कैसी सम्मोहन-प्रसूत निद्रा के गहन स्तरों में जाकर अपनी अतीन्द्रिय दृष्टि से सब कुछ देख सकता था । सम्मोहन की अवस्था में ही वह बोलने लगता और उसी अवस्था में प्रश्नों के उत्तर भी देता । जिन स्थानों के विषय में उसने कभी सुना नहीं था, वह उनकी दृश्यावली तथा वर्तमान जलवायु का वर्णन करता और जिन्हें उसने कभी देखा नहीं था उन व्यक्तियों के शारीरिक लक्षण बताने लगता, मानो उसे सब कुछ स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा हो ।

एडगर कैसी, ईसामसीह का भक्त

कैसी का जन्म १८ मार्च, १८७७ को संयुक्त राज्य अमेरिका के केन्टुकी प्रान्त के हापकिन्स-विले में हुआ था। उसके माता-पिता निरक्षर थे। कैसी ने केवल आठवीं कक्षा तक की स्कूली शिक्षा पायी थी। उसने कई बार बाइबिल पढ़ी थी और वह ईसामसीह का एक निष्ठावान भक्त था। उसके मन में पादरी बनने की इच्छा थी, क्योंकि वह बीमार और पीड़ित लोगों की सेवा करने का इच्छुक था। स्कूली शिक्षा को जारी न रख सकने के कारण उसे पादरी बनने का विचार त्याग देना पड़ा था। उसे गाँव में एक कृषक का जीवन बिताना पसन्द नहीं आया, अतः वह नगर में जाकर एक पुस्तक-विक्रेता के यहाँ नौकरी करने लगा।

इक्कीस वर्ष की आयु में उसके साथ एक ऐसी विचित्र घटना घटी, जिसने उसके जीवन के रुख को परिवर्तित कर दिया। कण्ठशोथ (लैरिन्जाइटिस) नामक बीमारी के कारण उसकी बोलने की शक्ति चली गई। सारी चिकित्सा निरर्थक सिद्ध हुई। बोलने में अपनी असमर्थता के कारण, निराश होकर वह अपने गाँव लौट आया। उसने जीविका-निर्वाह के लिए नौकरी ढूँढ़ने में एक साल गँवा दिया। आखिरकार उसने फोटोग्राफी का व्यवसाय करने का निश्चय किया, क्योंकि उसमें बोलने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

उसी समय उस गाँव में हर्ट नामक एक जादूगर आया। वह सम्मोहन का विशेषज्ञ था और उस विद्या से रोगियों की परीक्षा तथा चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। उसे एडगर कैसी की दयनीय दशा का पता चला। उसने कैसी को सम्मोहित करके उसी अवस्था में उसे कुछ सुझाव दिए। आश्चर्य की बात यह थी कि कैसी सम्मोहन की अवस्था में धाराप्रवाह बोल रहा था, परन्तु जागने पर उसकी वाणी पुनः लुप्त हो गयी। हर्ट उस मामले में और अधिक प्रयोग नहीं कर सका,

पर लायने नामक एक अस्थि-चिकित्सक ने सम्मोहन के द्वारा इस मामले में और अधिक जानने का प्रयत्न किया। धीरे-धीरे कैसी का रोग ठीक हो गया और इससे उसके जीवन में एक अद्भुत नये अध्याय का मार्ग खुल गया।

चिकित्सक का उपहार

लायने ने कैसी को सम्मोहित करके उसी से उसकी बीमारी के कारणों तथा उसका इलाज जानने का प्रयास किया। तदनुसार, कैसी की सम्मोहन अवस्था में लायने ने उसे सुझाव दिए। कैसी अपनी सम्मोहित अवस्था में ही बोला, 'हाँ, शारीरिक दुर्बलता के कारण मेरी कण्ठ की मांसपेशियाँ कमजोर हो गई हैं, इसलिए मेरी वाणी बन्द हो गयी है। ऐसा सुझाव दीजिए कि उस ओर थोड़ा अधिक रक्त-प्रवाह होने लगे।' लायने ने तदनुसार सुझाव दिए। कैसी के शरीर में रक्त ऊर्ध्वमुखी होकर प्रवाहित होने लगा और उसकी छाती और गले का भाग क्रमशः बैंगनी, गुलाबी और लाल रंग का हो गया। सम्मोहन-निद्रा में पड़ा हुआ कैसी इसके २० मिनट बाद अपने गले को सन्तुलित करते हुए बोला, 'अब मैं बिलकुल ठीक हूँ। मुझे फिर से वाणी मिल गई है। अब ऐसा सुझाव दीजिए कि रक्त-प्रवाह सामान्य हो जाए और मैं सम्मोहन-निद्रा से जाग सकूँ।' लायने ने कैसी के निर्देशों का पालन किया। कैसी उठ बैठा और एक वर्ष की बीमारी के बाद पहली बार स्वाभाविक स्वर में बोला। यद्यपि कुछ माह बाद उसकी बीमारी फिर लौट आयी, परन्तु लायने ने पहले की ही भाँति सुझाव देकर उसे सामान्य ढंग से बोलने में मदद की।

समर्थ गुप्तचर

कैसी अपनी सम्मोहित अवस्था में अपने शरीर तथा उसकी अवस्था को अत्यन्त स्पष्ट रूप से देख पाता था। लायने ने सोचा कि

कैसी क्या अपने समान ही दूसरों के शरीरों की अवस्था को भी उतनी ही सटीकता के साथ समझ सकता है? लायने सम्मोहन का इतिहास जानता था। फ्रांस में मेस्मर के एक अनुयायी द्वारा किए गए एक प्रयोग के बारे में उसने पढ़ा था, और अब वह भी वैसा ही प्रयोग करने को अग्रसर हुआ। वह स्वयं भी काफी समय से पेट-दर्द से पीड़ित था। उसने कैसी को सम्मोहन-निद्रा में सुलाकर अपने रोग के इलाज के विषय में जानने का प्रयत्न किया। कैसी ने सम्मोहन की अवस्था में लायने के शरीर की आन्तरिक संरचना का वर्णन किया और ऐसा उपचार सुझाया, जिसे पहले किसी भी चिकित्सक ने नहीं सुझाया था। कैसी द्वारा बतायी गई दवा से लायने केवल तीन सप्ताह में ही ठीक हो गया। इस प्रकार कैसी में निहित अद्भुत चिकित्सकीय शक्ति प्रकाश में आई।

पड़ोस के ही गाँव की अल्बामा नामक एक महिला सहसा अपना मानसिक सन्तुलन खोकर पागलों-सा व्यवहार करने लगी। चिकित्सकीय इलाज व्यर्थ सिद्ध हुआ। कैसी को इसकी सूचना मिली। वह सदा की भाँति उत्तर की ओर सिर करके लेट गया और सम्मोहन-निद्रा में चला गया। तब कैसी से अल्बामा की हालत के बारे में पूछा गया। कैसी की एक्स-रे-दृष्टि ने पता लगाकर बताया कि उस महिला की निकल रहे अक्ल-दाँत से उसके मस्तिष्क की ओर जानेवाली एक नस दब रही थी, इसलिए उसकी मानसिक अवस्था ऐसी हो गयी थी। महिला के पागलपन को ठीक करने के लिए कैसी ने उसके उस दाँत को निकाल देने का सुझाव दिया। दाँत निकाल देने पर वह महिला स्वस्थ हो गयी और इससे कैसी की बातों का सत्यापन भी हो गया। कैसी की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी।

कोई संयोगमात्र नहीं

इसमें उल्लेखनीय बात यह थी कि कैसी को चिकित्सा-शास्त्र का जरा भी ज्ञान न था, परन्तु अपनी सम्मोहित अवस्था में वह

धाराप्रवाह चिकित्सकीय शब्दावली का प्रयोग करता था। वर्षों से बीमारियों से पीड़ित रह चुके लोग भी कैसी द्वारा बताए उपचार से दो-तीन महीनों में ही स्वस्थ हो जाते। जिन लोगों को बिलकुल भी राहत नहीं मिली, उन्होंने वस्तुतः उसके निर्देशों का पालन ही नहीं किया था।

यदि ऐसी अद्भुत घटनाएँ केवल एक-दो बार घटतीं, तो उसे संयोग मात्र मान लिया जाता। परन्तु कैसी ने ४३ वर्षों तक अपनी अतीन्द्रिय शक्तियों की सहायता से असंख्य रोगियों को सलाहें दीं। इसका विवरण ९०,००० टंकित पृष्ठों में लिपिबद्ध है। कहते हैं कि अमेरिका के २१ नगरों के करीब ३७ अध्ययन-दल उसके वक्तव्यों का अध्ययन कर रहे हैं। कैसी द्वारा सहायता-प्राप्त लोगों के बयानों का गहन अध्ययन करने के बाद जीना सरमिनारा नामक एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने उस विषय पर तीन ग्रन्थ लिखे - 'Many Mansions' ('अनेक आवास'), 'Many Lives and Many Loves' ('अनेक जीवन, अनेक प्रेम') और 'The World Within' ('अपने भीतर का संसार')। १९५० में न्यूयार्क की विलियम स्लोन एण्ड कम्पनी ने उन्हें मुद्रित किया। तब से उनके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। दुर्भाग्यवश, ये पुस्तकें भारत में सुपरिचित नहीं हैं। यहाँ तक कि 'रीडर्स डायजेस्ट' नामक लोकप्रिय मासिक पत्रिका में भी इस पर कोई लेख प्रकाशित नहीं किया गया। क्या इसके पीछे कोई राजनीति है? इस विषय के जानकार लोग ही हमें सच्चाई से अवगत करा सकेंगे।

सेवा का जीवन

कैसी की तीव्र इच्छा थी कि वह पीड़ितों की यथासम्भव मदद करे। उसने अपनी शक्ति का कभी दुरुपयोग नहीं किया। अनेक

संस्थाओं ने कैसी को थियेटर या मंच पर अपने कार्यों का प्रदर्शन करने के लिए बड़ी धन-राशियों का प्रलोभन दिया, पर उसने तिरस्कारपूर्वक उन प्रस्तावों को ठुकरा दिया। अनेक लोग उसे घुड़दौड़ में भाग लेनेवाले घोड़ों के बारे में भविष्यवाणी करने के लिए तंग करते रहते थे। कई लोग तेल के कुएँ खोदे जानेवाले स्थानों का पहचान करने के लिए उसकी चमत्कारिक शक्तियों को जान में लाने चाहते थे। उसने दो-एक बार इन स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए अपनी शक्तियों के प्रयोग की चेष्टा भी की, परन्तु इससे उसके सिर में घोर पीड़ा होने लगी। इस पर उसने निष्कर्ष निकाला कि 'अपनी शक्तियों का ऐसा दुरुपयोग उसके स्वभाव के प्रतिकूल है' और ऐसे प्रयत्नों को तिलांजलि दे दी। कैसी एक सरल, श्रद्धावान और ईमानदार व्यक्ति था और कभी-कभी उसे सन्देह होता कि उसकी अतीन्द्रिय शक्तियाँ कहीं प्रेतात्माओं की शरारत का परिणाम तो नहीं हैं! परन्तु उसने देखा कि सम्मोहन-प्रसूत निद्रा की अवस्था में दी गई प्रत्येक सलाह से पीड़ित लोगों को निरपवाद रूप से लाभ हुआ है। इस प्रकार उसने केवल मानवता के कल्याण हेतु ही अपनी शक्ति का सदुपयोग करने का संकल्प किया। वह दार्शनिक समस्याओं के समाधान की अपेक्षा रोगों के कारणों और उनके उपचारों की खोज करने में अधिक रुचि लेता था।

पिछले जन्मों के द्रष्टा

ओहियो (प्रान्त) के डेयटन का एक धनाढ्य मुद्रक, आर्थर लैमर्स, कैसी के बारे में फैली सभी खबरों के अध्ययन करनेवालों में से एक था। दर्शन, ज्योतिष, सम्मोहन आदि विविध विषयों में उसकी रुचि थी। वह कैसी के निवास-स्थान सेल्मा में गया। उसने सम्मोहन-निद्रा के दौरान कैसी द्वारा दिए गए बयानों से सम्बद्ध मामलों का

सावधानीपूर्वक अध्ययन किया। उसने पाया कि कैसी एक सच्चा और ईमानदार व्यक्ति था। लैमर्स की स्वास्थ्य-सम्बन्धी कोई निजी समस्या नहीं थी, अतः उसने इस हेतु कैसी की मदद नहीं माँगी। इसके बजाय वह कुछ विशेष प्रश्नों में अत्यधिक रुचि रखता था, यथा - जीवन का क्या उद्देश्य है, सुख-दुःख का क्या तात्पर्य है, विभिन्न लोगों के भाग्यों के भेद का क्या कारण है, मरणोपरान्त मनुष्य का क्या होता है, क्या मृत्यु का तात्पर्य विस्मृति में समा जाना है, क्या अमरत्व के सिद्धान्त में कुछ सत्य है या क्या यह अमर होने की मनुष्य की अन्तर्निहित इच्छा को दृढ़ बनाने हेतु कोई कल्पित बात है? वह जानना चाहता था कि क्या कैसी की अतीन्द्रिय शक्ति ऐसे प्रश्नों का उत्तर दे सकती है!

लैमर्स ने १९२३ ई. के अक्टूबर माह में कैसी और उसके परिवार को अपने गाँव आने का निमंत्रण दिया। उसने कैसी की सम्मोहन अवस्था में उससे अपनी जन्मपत्री के बारे में पूछा। उसने पहले लैमर्स की जन्मपत्री का विवरण दिया और फिर कहा, 'पहले तुम एक तपस्वी थे।'

पिछले जन्मों का कोई प्रसंग उठाए बिना ही आयी इस उक्ति को सुनकर लैमर्स उत्तेजित हो गया। लैमर्स ने तो उससे केवल अपनी जन्मपत्री के बारे में पूछा था। कैसी की सम्मोहित अवस्था के मन में आयी हुई बात पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित थी। यदि यह सत्य सिद्ध हो जाता, तो दर्शन-शास्त्र, धर्म और मनोविज्ञान के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन करना पड़ सकता था। लैमर्स ने अपनी खोज जारी रखने का निश्चय किया। कैसी ने भी अनिच्छापूर्वक स्वीकृति दे दी।

कैसी की पत्नी, उसके दो बच्चों और उसके परिवार की सदस्य-जैसी बन चुकी आशुलिपिक ग्लैडिस डेविस - प्रत्येक ने कैसी से अपने-अपने पूर्व जन्मों के वृत्तान्त पूछे। अपने एक पुत्र के बारे में

कैसी ने कहा, 'तुमने पिछले चार जन्म एक शोध-वेदार्थी के रूप में बिताए हैं, परन्तु अब तुम स्वार्थी और संसारी हो रहे हो। तुमने मुझ से उसने कहा, 'तुम बड़े चिड़चिड़े हो। तुम्हारा व्यवहार निरर्थक है। तुम्हें मित्र और इंग्लैंड के अपने दोनों ही मित्रों के साथ मित्रता के कारण दुःख भोगना पड़ा था। कम-से-कम अब तो स्वयं को निरर्थक करना सीखो।'।

उसकी शक्ति का उद्भव

एक बार कैसी की सम्मोहित अवस्था में उसी के पूर्वजन्म के बारे में दर्शन किया गया। कई शताब्दियों पूर्व वह निरर्थक देश में जन्मा था। तभी उसे कुछ अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हुई थी। वह अपने अहंकार, जिद्दीपन, स्वेच्छाचारिता तथा भोगपरायणता के कारण अपने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया। कालान्तर में उसकी अलौकिक शक्तियाँ लुप्त हो गयीं। एक परवर्ती जीवन में वह एक निरर्थक व्यक्ति था। एक युद्ध में घायल होकर वह तीन दिनों तक बिना अन्न-पान के एक मरुभूमि में पड़ा हुआ घोर पीड़ा भोगता रहा। तब उसने अपने इच्छाशक्ति से देहत्याग कर दिया था। मन को अन्तरी क्षेत्र के योगदान से मुक्त रखने की उसकी अति-मानवीय सामर्थ्य कुछ ही दिनों में उस जीवन में चिकित्सक के रूप में अर्जित कौशल से प्रकट हुई थी। उसने घोषित किया कि उसके वर्तमान जीवन के पूर्वजन्म के पिछले जन्मों के संचित अनुभवों और कर्मों के परिणाम हैं। उसका वर्तमान जीवन उसे अहंकार और स्वेच्छाचारिता से मुक्त करने के लिए नियति द्वारा निर्धारित किया गया था। अब, इस जीवन में उसके सम्मुख यह परीक्षा की घड़ी थी कि क्या वह अपने ईश्वर-प्राप्त शक्तियों का प्रयोग अपने निजी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए करे या अपने मानव-बन्धुओं की सेवा के लिए।

पुनर्जन्म क्रमविकास का सूचक है

कैसी एक दुविधा में था। एक ओर तो वह अपनी सम्मोहन अवस्था के दौरान की गई भविष्यवाणियों का खण्डन नहीं कर सकता था। दूसरी ओर, एक धर्मपरायण ईसाई होने के कारण पुनर्जन्म का सिद्धान्त उसके धार्मिक विश्वासों से मेल नहीं खाता था। लैमर्स ने अपने ज्ञान द्वारा उसे सांत्वना देने का प्रयास किया। उसने उपयुक्त उदाहरणों द्वारा समझाया कि ईसामसीह की शिक्षाओं में भी पुनर्जन्म के सन्दर्भ थे, परन्तु परवर्ती काल में चर्च के धर्माचार्यों ने उन्हें अस्वीकार कर दिया था। लैमर्स ने कैसी को समझाते हुए कहा, 'पुनर्जन्म एक तरह से क्रमविकास की प्रक्रिया है। मनुष्य इस पृथ्वी पर असंख्य जन्म ग्रहण करता रहता है। कभी वह पुरुष के रूप में, तो अगली बार स्त्री के रूप में जन्म ले सकता है; कभी एक धर्म में तो अगली बार किसी अन्य धर्म में जन्म ले सकता है; किसी जन्म में धनवान, तो दूसरे में निर्धन हो सकता है। ईसामसीह द्वारा वर्णित पूर्णता की अवस्था में पहुँचने तक मनुष्य क्रमविकास के पथ पर चलता रहता है। मनुष्य ठीक उसी प्रकार अपना शरीर बदलता रहता है, जिस प्रकार अपने हाथों में पहने हुए फटे दस्ताने। शॉपेनहावर, इमर्सन, वाल्ट ह्विटमैन, गेटे, ब्रूनो, प्लोटाइनस और प्लेटो सदृश प्रमुख पाश्चात्य चिन्तकों को पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास था।'

अटलांटिस : जलमग्न होने से पूर्व का संसार

व्यक्ति अपने वर्तमान या आगामी जन्मों में कर्मफल भोगने को बाध्य है। परन्तु कर्म उस गेंद के समान नहीं है, जो दीवार की कठोर सतह से टकराकर तत्काल वापस आ जाती है। कर्म की प्रतिक्रिया तात्कालिक नहीं होती। कैसी का कहना है कि कर्म के प्रभाव प्रकट

होने में कई जन्म लग सकते हैं। समय, स्थान और परिस्थिति अनुकूल होने पर ही कर्म का फल मिलता है। जहाँ आज अटलांटिक महासागर लहरा रहा है, कोई ९,५०० वर्षों पूर्व वहीं एक समृद्ध संस्कृति थी। इस अटलांटिस संस्कृति के महान वैज्ञानिकों ने मानव इतिहास के विगत २०० वर्षों के दौरान पुनः जन्म लिया है। आज का विज्ञान इस अटलांटिस संस्कृति के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहता, परन्तु विख्यात पाश्चात्य दार्शनिक व लेखक प्लेटो इस संस्कृति के अस्तित्व के प्रबल समर्थक थे। भूगर्भीय साक्ष्य भी इस अनुमान का समर्थन करते हैं। अटलांटिक महासागर में टेलीफोन के तार बिछाते समय उन्हें १०,००० फुट नीचे तक ले जाया गया था। जब उन तारों को पुनः ऊपर उठाया गया तो उन पर लावा के कण मिले। वैज्ञानिकों ने लावा-कणों के परीक्षण के बाद पाया कि भूकम्प से पूर्व वे किसी ठोस पदार्थ के भाग रह चुके थे। मध्य अमेरिका और मिस्र की मूर्ति-कलाओं और भाषाओं के बीच साम्य भी इस सभ्यता के अस्तित्व की ओर इंगित करता है। कैसी ने अपनी बात कहने के अनेक वर्षों बाद इग्नोटिमस डोनली का 'अटलांटिस - जलमग्न होने से पूर्व का संसार' नामक शोध-ग्रन्थ पढ़ा। वह अपने कथन और इस पुस्तक के अनेक रहस्योद्घाटनों के बीच साम्य देखकर चकित रह गया। जब इतिहास, विज्ञान, तुलनात्मक धर्म, प्राचीन महाकाव्य, कला तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र के अनेक आधुनिक अनुसन्धानों से उसके कथनों की सत्यता प्रमाणित होने लगी, तो कैसी अपनी सम्मोहन अवस्था के कथनों की सत्यता के बारे में पूर्णतः आश्वस्त होने लगा।

यदि हम कैसी के कथनों पर विश्वास करें, तो अटलांटिस सभ्यता निश्चय ही विद्यमान थी। उसका दृढ़ मत है कि यदि महान पिरामिडों के भीतर के सभी प्रकोष्ठों का परीक्षण किया जाए, तो इस सभ्यता के विषय में साक्ष्य मिल सकते हैं। इसका कारण यह था कि ९,५००

ईसा पूर्व में महान जल-प्रलय में अटलांटिस के डूब जाने के बाद वहाँ के जीवित बचे निवासी अपना सामान लेकर मिस्र चले आए। फ्लोरिडा में स्थित बिमिनी द्वीप अटलांटिस की भूमि का सर्वोच्च पर्वत शिखर था। वह सौर ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए स्फटिक शिलाओं द्वारा निर्मित एक मन्दिर का आधार था। चुनौतीपूर्ण स्वर में कैसी कहता है कि यदि कोई सागर की तलहटी में तलाश करे तो इसके ढाँचे का पता लग सकता है और यह अटलांटिस के अस्तित्व का एक अकाट्य प्रमाण होगा।

विज्ञान-युग का पुनः उदय

कैसी के कथनानुसार अटलांटिस सभ्यता के निवासी हमारी आज की वैज्ञानिक प्रगति की अपेक्षा काफी अधिक उन्नति कर चुके थे। वे वैज्ञानिक शोध और विद्युत्, सौर तथा परमाणु ऊर्जा के क्षेत्रों में बेहतर ज्ञान से सम्पन्न थे। वे रेडियो, टेलीविजन, हवाई जहाज, पनडुब्बी तथा यातायात तथा संचार के साधनों का प्रयोग करते थे। कैसी ने बताया, 'तकनीकी शक्ति ने उन्हें उद्धत बना दिया था और वे अपनी दैहिक इच्छाओं की पूर्ति तथा भौतिकवादी सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए इन शक्तियों का दुरुपयोग करने लगे। वे हजारों लोगों का शोषण करके भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता की प्रतिमूर्ति बन गए। धरती माता उनके पापों के भार को सह नहीं सकीं। वे काँपने लगीं, समुद्र में तरंगें उठीं और भूमि को निगल लिया। इस प्रकार वह महान सभ्यता समुद्र में डूब गई।'।

यदि हम कैसी की बातों पर विश्वास करें, तो इस प्राचीन सभ्यता के लोगों को अपने स्वभाव, कर्म और व्यवहार में अभिव्यक्त बुराई के फल भोगने में कई युगों के समय की जरूरत पड़ेगी। अटलांटिस सभ्यता के लोगों के बारे में कैसी ने जो कहा कि उनमें से अनेक इस युग में पुनः

प्रकट हो गए हैं, यह तथ्य उनके कथन के निहितार्थ को समझने में हमारी सहायता करेगा। अटलांटिस सभ्यता के लोग वैज्ञानिक प्रगति के शिखर तक जा पहुँचे थे, पर उन्होंने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया। यह जानने के लिए कि दुबारा अवसर मिलने पर क्या वे अपनी शक्तियों का रचनात्मक उपयोग करेंगे, उन्हें पुनः वैसी ही सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। अब ऐसे जाँच-पड़ताल करने के अवसर उपलब्ध हैं। इस प्रकार कैसी यह समझाते हैं कि कर्मों के प्रभाव के क्रियमाण होने के लिए किस प्रकार शताब्दियों के समय की जरूरत होती है।

आकाशीय विवरण

यह सब ज्ञान कैसी को कहाँ से मिला? उसने सम्मोहन की अवस्था में प्राप्त ज्ञान के दो स्रोतों का वर्णन किया था। प्रथम था व्यक्ति का अवचेतन मन। यदि कैसी से किसी व्यक्ति के पूर्वजन्मों के बारे में पूछा जाता, तो वह अपनी विशेष शक्ति की सहायता से उस व्यक्ति के अवचेतन मन में झाँक सकता था। हमारे मन द्वारा एकत्रित अनुभव चेतन मन से लुप्तप्राय हो जाते हैं, परन्तु वे अवचेतन मन की गहराइयों में सोये रहते हैं। केवल इस जीवन के ही नहीं, अपितु सभी पूर्वजन्मों के अनुभव, तहखाने के खानों में सावधानीपूर्वक रखे हुए आभूषणों की भाँति अवचेतन मन में प्रसुप्त पड़े रहते हैं। ये अनुभव बहुत भीतर की गहराई में सोये रहते हैं और उन्हें पुनः क्रियाशील बनाना आज के मनोवैज्ञानिकों की क्षमता के परे है। लोग जानते हैं कि न्यूयार्क में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिए यातायात के अन्य साधनों की अपेक्षा भूमिगत ट्रेन अपेक्षाकृत आसान है। कैसी का कहना है कि एक चेतन मन से अचेतन मन की ओर जानेवाले मार्ग की अपेक्षा एक अवचेतन मन से दूसरे अवचेतन मन की ओर जाने का मार्ग कहीं अधिक आसान होता है।

इस व्याख्या को स्वीकार करना कठिन नहीं है। आज के मनोवैज्ञानिक किसी को भी सम्मोहित करके, उससे प्रश्न करके ऐसे विवरण प्राप्त कर सकते हैं, जिसे वे उसकी चेतन दशा में प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। ४० वर्ष का कोई व्यक्ति सामान्यतः अपने बचपन की घटनाएँ याद नहीं रख पाता, पर विशेषज्ञों द्वारा उत्पन्न सम्मोहन की अवस्था में वह बालक की भाँति तोतली बोली तथा सीमित शब्दावली में अपने बचपन की घटनाओं को बता सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि अनुभूतियाँ अवचेतन मन में छिपी रहती हैं। परन्तु कैसी द्वारा वर्णित विवरण का एक अन्य स्रोत विचित्र और रहस्यमय है। सम्मोहित अवस्था में कैसी कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करता था, जिनसे वह जाग्रत अवस्था में अनभिज्ञ था। उनमें से एक था - 'आकाशीय विवरण'। उसने संस्कृत शब्द 'आकाश' की भी व्याख्या की, जो ब्रह्माण्ड की सृष्टि में एक आधारभूत तत्त्व है। यह संरचना में ईश्वर की भाँति वैद्युत-आध्यात्मिक है। सभी आवाजें, प्रकाश-किरणें, गति, विचार, एक फोटोग्राफी फिल्म की तरह इसी में अमूर्त रूप में अंकित रहते हैं। विराट् 'आकाश' ब्रह्माण्ड की सृष्टि के आरम्भ से ही उसकी समस्त घटनाओं का द्रष्टा है। यद्यपि हर व्यक्ति में इन घटनाओं को देखने और वर्णन करने की अन्तर्निहित क्षमता विद्यमान है, तथापि केवल अतीन्द्रिय क्षमता से सम्पन्न लोग ही उसे जान सकते हैं। जैसे अपेक्षित तरंग-दैर्घ्य पर ही रेडियो मिलाया जा सकता है, वैसे ही अपनी इन्द्रियों तथा मन के ब्रह्माण्डीय चेतना के विभिन्न स्तरों से जुड़ जाने पर हम सब कुछ देखने में समर्थ हो जाएँगे। कैसी सम्मोहन-अवस्था में अपनी भौतिक चेतना को दबाकर, अपने अवचेतन मन को ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जोड़ सकता था। इसलिए वह विश्व के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यों को देखकर उनकी व्याख्या कर सकता था।

कारण और कार्य की सुसंगति

कैसी के कथनों का उद्गम चाहे जो भी रहा हो, हम आज भी पुनर्जन्म-विषयक उसके कथनों का परीक्षण करके तदनुसार एक उचित निष्कर्ष पा सकते हैं। १९२३ में पूर्वजन्म-विषयक अपने कथनों की शुरुआत से लेकर १९४५ ई. में अपनी मृत्यु तक कैसी ने पूर्वजन्मों के करीब २५०० मामलों का सन्दर्भ दिया था। ये कथन प्रामाणिक हैं। इन कथनों में उसने लोगों की भौतिक अवस्था तथा अन्य विवरण भी दिए हैं। पूर्व जन्मों के ये वृत्तान्त भी सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखे गए हैं। इन वृत्तान्तों के बारे में जिज्ञासा रखनेवाले लोग आज भी इसे अमेरिका के वर्जीनिया तट पर पा सकते हैं।

कैसी के जीवन के अन्तिम वर्षों के दौरान, असंख्य लोग अपने दुःख-कष्टों से राहत पाने हेतु उससे परामर्श लेने के लिए आने लगे, क्योंकि तब तक उसका नाम दूर-दूर तक फैल चुका था। लोग कैसी से परामर्श हेतु डेढ़ वर्ष की अवधि तक भी अपनी बारी की प्रतीक्षा करने को तैयार थे। अतिशय पीड़ित लोगों के अनुनय-विनय को सुनकर वह करुणार्द्र होकर इनकार करने में असमर्थ रहता। एक ही दिन में आठ-आठ बार सम्मोहन अवस्था में जाकर वह समस्याओं के बारे में बताया करता था। इस कारण उसका स्नायु-तंत्र बुरी तरह प्रभावित हो गया। सतत परिश्रम ने उसे दुर्बल बना दिया था। ३ जनवरी, १९४५ ई. को ६७ वर्ष की आयु में कैसी की मृत्यु हो गई। कैसी का संदेश था - 'जैसा बोओगे वैसा काटोगे।'

कैसी के कथनों से एक बात असन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो गई कि कार्य-कारण का सम्बन्ध भौतिक जगत तक ही सीमित नहीं, बल्कि यह एक ऐसा अपरिहार्य नियम है, जो दार्शनिक-नैतिक जगत में भी व्यवस्थित, पर प्रच्छन्न रूप से क्रियाशील रहता है। मानव-जीवन के

दुःख और संकट संयोग मात्र नहीं हैं। व्यक्ति के जन्म तथा उसकी क्षमताओं के बीच के भेद ईश्वर नामक एक मनमौजी सृष्टिकर्ता की सनक के कारण अथवा वंशानुगत प्रभावों से नहीं होते। यह मुख्यतया व्यक्ति के पूर्वजन्मों में उसके द्वारा किए हुए भले-बुरे कर्मों के द्वारा सुनिश्चित होते हैं। कैसी ने बताया कि सुख-दुःख तथा अन्य प्रतिकूलताओं का उद्देश्य है व्यक्ति के आध्यात्मिक रूपान्तरण की प्रक्रिया के द्वारा उसे पूर्णता के शिखर पर ले जाना।

कर्म : महत्त्व और मूल्य

दुःख और संकटों के जाल में फँस जाने पर लोग प्रायः कहते हैं – ‘हाय, मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया कि मुझे यह दुःख मिल रहा है?’ सदा से ही लोगों में यह विश्वास रहा है कि मनुष्य पर आनेवाले दुःख-कष्ट तथा संकट उसके पूर्वजन्मों के कुकर्मों के परिणाम हैं। जिन लोगों का पालन-पोषण वैज्ञानिक चिन्तन के वातावरण में हुआ है, वे लोग ऐसे विश्वासों को घोर अन्धविश्वास कहकर उड़ा सकते हैं। पर कैसी द्वारा बताये गए असंख्य उदाहरणों से पता चलता है कि इस जीवन के दुःखों और पूर्वजन्मों के दुष्कर्मों के बीच सीधा सम्बन्ध है। यहाँ ध्यान रखने योग्य केवल एक ही बात है कि दुःख का बिलकुल सही कारण समझा नहीं जा सकता।

‘कर्म’ ही एकमात्र ऐसा शब्द है जो दुःख और दुष्कर्मों के बीच सम्बन्ध की व्याख्या करता है। कैसी की उक्तियों में ‘कर्म’ और ‘कार्मिक’ शब्द बारम्बार आते हैं। ‘कर्म’ संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है कार्य। परन्तु भारतीय दर्शन में यह शब्द कार्य-कारण-सम्बन्ध या क्रिया-प्रतिक्रिया की ओर भी संकेत करता है। कर्मवाद घोषणा करता है कि व्यक्ति का जीवन कार्य-कारण-सम्बन्ध के सिद्धान्त द्वारा संचालित होता है। भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन

करनेवाले प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक इमर्सन ने इसे 'क्षतिपूर्ति का नियम' कहा है। 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे' - ईसामसीह के इस उपदेश में भी यही सिद्धान्त निहित है। न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार 'प्रत्येक क्रिया की एक समतुल्य और विपरीत प्रतिक्रिया होती है।' कैसी यथेष्ट प्रमाण देकर सिद्ध करता है कि यह नियम नैतिक जगत पर भी लागू होता है। हम सभी यदा-कदा 'कर्म' शब्द का प्रयोग करते हैं, परन्तु इसकी दुर्बोधता तथा सारगर्भिता सभी युक्तिवादियों के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करती है। कैसी बड़े ही सहज ढंग से हमारे सम्मुख कुछ ऐसी सत्य तथा रोचक घटनाएँ प्रस्तुत करता है, जो कर्म के नियम के संचालन की प्रक्रिया दिखाती हैं। कर्म-सिद्धान्त-विषयक इन असंख्य घटनाओं का अध्ययन करने पर हमें गीता (४.१७) के इस कथन की याद आती है - 'गहनो कर्मणा गतिः' (कर्म की गति दुर्बोध है)। कर्मवाद की गूढ़ बातों को समझने के लिए हम कैसी द्वारा प्रदत्त जीवन-वृत्तान्तों से कुछ ठोस उदाहरणों का अध्ययन करेंगे।

लौटा हुआ कर्म

नख-प्रसाधन द्वारा जीविका-निर्वाह करनेवाली एक महिला की कहानी बड़ी रोचक है। एक वर्ष की आयु में वह बच्चों में होनेवाली एक सामान्य बीमारी, पोलियो, से ग्रस्त हो गयी। उसके दोनों पैर दुर्बल और अशक्त हो गए, जिसके कारण वह ठीक ढंग से चल-फिर नहीं सकती थी। उसे चलने के लिए छड़ी या बैसाखी का उपयोग करना पड़ता था। कैसी से उस बालिका के बारे में पूछा गया। कैसी ने उसके विषय में कर्म के प्रभाव को इस प्रकार समझाया, 'अटलांटिस सभ्यता के दिनों में, अपने एक पूर्वजन्म में इसने मादक-द्रव्यों, टेलीपैथी (दूरबोध) या सम्मोहन के द्वारा अनेक लोगों को

विकलांग बना दिया था। उसने अन्य लोगों को पूर्णतया अपने नियंत्रण में रखा था। उसने अपने पूर्व जीवन में दूसरों को जैसा दुःख दिया, आज वह उसी से पीड़ित है।' कैसी इसी प्रकार के दुःख को 'लौटा हुआ कर्म' कहता है, जिसमें दूसरों के लिए किया गया कोई हानिकारक कर्म, प्रतिक्रिया-स्वरूप उस दुष्कर्म करनेवाले के ऊपर ही लौटता हुआ प्रतीत होता है।

कैसी के विवरणों में 'लौटे हुए कर्म' का एक उदाहरण और है। चालीस-वर्षीय एक महिला अपने बाल्यकाल से ही एक विचित्र रोग से पीड़ित थी। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान इसे 'एलर्जी' कहता है। रोटी और दाल खाने पर वह तत्काल एक प्रकार के दमे तथा बुखार से आक्रान्त हो जाती थी। उसके फलस्वरूप वह लगातार छींकती रहती थी। कुछ वस्तुओं से सम्पर्क होने पर उसके स्नायु अत्यधिक तनावग्रस्त हो जाते और वह तीव्र पीड़ा का बोध करती थी। उसने अनेक चिकित्सकों की सलाह ली, पर सब व्यर्थ गया। यदि वह कभी चमड़े के जूते या चश्मे के प्लास्टिक-रिम का स्पर्श कर लेती, तो उसे भीषण दर्द होने लगता। उसने कैसी से भेंट की और इस भयानक रोग से मुक्त होने का उपाय पूछा। उसने अपने पूर्व जीवन के बारे में कुछ भी नहीं सुना था। परन्तु कैसी की अतीन्द्रिय दृष्टि ने उसके सुदूर अतीत जीवन में किए कर्मों को असन्दिग्ध रूप से प्रकट कर दिया। कभी यह महिला एक केमिस्ट थी। वह दूसरों की शरीर में खुजली उत्पन्न करनेवाले कई प्रकार के रसायनों का उपयोग किया करती थी। वह आज उसी के फल से पीड़ित थी। उसने विविध रसायनों का प्रयोग करके वायु को प्रदूषित करने का प्रयास किया था और इस प्रकार अनेक लोगों को सांस लेने में असमर्थ बना दिया। अब, जिन चीजों से उसने दूसरों को पीड़ा पहुँचायी थी, उन्हीं चीजों के पास पहुँचने पर वह स्वयं अत्यन्त पीड़ित हो जाती थी।

कैसी के मतानुसार भौतिक स्तर पर कर्म का एक अन्य प्रकार है, जिसे वह शारीरिक अंगों से सम्बन्धित कर्म कहता है। ३५ वर्षीय एक व्यक्ति, अपने भोजन के बारे में अति-सावधान रहने पर भी, बदहजमी से पीड़ित था। कैसी के अनुसार अपने पूर्व जीवन में वह लुई तेरहवें के अंगरक्षकों में से एक था। वह एक वफादार सेवक था, परन्तु पेटूपना उसकी कमजोरी थी। अपने एक अन्य जन्म में भी वह फारस में राज-चिकित्सक के रूप में महापेटू था। अतीत के दो जन्मों के पेटूपन की कीमत उसे इस जीवन में चुकानी पड़ रही थी। पिछले जन्मों में भोजन की अनावश्यक बर्बादी की भरपाई अब वह बदहजमी के द्वारा कर रहा था।

प्रतीकात्मक कर्म

एक युवक अपने बचपन से ही रक्ताल्पता (एनीमिया) से पीड़ित था। उसके पिता एक विख्यात चिकित्सक थे। बड़े यत्नपूर्वक उपचार करके भी वे उसे स्वस्थ नहीं कर सके। एक बार जब उन्होंने कैसी से पूछा, तो उन्हें निम्नलिखित उत्तर मिला, 'पाँच जन्मों पूर्व वह पेरू में जन्मा था। एक जमीन के लिए उसने खून-खराबा किया और प्रबल अहंकार तथा क्रूरता दिखाई। वह खून-खराबा करनेवाला व्यक्ति ही आज खून की कमी से पीड़ित है। अब उसका शरीर अपने पूर्वकर्मों का युद्धस्थल बन गया है।' कैसी का कहना है कि कुछ मामलों में व्यक्ति के शरीर का एक अंग कर्म का प्रतीकात्मक रूप लेकर दुःख भोगता है। यह कर्म 'प्रतीकात्मक कर्म' कहलाता है।

क्रिया और प्रतिक्रिया के तीन क्षेत्र

व्यक्ति मुख्यतः तीन क्षेत्रों में अपनी इच्छा को आरोपित करता है - प्रथम, स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में विभाजित उसका अपना शरीर।

सूक्ष्म शरीर पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच कर्मेन्द्रियों, पंच महाभूतों और असंख्य संस्कारोंवाले मन से बनता है। द्वितीय, समस्त बाह्य भौतिक परिवेशों से युक्त उसका प्राकृतिक पर्यावरण और तृतीय, उसका सामाजिक पर्यावरण अर्थात् उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी व्यक्ति।

कैसी आत्मा को अमर सत्ता मानता है। व्यक्ति के भौतिक स्वरूप को 'अस्ति' या सत्ता कहा जाता है। यहाँ पर हम इसे जीवात्मा कहेंगे। यह देहधारी आत्मा या जीवात्मा तीन प्रमुख क्रियाक्षेत्रों से घिरी रहती है - उसका अपना शरीर, भौतिक जगत और अन्य मानव। देहधारी आत्मा के कार्य इन क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं। इसके फलस्वरूप इन क्षेत्रों में प्रतिक्रियाएँ उठती हैं और वे जीवात्मा को प्रभावित करती हैं।

इस प्रकार पेटूपन रूप क्रिया की प्रतिक्रिया इसी या किसी अन्य जन्म में पाचन-तंत्र की दुर्बलता या बदहजमी के रूप में होती है। यदि वह प्राकृतिक शक्तियों से सहयोग करता है, तो प्रकृति से होनेवाली प्रतिक्रिया उसे उन्नत और समृद्धि की ओर ले जाती है। और प्रकृति के विरुद्ध कार्य करने पर उसे दण्ड मिलता है। समाज के प्रति दिखाई गई क्रूरता की प्रतिक्रिया उसे किसी-न-किसी रूप में पीड़ित कर सकती है। कैसी के विवरणों में इसके समर्थन में प्रचुर उदाहरण उपलब्ध हैं।

विभिन्न जीवात्माओं द्वारा विभिन्न अवस्थाओं में प्राप्त कर्मफलों के अनुभवों के विभिन्न प्रकारों को समझने के लिए हम टेनिस के खेल का उदाहरण लेते हैं। एक मैदान में दो खिलाड़ी टेनिस खेल रहे हैं। मान लीजिए समय पूरा होने पर दोनों ने पाँच पाँच अंक प्राप्त कर लिए हैं। वे खेल बन्द करके मैदान छोड़कर जा सकते हैं। परन्तु थोड़ी देर विश्राम करने के बाद उनमें फिर खेलने की इच्छा जाग सकती है। तब वे किसी अन्य मैदान में जाकर अपना खेल जारी रख सकते हैं। मैदान बदलने के बाद भी पिछले मैदान में अर्जित अंकों के आधार पर

खेल आगे चलता रहता है। पिछले मैदान के खेल में अर्जित अंकों के आधार पर उनका खेल जारी रखना उतना ही सत्य है, जितना कि उनका इस नए मैदान में खेलना। पिछले शरीर में प्राप्त अंकों का योग साथ लेकर जीवात्मा नये शरीर में प्रवेश करती है। इस प्रकार पुनर्जन्म के माध्यम से जीवात्मा का क्रमविकास जारी रहता है।

कर्म वापस लौट आते हैं

कैसी का कहना है कि कर्मों के लिए मन की आनुवंशिक अभिव्यक्ति में ग्रन्थियाँ ही केन्द्र-बिन्दु हैं। उसके द्वारा दिए गए कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

१. अपने मोटापे से दुःखी होकर एक युवती ने कैसी से अपनी दशा के बारे में पूछा। कैसी ने कहा, 'दो जन्मों पूर्व तुम रोम में एक प्रसिद्ध पहलवान थी। मोटापे के कारण जो लोग तुम्हारी जैसी तीव्र गति से नहीं दौड़ पाते थे, तुम उनका मजाक उड़ाया करती थी। अब तुम स्वयं इसीलिए इतनी मोटी हो, ताकि पुनः उसी प्रकार लोगों को कष्ट न पहुँचा सको।'

२. एक महिला की हालत बड़ी दुःखदायी थी। वह अपने पूर्व जीवन में एक फ्रांसीसी कान्वेंट स्कूल में अध्यापिका थी। बच्चों की बालसुलभ शरारतों तथा गलतियों को स्वाभाविक मानने और उनके व्यवहार को धैर्यपूर्वक सुधारने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने के बजाय, वह बच्चों को निर्ममतापूर्वक दण्ड दिया करती थी। वर्तमान जीवन में उसे अति-ग्रन्थीय-सक्रियता की बीमारी हो गई, जिसके फलस्वरूप उसे अनियंत्रित रक्तस्राव होने लगा। इस कारण महीने में पन्द्रह दिन उसे बिस्तर पर ही लेटे रहना पड़ता था। वह अपना कार्य जारी नहीं रख सकी और उसे आजीवन दुःख भोगने पड़े थे। यद्यपि बड़ी मुश्किल से उसके विवाह की व्यवस्था हुई, तथापि जल्दी ही

तलाक भी हो गया। फिर उसे सुरापान की लत लग गई और अन्ततः उसने स्वयं ही अपना प्राणान्त कर लिया।

३. एक बीस-वर्षीय क्रोधी युवक था। कैथोलिक ईसाई मत के उसके वयोज्येष्ठ लोगों ने उससे पादरी बन जाने का अनुरोध किया था। परन्तु पादरी का जीवन उसे रुचिकर नहीं लगा। दूसरी ओर उसका मन प्रबल रूप से समलैंगिकता की ओर आकृष्ट हो गया था। कैसी से सलाह लेने पर उसने बताया, 'अपने अतीत जीवन में तुम फ्रांसीसी दरबार में थे और तुमने कई दरबारियों के समलैंगिक जीवन का पर्दाफाश किया था। उस समय तुमने दूसरों के दोषों की निन्दा करने में रसास्वादन किया था। तुमने अपनी कार्टून बनाने की कला का उपयोग पूर्णतया इसी उद्देश्य के लिए किया था।' कैसी कहते हैं, 'इसलिए दूसरों की निन्दा मत करो, ताकि तुम्हारी निन्दा न हो। क्योंकि जिस मानदण्ड से तुम दूसरों को मापते हो, बाद में उसी से तुम्हें भी मापा जाएगा। दूसरों में तुम जिस दोष की निन्दा करते हो, वही दोष तुममें आ जाएगा।'।

कैसी बारम्बार कहते हैं कि दूसरों के दुःखों को समझने की चेष्टा किए बिना, अपनी धर्म-संस्कृति तथा ज्ञान का अतिशय अहंकार गम्भीर प्रतिक्रिया पैदा करेगा। उदाहरणार्थ -

४. सेना के एक २७ वर्षीय लेफ्टीनेंट के मन में प्रबल हीन-भावना आ गई थी। वह सर्वदा संशयग्रस्त रहता था। अपनी स्नायविक दुर्बलता का कारण ढूँढ़ पाने में असमर्थ होकर वह कैसी के पास गया। कैसी ने कहा, 'यह व्यक्ति अपने विगत जीवन में एक साहित्य-समालोचक था। वह अपनी रुचि के विपरीत बातों की कठोर शब्दों में निन्दा करता था। उसने असंख्य लोगों के मन में शंका एवं भ्रम उत्पन्न किया था। अब वह स्वयं अपरिहार्य भ्रम और सन्देह की अवस्था में पड़ा है।'।

संसार में ऐसे अनेक लोग हैं, जो एक सच्चे समालोचक का कार्य करते हैं। अनेक लोग अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और निष्पक्ष समालोचना के नाम पर अपनी सदाशयता का प्रदर्शन और दूसरों की सुस्पष्ट निन्दा में लिप्त रहते हैं। वे अपने सहज दुर्वचन और पर-निन्दा पर कभी लगाम नहीं लगाते। यद्यपि वे दूसरों के विचारों और भावनाओं, आदतों और व्यवहारों तथा रीतियों और कर्मकाण्डों को उचित रूप से समझने की क्षमता नहीं रखते, तथापि वे अकारण निन्दा करके अपने ही अहंकार को पुष्ट करते रहते हैं। वे स्वयं को दूसरे से हर मामले में श्रेष्ठ समझते हुए घृणित और तुच्छ निन्दा में लिप्त रहते हैं। इस अहंकार का फल वे एक अन्य जन्म में और एक अन्य परिवेश में पाएँगे। इसका तात्पर्य यह नहीं कि रचनात्मक आलोचना का कोई महत्त्व नहीं है। पर किसी अन्य व्यक्ति की विफलताओं को बढ़ा-चढ़ाकर देखना और अतिरंजित भर्त्सना में लिप्त रहना निःसन्देह बुरे स्वभाव का ही द्योतक है। कैसी का कहना है कि व्यक्ति को अपने द्वारा बोये गए बुराई के इस बीज का बुरा फल चखना पड़ेगा।

भूल-चूक की त्रुटियाँ

कैसी कहता है कि दूसरों के दुःखों की उपेक्षा करना भी एक प्रकार का पाप ही है। जहाँ सहानुभूति अपेक्षित है, वहाँ सहानुभूति न दिखाना भी एक त्रुटिजन्य पाप है। पीड़ित लोगों की भावनाओं को आघात पहुँचाना, सहायता करने के बजाय उनकी हँसी उड़ाना भी एक पाप है। क्या आप जानते हैं कि ऐसे पाप के क्या फल होते हैं?

साक्ष्य और प्रमाण

१. जन्म से बहरा एक व्यक्ति अपने पूर्वजन्म में सहायता और सम्बल हेतु किए गए अनुरोधों को अनसुना कर देता था।

२. हड्डी की टी.बी. से पीड़ित एक व्यक्ति अपने पूर्वजन्म में आलोचना के कटु शब्दों से दूसरों को चोट पहुँचाता था ।

३. प्रचण्ड दमा से पीड़ित एक व्यक्ति ने अपने पूर्वजन्म में दूसरों के जीवन को कुचल डाला था । उसने कभी ठहरकर यह भी नहीं सोचा कि एक दिन उसे भी कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है । अब वह अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल चख रहा है ।

४. ग्यारह वर्ष का एक बालक २ वर्ष की आयु से ही बिस्तर पर पेशाब करने के असाध्य रोग से ग्रस्त था । उसके माता-पिता ने इस रोग के उपचार के लिए जब कैसी की सलाह ली, तो बालक के कर्म की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि उजागर हो गई । फ्रांस में शुद्धाचारवादियों के युग में वह शाही दरबार में एक मंत्री था । वह सन्दिग्ध चुड़ैलों को तालाब में डुबाए जाते देखकर आनन्द लेता था । इस जीवन में मानो प्रतीकात्मक रूप से, उसे रात्रि के समय अपने ही मूत्र-रूपी तालाब में पड़े रहने का अपमान सहना पड़ रहा था । माता-पिता ने कैसी के सुझावों का अनुकरण किया और उन्हें बालक की स्थिति में क्रमशः सुधार दिखने लगा । रात में जब बालक सोने लगता, तो वे उसके कानों में कहते, 'तुम एक अच्छे बालक हो । तुम सज्जन और दयालु हो । तुम्हें अनेक लोगों को प्रसन्न रखना है । तुम अपने सम्पर्क में आनेवाले हर व्यक्ति की सहायता करोगे ।' माता-पिता ने सप्ताह भर उसे यह सुझाव दिया । ऐसा करने से वह बालक धीरे-धीरे पूर्णतया रोगमुक्त हो गया ।

निराशावादी मत बनो

कर्म का अर्थ हमेशा पाप का कुफल ही नहीं होता । कैसी का दृढ़ मत है कि हम जो कुछ भी करते हैं, उसका फल अवश्यम्भावी है । हमसे सुधार के पथ पर चलने का अनुरोध करते हुए कैसी कहते हैं,

‘चूँकि कर्म का नियम बिना किसी पक्षपात के संचालित होता है, इसलिए जैसे हर दुष्कर्म के लिए दण्ड भोगना पड़ता है, वैसे ही हर सत्कर्म का पुरस्कार भी देर-सबेर मिलता ही है। यदि हम कर्म के नियम को स्पष्ट रूप से समझ लें, तो हमें हताश होने की जरूरत नहीं। प्रतिक्षण हम अपने भविष्य का निर्माण करते हुए भविष्य की घटनाओं का निर्धारण कर रहे हैं।’ इसे और भी स्पष्ट करने के लिए वह निम्नलिखित घटना का विवरण देता है -

अमेरिका में नेल-पालिश के वितरण में लगी हुई कम्पनियों के बीच एक युवती की बड़ी पूछ थी। वे कम्पनियाँ उस युवती के सुन्दर हाथों के छायाचित्र लेने के लिए एक दूसरे से होड़ कर रही थीं। उस युवती ने एक बार अपने विषय में कैसी से पूछा। कैसी की उक्तियों से पता चला कि उस युवती ने अपना पूर्वजन्म एक अंग्रेजी कान्वेंट में अनाथ बच्चों की सेवा में बिताया था। जिस कार्य को बाकी लोग घृणित तथा तुच्छ समझते, उसे वह महिला ईश्वर की सेवा मानकर करती थी। वह नित्य प्रार्थना करती, ‘हे प्रभो, आपने मुझे इस अवस्था में रखा है। मैं आपके लिए ये सब कार्य करूँगी। मुझे शक्ति दीजिए, ताकि मैं पूर्ण समर्पण के साथ अपना कर्तव्य पूरा कर सकूँ।’ उसने नित्य ऐसी प्रार्थना के साथ निष्ठा और समर्पण का जीवन बिताया। कैसी कहते हैं, ‘चूँकि उसने अपना जीवन पूर्णतया बच्चों के शरीर, मन और आत्मा की सेवा में समर्पित कर दिया था, इसलिए उसके शरीर, मन और आत्मा को अप्रतिम सौन्दर्य प्राप्त हुआ।’ प्रत्येक व्यक्ति का शरीर एक शरीरधारी जीवात्मा के व्यक्तित्व के इतिहास की एक कुंजी है।

आनुवंशिकता गौण है

आधुनिक मनोवैज्ञानिक माता-पिता के ‘जीन’ और पर्यावरण को व्यक्तियों के बीच के भेद का कारण मानते हैं। कैसी कहते हैं कि

प्रत्येक मानवीय प्रतिभा की जीन के द्वारा व्याख्या करनेवाले मनोवैज्ञानिक और प्रत्येक रोग की शारीरिक कारणों द्वारा व्याख्या करनेवाले चिकित्सक, मानो भोज में आए उस अतिथि के समान हैं, जो निमंत्रण के लिए मेजबान को नहीं, अपितु खाद्य-पेयों को परोसनेवाले बैरों को ही धन्यवाद देते हैं। कैसी के अनुसार शारीरिक आनुवंशिकता का अस्तित्व है, पर यह मानसिक आनुवंशिकता की सहायक मात्र है।

कैसी का कहना है कि व्यक्ति को अपनी प्रतिभा या मेधा का चरम विकास करने के लिए कई जन्मों तक उद्यम करने की आवश्यकता होती है। वे ठोस प्रमाण देकर समझाते हैं कि साहस, भक्ति, इन्द्रिय-संयम, संगीत में अभिरुचि तथा साहित्यिक उपलब्धियाँ जैसे सद्गुण केवल एक ही जन्म में अर्जित नहीं होते।

एक बैक-प्रबन्धक की बास्केटबाल खेलने में गहरी रुचि थी। उसने रविवार को चर्च जाने की आदत छोड़ दी। उसके समुदाय के लोग उसके इस परम्परा-विरोधी विचारों के लिए उसे दण्डित तथा जाति से बहिष्कृत करना चाहते थे। परन्तु इसके पूर्व वे लोग कैसी से मिले और उन्होंने उनकी सलाह माँगी। कैसी ने उन्हें उसके कई पुराने जन्मों के वृत्तान्त बताते हुए कहा, 'यह बैक-प्रबन्धक अपने चौथे पूर्वजन्म में मिस्र की राजधानी में खजांची था, तीसरे पूर्वजन्म में विदेशी माल के आयात में लगा हुआ एक फारसी व्यापारी था। अपने दूसरे पूर्वजन्म में वह रोम का एक प्रसिद्ध बास्केटबाल का खिलाड़ी था और अपने विगत पूर्वजन्म में वह स्वदेशी उत्पादों के निर्यात और साथ ही निर्धन लोगों की कठिनाइयों तथा परेशानियों को दूर करने हेतु उनकी सहायता करने में तत्पर था।'

बैक-प्रबन्धक के रूप में अपनी वर्तमान भूमिका में वह जरूरतमन्द लोगों को ऋण देकर उनकी मदद करने में रुचि लेता था और बास्केटबाल में भी गहरी रुचि लेता था। यह उसके पिछले जन्मों में अर्जित गुणों का संचित प्रभाव था।

कैसी ने एक प्रसिद्ध अमेरिकी लेखिका के पिछले जन्मों की ओर संकेत किया था। वह अपने पिछले जन्म में एक प्रसिद्ध अभिनेत्री तथा नाटककार थी। अपने द्वितीय पूर्वजन्म में वह मिस्त्र के चर्च में 'मदर' थी। अपने तृतीय पूर्वजन्म में वह एक फीलिस्तीनी परिवार की बहू थी। और अपने चौथे पूर्वजन्म में वह छोटे बच्चों को आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाली एक अध्यापिका थी। (प्रथम जन्म के अनुभव के फलस्वरूप) अपने वर्तमान जीवन में एक लेखिका के रूप में उसने (अपने तृतीय पूर्वजन्म के अनुभवों के कारण) माता और बच्चों के बीच सम्बन्ध और पारिवारिक जीवन की समस्याओं के बारे में लिखा। (अपने द्वितीय पूर्वजन्म के अनुभवों के आधार पर) उसने मिस्त्र के लोगों के जीवन का हृदयस्पर्शी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। यदि उसके साहित्यिक जीवन की पृष्ठभूमि पर विचार किया जाए, तो लगता है कि उसने अपने कई पूर्वजन्मों के अनुभवों को अभिव्यक्त किया था।

कर्तव्य : आध्यात्मिक जीवन का सहायक

कर्म उस आधार-स्तम्भ के समान है, जिस पर व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति के कुछ पहलू विकसित होते हैं। यह किसी निर्माणाधीन भवन की छत को थामने के लिए बाँधे गए मचान के समान है। कोई भी कार्य तुच्छ या हेय नहीं है। व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए कर्म आवश्यक है। भवन का निर्माण पूरा हो जाने पर मचान की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। तब तो वह भवन के सौन्दर्य में बाधा उत्पन्न करता है। व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप का बोध तथा पूर्णता-प्राप्ति के पूर्व तक जीवन-यापन हेतु किसी-न-किसी कार्य का सहारा लेना पड़ता है।

कैसी के मतानुसार किसी आजीविका को अपनाने के पूर्व व्यक्ति को निम्नलिखित बातों पर विचार कर लेना चाहिए -

१. अपने उद्देश्य या लक्ष्य का स्पष्ट बोध रहे ।

२. सेवा का कोई भी अवसर हाथ से न जाने दो । जब कभी दूसरों की सहायता का अवसर मिले, उसे पूरे मन-प्राण से करो । कैसी के इन शब्दों को मत भूलो, 'आप लोगों में से महानतम व्यक्ति सबका सेवक होगा ।' 'दूसरों की सेवा करना ईश्वर की सर्वोच्च सेवा है ।' 'कोई भी कार्य करते समय दूसरों के लिए उपयोगी होने का प्रयत्न करो ।'

३. तेरह वर्ष के एक बुद्धिमान बालक में अनेक प्रतिभाएँ थीं । उसने कैसी से पूछा कि आर्थिक समृद्धि के चरम शिखर पर पहुँचने के लिए उसे कौन-सा कार्य चुनना चाहिए । कैसी ने कहा, 'केवल आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से मत सोचो । कोई ऐसा कार्य चुनो, जिसके द्वारा तुम संसार को अधिकतम योगदान कर सको, जिसके द्वारा यह संसार एक बेहतर स्थान बन सके । केवल धन कमाने की दृष्टि से ही किसी कार्य को मत चुनो । यदि तुम दूसरों के कल्याणार्थ कार्य करने में अपनी शक्तियाँ लगाओगे, तो निश्चय ही तुम यथेष्ट धन कमाने में समर्थ हो सकोगे ।'

४. किसी कार्य को केवल लाभ की दृष्टि से मत देखो । इसको सर्वहित में अपने लघु योगदान के एक अवसर के रूप में देखो । कुछ श्रमिक एक मन्दिर के निर्माण में लगे थे । किसी ने उनसे पूछा, 'तुम क्या कर रहे हो?' पहला श्रमिक बोला, 'क्या तुम नहीं देखते - मैं ईंटें जोड़ रहा हूँ ।' दूसरे ने कहा, 'देखो, मुझे अपना पेट भरना है, इसीलिए मैं यह कार्य कर रहा हूँ ।' तीसरे ने कहा, 'मैं इस पवित्र मन्दिर के निर्माण में योगदान कर रहा हूँ ।' उसके मन में मन्दिर के निर्माण में भागीदार होने की भावना थी, जो ईश्वर के प्रति लोगों की भक्ति के प्रतीक के रूप में स्थायी रूप से बना रहेगा । कैसी कहते हैं, 'हमारे सभी कार्यों का शुभ उद्देश्य विश्व की सुख-समृद्धि होना चाहिए ।' उनकी सलाह है, 'तुम्हारे कर्तव्य-बोध, तुम्हारे समर्पित कर्म

और तुम्हारी ईमानदारी के फलस्वरूप ही आर्थिक सफलता आनी चाहिए। अपने सद्गुणों से अपने जीवन को आलोकित करो और दूसरों के लिए एक उदाहरण बन जाओ।'

५. दूसरों को भी अपने पथ पर अग्रसर होने दो। अपनी उन्नति के शिखर पर चढ़ने के लिए सीढ़ी के रूप में उनका उपयोग मत करो। जीओ और दूसरों को भी जीने दो। दूसरों को कुछ देने की सामर्थ्य अर्जित करो। मृत्यु-पर्यन्त कुछ-न-कुछ रचनात्मक कार्य करते रहो।

६. कोई भी महान कार्य एक दिन में सम्पन्न नहीं होता। गिर जाने पर व्यक्ति जमीन का ही सहारा लेकर फिर खड़ा हो जाता है। उपलब्ध अवसरों का उपयोग करो। तुम जहाँ भी हो, वहीं से आगे बढ़ते जाओ। ईमानदार बनो। कोई भी ईश्वर को धोखा नहीं दे सकता। कैसी का कहना है कि कर्म का नियम अटल और अपरिहार्य है। हजारों मील लम्बी यात्रा भी एक कदम से आरम्भ होती है। महान कार्य सम्पन्न करने के लिए अभी, इसी क्षण, पहला कदम बढ़ाओ।

पारिवारिक जीवन का रहस्य

कैसी कहते हैं कि कोई भी विवाह शून्य से प्रारम्भ नहीं होता। यह बहुत समय पूर्व शुरू हुए धारावाहिक कथा की एक घटना मात्र है। कैसी ने कई जगह बताया है कि विवाह विगत जीवनो के सम्बन्धों की ओर संकेत करता है। विवाह के माध्यम से ही मनुष्य सामंजस्य तथा परिपूर्णता का भाव प्राप्त करता है, जिसे आध्यात्मिक पथ पर प्रगति के मार्ग में सीखना आवश्यक है। पुरुष और नारी के स्वभावों में कुछ भेद होता है और विवाह कुछ लोगों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक हो सकता है।

अपनी स्त्री को पीड़ित करनेवाले पुरुष को एक पत्नी का जीवन पाकर दुःखभोग के द्वारा प्रेम और सहानुभूति का पाठ सीखना पड़ेगा।

अगले जन्मों में लिंग-परिवर्तन का यह भी एक कारण है। एक बाँझ नारी सम्भव है अपने पूर्वजन्म में पुरुष रही हो। कैसी का कहना है कि कई जन्मों तक पुरुष रह चुकी जीवात्मा एक-दो नारी-जन्मों के दौरान गर्भधारण तथा प्रसव की सामर्थ्य नहीं प्राप्त कर सकेगी। वे बताते हैं कि नारी में बाँझपन के कई कारणों में से यह भी एक कारण है।

पिता-पुत्रों के बीच का सम्बन्ध भी कर्म के नियम से मुक्त नहीं है। खलील जिब्रान अपने 'प्राफेट' ग्रन्थ में लिखते हैं, 'तुम्हारे बच्चे वस्तुतः तुम्हारे नहीं हैं। भले ही वे तुम्हारे माध्यम से आए हैं, पर तुम्हारे लिए नहीं आए हैं। यदि तुम धनुष हो, तो तुम्हारे बच्चे उस धनुष से छोड़े गए बाण हैं।'।

अत्यन्त आध्यात्मिक पिता के प्रायः भोगवादी या नास्तिक पुत्र होते हैं। अटलांटिस सभ्यता के काल का कोई ज्ञानी व्यक्ति पूर्णतः निरक्षर माता-पिता की सन्तान हो सकता है। पिछले जन्मों का यह सम्बन्ध ही विभिन्न स्वभाव के बच्चों के जन्म के लिए उत्तरदायी है। उदाहरणार्थ -

१. आपसी स्नेह-प्रेम के साथ रह रहे माता और पुत्र अपने पिछले जन्म में भी माता और पुत्र ही थे।

२. वर्तमान जीवन में सौहार्द्रपूर्वक रह रहे पिता और पुत्र अपने पिछले जन्म में सहोदर भाई या बहन थे।

३. पूर्वजन्म में आपस में कोई सम्बन्ध न रखनेवाले दो व्यक्तियों का जन्म इस जीवन में माता और पुत्री के रूप में हुआ था और उनके जीवन में स्नेह-प्रेम का लगाव नहीं था।

४. एक अन्य मामले में एक माता और उससे हमेशा झगड़नेवाली उसकी पुत्री दोनों ही पूर्वजन्मों में बहनें थीं और बहनों के रूप में भी वे झगड़ती रहती थीं।

५. यदि कोई पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति वफादार नहीं रहते और विवाहेतर सम्बन्ध रखते हैं, तो उन्हें परवर्ती जीवन में इसका फल भुगतना पड़ेगा।

एक महिला ने कैसी से पूछा, 'अपनी वर्तमान परिस्थिति में क्या मैं विवाह कर सकती हूँ?' कैसी की सम्मोहक वाणी ने कहा, 'यदि उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध हो, तो कर सकती हो। तुम दोनों को सहबद्ध रखने के उद्देश्य पर ही तुम्हारे विवाह की सफलता निर्भर करती है।'।

कैसी ने एक अन्य महिला से कहा, 'घर ही सबसे महान कार्यक्षेत्र है। जो लोग घर से दूर भागते हैं, उन्हें इसका फल भोगना होगा। क्योंकि, हर जीव अन्ततः जो कुछ पाने की आशा करता है, यही - एक स्वर्गिक घर ही - उसका निकटतम प्रतीक है। अतः अपने घर को स्वर्ग की प्रतिच्छाया बना दो।'।

बच्चों के बारे में

कैसी कहते हैं कि माता-पिता को अपने बच्चों के प्रति अत्यधिक कड़ाई नहीं बरतनी चाहिए और न ही उन्हें ज्यादा सिर पर चढ़ाकर यथेच्छाचार की छूट देनी चाहिए।

एक अति धनाढ्य व्यक्ति बड़ा अहंकारी था। वह अपनी पुत्री से तनिक भी प्रेम नहीं करता था। वह पुत्री एक दुर्घटना में मारी गई और पुनः उसी व्यक्ति की पुत्री के रूप में जन्मी। इस घटना के द्वारा उस व्यक्ति का अपरिपक्व प्रेम पूर्णतः विकसित हो सका था। कैसी का कहना है कि आध्यात्मिक विकास के लिए ऐसी घटनाएँ आवश्यक हैं।

कुछ ऐसे मामलों में, जिनमें किसी माता-पिता के बच्चे अन्धे, पंगु या किसी अन्य प्रकार से विकलांग थे, पिछले जन्म में भी वे ही उनके बच्चे थे और उन्होंने उनके साथ दुर्व्यवहार किया था। अपने

स्वार्थ के कारण वे अपने ही बच्चों के जीवन में बाधक बन गए थे । अब उन्हें अपने कर्मों का फल भोगना पड़ रहा था ।

नवजात शिशुओं को खोनेवाले या मृत शिशु को जन्म देनेवाले माता-पिता के बारे में विचारपूर्वक कैसी ने कहा था, 'वह जीवात्मा पैदा हुई, पर कुछ समय ही संसार में रहकर चली गई, ताकि माता-पिता दण्ड तथा पश्चात्ताप का अनुभव करके अपने बच्चे की मृत्यु-रूपी दुःखाग्नि में पवित्र हो जाएँ ।

संयोग से होनेवाले दुर्भाग्य

सब कुछ कर्म की सीमा के अधीन नहीं है । और यह भी सच नहीं है कि मनुष्य कर्म करने को स्वाधीन नहीं है । खूँटे में रस्सी से बँधी हुई गाय की भाँति मनुष्य की स्वाधीनता सीमित है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य इस स्वाधीनता का उपयोग किस प्रकार करता है । मनुष्य जितना अधिक स्वार्थी होगा, उसकी स्वाधीन इच्छा का दायरा उतना ही संकुचित होगा । कैसी यह भी कहते हैं कि जीवन की सभी घटनाएँ कर्म से सम्बन्धित नहीं होतीं । प्रकृति में भी दुर्घटनाएँ हो सकती हैं । यहाँ दो उदाहरण दिए जाते हैं -

१. जन्मजात बहरी और बाद में एक आँख से कानी हुई एक १० वर्षीय बालिका के बारे में कैसी ने कहा कि उसकी विकलांगता उसके कर्म के कारण नहीं हुई थी । उन्होंने कहा, 'एक अस्पताल में एक नर्स द्वारा लापरवाही से उसकी आँख में जीवाणुरोधक (एंटीबायोटिक) औषधि डालने से बालिका को कष्ट उठाना पड़ा था ।' उन्होंने बताया कि उस नर्स को अपनी लापरवाही का परिणाम भुगतना पड़ेगा ।

२. प्रसव के दौरान चिकित्सक ने शिशु का सिर चिमटे से इतनी जोर से दबाया कि बालिका का स्नायु-तंत्र क्षतिग्रस्त हो गया और उसे शेष जीवन मानसिक विक्षिप्तता का दुःख भोगना पड़ा । परन्तु

चिकित्सक की अपनी गलती के फलस्वरूप उसके कर्मफल का भार बढ़ गया ।

नया दृष्टिकोण

एक प्रसिद्ध अमेरिकी मनोवैज्ञानिक ने कहा था कि यदि हम जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन कर लें, तो हमारा जीवन बदल जाएगा । परन्तु दृष्टिकोण कैसे बदला जाए? यदि हम अपने चतुर्दिक व्याप्त चीजों के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लें, अपने आसपास के लोगों और स्वयं अपने सच्चे स्वभाव को जान लें, तो ऐसा परिवर्तन हो सकता है । यद्यपि आज का विज्ञान हमें भौतिक जगत की सैकड़ों चीजों का ज्ञान प्रदान करता है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि यह हमें जीवन के अभिप्राय व उद्देश्य के बारे में बता सकता है । अल्बर्ट आइंस्टीन के 'Out of My Later Years' ('परवर्ती वर्षों के अनुभव') ग्रन्थ के इस कथन पर विचार कीजिए - 'विषयों का ज्ञान जीवन की कुछ जरूरतों की पूर्ति करने के लिए हमें सशक्त उपकरण प्रदान करता है, परन्तु जीवन का चरम सत्य और उसे पाने की व्याकुलता एक अन्य स्रोत से आती है ।'

जीवन का क्या उद्देश्य है? सुख-विलासिता के सारे साधन प्राप्त करना, सर्वोत्तम भोज्य एवं पेय पदार्थों का मजा लेना और बाल-बच्चों का पोषण करना - मात्र ये ही क्या जीवन के उद्देश्य हैं? इससे अधिक क्या और कुछ नहीं है?

मैं कौन हूँ? मैं इस पृथ्वी पर क्यों हूँ? यहाँ से मुझे कहाँ जाना है? क्या मृत्यु के बाद कुछ नहीं रह जाता? मेरे दुःख-कष्टों का क्या कारण है? क्या मेरे तथा अन्य मानवों के बीच कोई सम्बन्ध है? क्या मेरे तथा प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के बीच कोई सम्बन्ध है? क्या ब्रह्माण्ड की नियामक शक्ति और मेरे बीच कोई सम्बन्ध है? संसार में

दृश्यमान वैचित्र्य का क्या अभिप्राय है? यदि हमारा जीवन इन प्रश्नों के उत्तरों द्वारा निर्देशित नहीं होता, तो हम नहीं कह सकते कि हमने जीवन का अर्थ व उद्देश्य समझ लिया है। यद्यपि कैसी के विचार पूर्णतः नवीन नहीं हैं, तथापि वे वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा जीवन पर नवीन प्रकाश डालते हैं। इस दृष्टिकोण को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है -

१. ब्रह्माण्ड की एक नियामक शक्ति है।

२. प्रत्येक आत्मा दिव्य है।

३. जीवन का एक विशेष अभिप्राय और उद्देश्य है।

४. मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है।

५. समग्र मानव-जीवन कर्म और पुनर्जन्म के नियमानुसार संचालित होता है।

६. पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम उस नियम का परिपूरक है।

७. मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। उसकी इच्छा और संकल्प उसके भाग्य का निर्माण करते हैं। हमारे मन में हमारे भविष्य को रूपायित करने की क्षमता है। हमारे जीवन की समस्याओं के समाधान हमारे ही पास हैं।

८. ईश्वर और अपने बीच के सच्चे और शाश्वत सम्बन्ध को समझ लेना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

९. अपने जीवन के आदर्शों व उद्देश्यों को सूत्रबद्ध करो।

१०. इन आदर्शों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ईमानदारी के साथ प्रयास करना चाहिए।

११. हमें बुराई को छोड़कर उत्साही और क्रियाशील होना चाहिए।

१२. हमें धैर्य का पाठ पढ़ना चाहिए और अपने कर्मों का फल भगवान पर छोड़ देना चाहिए।

१३. हमें किसी भी समस्या से जी चुराने की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए। हमें मन, वचन व कर्म से दूसरों के कल्याण में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

कैसी की उपरोक्त बातें हमें अपने जीवन के लिए सुस्पष्ट विचार तथा आदर्श प्रदान करती हैं। इससे उत्पन्न दार्शनिक दृष्टिकोण का आधार है - सृष्टि तथा ईश्वर और मनुष्य के साथ उसके सम्बन्ध की सुव्यवस्थित अवधारणा। सृष्टि, ईश्वर, आत्मा और उनके बीच के सम्बन्ध की सुव्यवस्थित अवधारणा के द्वारा ही सर्वोत्तम रूप से चरित्र का गठन और रूपान्तरण हो सकता है। ईश्वर ही ब्रह्माण्ड की सर्जनात्मक शक्ति हैं - यह स्वीकार किया जाता है। चूँकि इसमें गहन अन्तर्दृष्टि तथा एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण के विकास के द्वारा समस्त विरोधाभासों का समाधान करके केवल प्रतीयमान जगत के स्थान पर परम सत्य को समझने का प्रयास किया जाता है, इसीलिए यह एक धार्मिक दृष्टिकोण है। इस कारण यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण भी है। चूँकि यह दैनन्दिन जीवन की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए व्यावहारिक सूत्र प्रदान करता है, इसलिए हम इसे एक मनोवैज्ञानिक समाधान भी मान सकते हैं।

कैसी के आलेखों में बारम्बार एक ऐसी रहस्यमय शक्ति या सर्जनात्मक शक्ति का उल्लेख आता है, जिसे न साधारण बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है और न ही शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है; पर पवित्र मन से उसकी अनुभूति की जा सकती है। 'रचनात्मक शक्ति' और 'सर्जनात्मक ऊर्जा' शब्दों का प्रयोग वर्तमान वैज्ञानिक युग की सोच के अनुरूप है।

परम सत्य

आधुनिक युग के बुद्धिजीवी, कर्म, सद्गुण, पाप, पुनर्जन्म आदि धारणाओं को अन्धविश्वास के विविध रूप मानते हैं।

केवल हमारे द्वारा उपेक्षा करते रहने से ही क्या उपरोक्त सत्यों का अस्तित्व मिट जाएगा? यदि हम दावा करें कि हम सभी लोग समान हैं, सारे भेद काल्पनिक और शोषण के निमित्त बने हैं, तो क्या इतना करके ही हम लोगों की रुचियों, क्षमताओं तथा बुद्धि में एकरूपता पैदा कर सकते हैं? कर्मवाद के नियम को अस्वीकार करना मानो उस शुतुर-मुर्ग के समान बालू में मुख छिपाना है, जो यह सोचकर आश्वस्त रहता है कि यदि वह शिकारी को नहीं देखता, तो शिकारी भी उसे नहीं देख सकेगा। यदि हम कर्मफल नहीं देख पाते, तो क्या इसका अर्थ यह है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है? कैसी से पूछने पर भी बारम्बार यही उत्तर मिला, 'यह बिलकुल स्पष्ट और निश्चित है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त एक अधपका मिथक नहीं, अपितु एक कठोर सत्य है।'।

निम्नलिखित तथ्य कैसी द्वारा व्यक्त विचारों का समर्थन करते हैं -

१. किसी व्यक्ति के सैकड़ों मील दूर होने पर भी उसकी विशेषताओं का कैसी द्वारा अपनी सम्मोहन अवस्था में प्रदत्त वर्णन तथा विश्लेषण सत्य थे। यह केवल किसी एक व्यक्ति के बारे में ही नहीं, अपितु हजारों लोगों के बारे में भी सत्य था।

२. कैसी ने नवजात शिशुओं और प्रौढ़ लोगों की उन व्यावसायिक क्षमताओं और प्रवृत्तियों के बारे में भविष्यवाणियाँ की थीं, जिनमें उनके परवर्ती जीवन में सफलता मिल सकती थी। कैसी की सभी भविष्यवाणियाँ अक्षरशः सत्य सिद्ध हुईं।

३. मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों की व्याख्या पूर्व जीवन के अनुभवों द्वारा की गई थी।

४. तेईस वर्षों के दौरान कैसी के कथन में विरोधाभास का कोई उदाहरण नहीं मिला था। वे सभी कथन दार्शनिक दृष्टिकोण से विश्वसनीय रहे और हजारों मामलों के विवरण में सत्य प्रमाणित हुए।

५. कैसी द्वारा दी गई उस समय तक अज्ञात ऐतिहासिक व्याख्याएँ परवर्ती काल में, उन तथ्यों के पुनर्परीक्षण के बाद सत्य प्रमाणित हुईं। कैसी की सम्मोहन अवस्था में उसके द्वारा वर्णित लोगों के नामों और स्थानों का सत्यापन किए जाने पर कथित विवरणों और वास्तविकता के बीच कोई विरोधाभास नहीं मिला।

६. जिन लोगों ने रोगों की चिकित्सा; आहार-संयम तथा व्यायाम के विषय में कैसी द्वारा सम्मोहन-अवस्था में दिए गए सलाहों तथा निर्देशों का पालन किया, उनमें कैसी की भविष्यवाणी के अनुरूप ही शारीरिक और मनोवैज्ञानिक सुधार के निश्चित लक्षण दृष्टिगोचर हुए।

७. (कई दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध करनेवाले) कैसी के असंख्य कथनों के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष तर्कसंगत हैं और मनुष्य के मानसिक जीवन के बारे में अब तक के ज्ञात तथ्यों के साथ उनका कोई विरोधाभास नहीं है। कुछ कथनों को समझने के लिए और भी व्यापक शोध की आवश्यकता है।

पुनर्जन्म और कर्मवाद के सिद्धान्तों में हमारे विश्वास के समर्थन में इन बातों को सबल आनुमानिक प्रमाण माना जा सकता है। अपने तीन सुप्रसिद्ध ग्रन्थों में डॉ. जिना सरमिनारा कहते हैं कि सम्मोहन, टेलीविजन, इलेक्ट्रानिक फोटोग्राफी और मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से अगले ५० वर्षों में इन तथ्यों का सही ज्ञान हो सकता है। इन सिद्धान्तों में विश्वास न करनेवाले लोगों सहित सभी को जीना सरमिनारा कृत 'Many Mansions' ('अनेक आवास') नामक पुस्तक पढ़नी चाहिए। कर्म-सिद्धान्त को अविश्वास एवं सन्देह की दृष्टि से देखनेवालों को तो निश्चित रूप से इस पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

यूनिटेरियन ईसाई सम्प्रदाय के एक पादरी, विलियम आर. एल्गर, ने पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को निराधार सिद्ध करने के

प्रयास में अपने जीवन के कई वर्ष लगा दिए। उनका उद्देश्य इन सिद्धान्तों का विरोध करना था, पर अन्ततः वे इनके प्रबल समर्थक बन गए। 'A Critical History of the Doctrine of a Future Life' ('पुनर्जन्म के सिद्धान्त का आलोचनात्मक इतिहास') नामक उनकी प्रसिद्ध कृति उच्च कोटि की विद्वत्ता के लिए बड़ी प्रशंसित हुई। उनका कहना है कि जब गहन चिन्तन, व्यापक अध्ययन और बौद्धिक तर्कों के माध्यम से प्राप्त अन्तर्दृष्टि के द्वारा कर्म तथा पुनर्जन्म की खोज कर ली गई है, तो फिर इन्हें अन्धविश्वास कहकर अस्वीकार करना मूर्खता होगी। उनकी ग्रन्थसूची में पाँच हजार सन्दर्भ-ग्रन्थों के नाम हैं। यह ग्रन्थ पहली बार १८६० में प्रकाशित हुआ। १८८६ में इसका व्यापक रूप से संशोधित दसवाँ पुनर्मुद्रण प्रकाशित हुआ। १९६८ में इसे न्यूयार्क से फिर दो खण्डों में मुद्रित किया गया। लेखक कहते हैं, 'मनुष्य के जीवन में पाई जानेवाली नैतिक असमानताओं की जटिलता, ईश्वर के संसार में भेद-वैचित्र्य और मानवता को पीड़ित करनेवाली अनन्त प्रकार की कठिनाइयों के लिए केवल पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही आश्चर्यजनक व्याख्या प्रस्तुत करता है।'।

अध्याय ५

प्रार्थना से कायाकल्प

ईश्वर में अटल विश्वास चमत्कार कर सकता है। ऐसा भक्त सर्वसमर्थ होता है। ऐसे विश्वास के अभाव में मनुष्य निर्बल ही बना रहता है। निःसन्देह, विश्वास जीवन है और अविश्वास मृत्यु।

— श्रीरामकृष्ण

आत्मा का स्वरूप जान लेने पर दुर्बलतम, अधमतम और घृणित पापी के लिए भी आशा जाग उठती है।

— स्वामी विवेकानन्द

माँगो और तुम्हें दिया जाएगा। खोजो और तुम पाओगे। दरवाजा खटखटाओ और वह तुम्हारे लिए खुल जाएगा।

— बाइबिल

मैं उन लोगों के हृदयों में निवास करता हूँ, जो मेरे लिए बड़े व्याकुल रहते हैं।

— कुरान

प्रार्थना का उद्देश्य हमारे अन्तर की गहराई में स्थित दिव्यता को जाग्रत करना है। प्रार्थना के प्रभाव का बोध कर लेनेवाला व्यक्ति लगातार कई दिनों तक निराहार भले ही रह ले, पर प्रार्थना के बिना पल भर भी जीवित नहीं रह सकता। प्रार्थना उसके जीवन की साँस होती है।

मनुष्य को प्रार्थना की उतनी ही जरूरत है, जितनी रोटी की। जैसे शरीर के लिए भोजन जरूरी है, वैसे ही आत्मा के लिए प्रार्थना। मुझे इस बात में लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि सच्ची प्रार्थना की भावना के अभाव में ही आज हमारा परिवेश संघर्ष और विवादों से इतना परिपूर्ण है। सच्ची प्रार्थना कभी अनुत्तरित नहीं रहती। मन प्रार्थनाशील विचारों से पूर्ण रहे, तो संसार की सभी चीजें अच्छी तथा अनुकूल प्रतीत होती हैं। जीवन की उन्नति के लिए प्रार्थना जरूरी है।

— महात्मा गाँधी

ईश्वर से निवेदन

प्रार्थना वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम, ईश्वर में अटल विश्वास रखकर, अपनी आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करते हैं। जैसे हम फोन करके अपने मित्र को अत्यावश्यक सन्देश देते हैं, वैसे ही प्रार्थना के द्वारा हम ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करके अपने हृदय को खोल देते हैं। यह ईश्वर के साथ एक पवित्र संवाद है। प्रार्थना ईश्वर के साथ सीधी बातचीत है। यही प्रार्थना की सार बात है।

इस ब्रह्माण्ड का नियमन करनेवाली, सब कुछ में व्याप्त एक अज्ञात रहस्यमय शक्ति के अस्तित्व के बारे में कोई भी सन्देह नहीं है। वैसे आज ऐसी कोई तकनीक या उपकरण उपलब्ध नहीं है, जो ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध कर सके। इस दृष्टि से विज्ञान की भी अपनी सीमाएँ हैं। परन्तु यह शक्ति अक्षय और अनन्त है। ब्रह्माण्ड के समस्त विस्मयकारी नियमों के संचालक ईश्वर ही हैं। ब्रह्माण्ड की विभिन्न इकाइयों, यथा सूर्य, चन्द्र, तारे, आकाशगंगा, ऋतुचक्र, वायु में ओषजन का अनुपात बनाए रखना और संसार में जल, वायु तथा प्रकाश की यथेष्ट आपूर्ति का नियमन, ईश्वर नामक शक्ति से होता है। यही शक्ति प्रत्येक जीव में जैविक क्रियाओं के लिए भी उत्तरदायी है। हम इस शक्ति को साकार या निराकार मानकर उसकी उपासना कर सकते हैं। हमारी जैविक क्रियाएँ ईश्वर में हमारे विश्वास या अविश्वास पर निर्भर नहीं करतीं। ईश्वर परम दयालु हैं। वे आस्तिकों और नास्तिकों दोनों के ही हृदय में समान रूप से रक्त-संचार करते रहते हैं। एक अपराधी की जैविक क्रियाएँ भी उतनी ही व्यवस्थित तथा सुचारु रूप से चलती हैं, जितनी कि किसी सज्जन व्यक्ति की चलती हैं। पर मन की शान्ति और सच्चा सुख प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर-कृपा पर ही निर्भर है।

ईश्वर शान्ति तथा तुष्टि के विग्रह, आनन्द के भण्डार और सुख के सागर हैं। ईश्वर में अचल विश्वास रखनेवाला व्यक्ति उनकी इच्छा के प्रति आत्मसमर्पण कर देता है और वह कभी परमानन्द से वंचित नहीं रहता। ऐसा भक्त विनम्र बनकर सतत अपने इष्टदेव से प्रार्थना और याचना किया करता है। उसका हृदय सदा प्रार्थनायुक्त तथा कृतज्ञतापूर्ण भावों से भरा रहता है। भगवान् सर्व-शक्तिमान् हैं। उनकी करुणा का कोई अन्त नहीं। भगवान् के द्रवित हो जाने पर सूखे वृक्ष भी खिल उठते हैं और ऊसर भूमि भी उपजाऊ हो जाती है।

ईश्वर को पुकारना

सन्तगण कहते हैं कि सरल तथा निश्छल प्रार्थना से ईश्वर की कृपा प्राप्त करना और मन की बुरी प्रवृत्तियों से छुटकारा पाना सम्भव है। वे घोषणा करते हैं कि ईश्वर-कृपा काल्पनिक नहीं, अपितु अनुभव की बात है। कोई भी साधक, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, अथवा वर्ण का क्यों न हो, व्याकुल प्रयत्न के द्वारा भगवत्कृपा प्राप्त कर सकता है। साधारण साधकों की सिद्धि-प्राप्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गणित के सिद्धान्तों और कार्य-कारण के नियम की सहायता से भौतिक जगत के नियमों की सटीक व्याख्या की जा सकती है, परन्तु भगवत्कृपा का ठीक-ठीक परिमापन नहीं किया जा सकता। प्रार्थना की उपयोगिता तथा भगवत्कृपा के बारे में कोई सन्देह नहीं उठ सकता। यदि कोई भक्त निष्ठापूर्वक भगवान् की कृपा पाने का प्रयत्न करे, तो वह निश्चय ही उसे प्राप्त करेगा। श्री अरविन्द का कहना है कि इसका यह अर्थ नहीं कि कृपा उसे तत्काल प्राप्त हो जाएगी। केवल धैर्यपूर्वक साधना करनेवाले लोग ही भगवत्कृपा प्राप्त करने की आशा रख सकते हैं।

विश्वास, ईश्वरनिर्भरता, अहंशून्यता और समर्पण का भाव ईश्वर की कृपा प्राप्त करने की पूर्व-शर्तें हैं। भगवान् के चरणों में स्वयं को

पूर्णतया समर्पित करने का दावा करनेवाले अधिकांश लोग प्रायः आलस्य में लिप्त और प्रायः पाशविक प्रवृत्तियों से आक्रान्त रहते हैं। सतत प्रयत्न और तीव्र व्याकुलता के द्वारा इन बाधाओं से मुक्त हुए बिना भगवत्कृपा प्राप्त करना असम्भव है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, 'उनकी कृपावायु दिन-रात बह रही है। अपनी-अपनी नाव के पाल उठा दो और उसका सदुपयोग करो।' आलसी और निष्क्रिय नहीं, अपितु समर्थ और उद्यमी लोग ही इससे लाभ उठाते हैं। बुरे तथा कुटिल विचारों से परिपूर्ण और सांसारिक आकर्षणों से प्रदूषित मनवाले लोगों के लिए भगवान की कृपा का कोई उपयोग नहीं है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, 'भगवान उन्हीं पर कृपा करते हैं, जो उन्हें प्राप्त करने हेतु निष्ठापूर्वक प्रयत्न तथा संघर्ष करते हैं। यदि तुम इतने अकर्मण्य हो कि ईश्वर के लिए कुछ नहीं कर सकते, तो निश्चय जानो भगवान तुम्हें कभी नहीं मिलेंगे। कृपा कभी आलसी लोगों को नहीं, अपितु इसके लिए सतत संघर्षरत लोगों को ही मिलती है।' अतः सतत प्रार्थना करते हुए प्रभु के आगमन की व्याकुल प्रतीक्षा उनकी कृपारूपी वायु के लिए अपनी नौका का पाल खोलने के समान है।

प्रार्थना के प्रकार

अभ्यास या साधना, ईश्वर की ओर यात्रा के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। जैसे किसी स्थान पर पहुँचने के लिए विभिन्न मार्ग होते हैं, वैसे ही साधना के भी विविध प्रकार होते हैं। प्रार्थना भी उन्हीं में से एक है। यह व्यक्ति के अन्तःकरण को पवित्र बनाने का एक सरल साधन है। जप, ध्यान, भजन, प्रणाम, स्तोत्र-पाठ, पूजा, अनुष्ठान - ये सभी ईश्वर की ओर जाने के विभिन्न मार्ग हैं।

यदि कोई विद्यार्थी किसी सुयोग्य शिक्षक के निर्देशानुसार परिश्रमपूर्वक अध्ययन करता है, तो सहज ही अच्छे अंकों से परीक्षा में सफल हो

जाता है। वैसे ही, साधु-सन्तों के निर्देशानुसार प्रार्थना की कला सीखना सहज है। जैसे विद्यालय में नियमित उपस्थिति और लगन के साथ अध्ययन सफलता का पथ प्रशस्त करता है, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन में सफलता के लिए नियमित प्रार्थना अत्यावश्यक है।

हम अपने इष्टदेव के चित्र या मूर्ति के सम्मुख खड़े होकर या बैठकर प्रार्थना कर सकते हैं। वैसे अपने हृदय में भगवान की छवि की कल्पना कर सकनेवाले लोगों को प्रार्थना हेतु किसी बाह्य मूर्ति या चित्र की जरूरत नहीं होती। समर्पण, विश्वास और व्याकुलता ही प्रार्थना की अत्यावश्यक शर्तें हैं।

प्रार्थना की चाह रखनेवाले लोगों को भगवन्नाम का सतत जप और अपने इष्टदेव का नियमित पूजन तथा ध्यान करना चाहिए। उन्हें धर्मग्रन्थों और रामरक्षा तथा ललिता-सहस्रनाम जैसे स्तोत्रों का पाठ करना चाहिए। उपवास करके, निरहंकार भाव से विनम्रतापूर्वक भगवान को साष्टांग प्रणाम करके उनकी कृपा के लिए व्याकुल रहना चाहिए। ये साधनाएँ क्रमशः अन्तःकरण को पवित्र बनाकर साधक को ईश्वर-दर्शन कराने में सहायक होती हैं। निःसन्देह यह कोई आसान कार्य नहीं है। इसे एक या दो दिनों में नहीं सम्पन्न किया जा सकता। भगवान की प्राप्ति करने के लिए हमें अविचल व्याकुलता के साथ इस पथ पर अग्रसर होना है।

प्रभु के समक्ष हृदय को खोल देना

मान लीजिए कि आपकी साइकिल के कैरियर पर १०० किलो का एक लौहखण्ड है। इस भार के साथ यदि आप साइकिल पर चढ़ना चाहें, तो क्या होगा? आप गिर जाएँगे। इस भार के साथ साइकिल पर सवार होकर चलने का प्रश्न ही नहीं उठता। हममें से कई लोगों की यही स्थिति है।

निरन्तर प्रार्थना के बाद भी कोई सुफल न पानेवालों के लिए यहाँ एक समाधान है। यदि कुकर्म का भार असह्य हो, तो व्यक्ति की स्थिति उस साइकिल-सवार जैसी है। प्रयत्न जारी रह सकता है, पर परिणाम विलम्ब से मिलेंगे। इस गतिरोध से बाहर कैसे निकलें? संचित कर्म का भार उस लौहभार के समान नहीं है। सूर्योदय के पश्चात् भाप बनकर उड़ जानेवाली ओस की तरह हमारे कुकर्म भी प्रार्थना से नष्ट हो जाएँगे। जैसे घटे हुए भार के साथ साइकिल की यात्रा असानी से होती है, वैसे ही कुकर्म-भार में ह्रास हमें साधना में तेजी से अग्रसर होने में सहायता करता है। कुकर्म के भार को घटाने के लिए प्रार्थना आवश्यक है।

प्रार्थना का मूल तत्त्व - तीव्र व्याकुलता

अहिर्बुध्न्य संहिता (३७.२८) में प्रार्थना से लाभ उठाने के इच्छुकों द्वारा आचरणीय कुछ सदगुणों का इस प्रकार उल्लेख है - 'प्रतिकूल या बुरे विचारों को छोड़कर भले तथा अनुकूल विचारों का चिन्तन, भगवान की तारक शक्ति में विश्वास, सदा ईश्वर के संरक्षण को प्राथमिकता देना, उनमें समर्पण और अपनी निरीहता का भाव।' ईश्वर में पूर्ण समर्पण करके उन्हें अपनी सारी समस्याओं से अवगत कराना चाहिए। ये भगवान के प्रति सच्चे समर्पण की मुख्य विशेषताएँ हैं।

हाँ, ईश्वर में अटल विश्वास ही भक्ति का मूल स्रोत है। सच्ची भक्ति विनम्रता और आत्मसमर्पण की ओर अग्रसर कराती है। फिर यह पूर्ण ईश्वर-निर्भरता की ओर ले जाती है। इसके बाद साधक ईश्वर की प्राप्ति के लिए तीव्र व्याकुलता का बोध करने लगता है। ईश्वर के लिए यह व्याकुलता ही प्रार्थना का सार-सर्वस्व है।

आत्मशुद्धि के एक साधन के रूप में प्रार्थना प्राचीन काल से प्रचलित रही है। 'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु' - सभी लोग सुखी हों।

बृहदारण्यकोपनिषद् का मंत्र है - 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय' - हमें असत्य से सत्य की ओर, अँधेरे से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलिए। उपरोक्त मंत्र तथा बुद्धि-प्रकाशक गायत्री मंत्र इस बात को प्रमाणित करते हैं। परन्तु परवर्ती काल में तर्क और बुद्धिवाद के प्रभाव से प्रार्थना का महत्त्व खो गया। निश्छल प्रार्थना के बजाय लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु कर्मकाण्डों का अनुष्ठान करने लगे। दुर्भाग्यवश, प्राचीन काल के धर्माचार्यगण भी सर्वसाधारण में प्रार्थना की भावना जाग्रत नहीं कर सके। ईसाई और इसलाम धर्म में प्रार्थना का विशिष्ट स्थान है। श्रीरामकृष्ण ने हिन्दू धर्म में भी प्रार्थना की कला को पुनर्जीवित किया। उन्होंने आध्यात्मिक जीवन में प्रार्थना के महत्त्व को पुनर्प्रतिष्ठित किया।

श्रीरामकृष्ण देव ईश्वर के लिए अपनी तीव्र व्याकुलता के बारे में कहा करते थे - 'मेरे हृदय में असह्य पीड़ा होती थी। जलरहित करने के लिए लोग जिस प्रकार बलपूर्वक गीले तौलिए को निचोड़ते हैं, मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता मानो मेरे हृदय को कोई वैसे ही निचोड़ रहा है। प्रतिदिन संध्या के समय, काली मन्दिर की घण्टा-ध्वनि सुनकर मैं पुकार उठता - "माँ, एक दिन और चला गया। तुम कहाँ हो? तुम मेरे पास क्यों नहीं आती? जल्दी आकर मुझ पर कृपा करो, माँ!" पीड़ा से खूब कातर होकर मैं भूमि पर लोटकर कराहता रहता। मेरे लिए हर पल मूल्यवान था। माँ को देखे बिना मेरे लिए जीवन निरर्थक था।' कैसी व्याकुलता थी यह! उन्हीं के शब्दों में, 'तीव्र व्याकुलता भोर के समान है, जो सूर्योदय की सूचना देती है।'।

विनम्र याचना

बलराम बोस कोलकाता के बागबाजार के एक धनी परिवार के थे। दानशीलता इस उतकृष्ट परिवार के रक्त में ही थी। बलराम अपने

बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे शास्त्र-पठन, प्रार्थना और ध्यान में ही अपना समय बिताते। केशवचन्द्र सेन के समाचार-पत्र में उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव के बारे में पढ़ा था और उनसे मिलने दक्षिणेश्वर आए थे। कमरे में भीड़-भाड़ होने के कारण बलराम को अपना परिचय देने का अवसर नहीं मिला और वे एक कोने में बैठकर ठाकुर की बातें सुनते रहे। श्रीरामकृष्ण कह रहे थे, 'हार्दिक व्याकुलता के बिना भगवान का दर्शन नहीं हो सकता और भोग-वासना समाप्त हुए बिना व्याकुलता असम्भव है। जो लोग "काम-कांचन" से घिरे हैं और जिनकी भोग-वासना पूरी नहीं हुई है, वे भगवान के लिए व्याकुल नहीं होते।'।

जलपान करने के लिए जब ब्राह्मसमाजी लोग कमरे से बाहर चले गए, तब श्रीरामकृष्ण ने बलराम की ओर उन्मुख होकर कहा, 'तुम कुछ पूछना चाहते हो क्या?'

बलराम - 'हाँ, महाराज, ईश्वर क्या सचमुच हैं?'

श्रीरामकृष्ण - 'निश्चय ही हैं।'।

बलराम - 'क्या कोई उन्हें देख सकता है?'

श्रीरामकृष्ण - 'हाँ, ईश्वर उस भक्त के समक्ष प्रकट होते हैं, जो उन्हें अपना प्रिय-स्वजन मानता है। एक बार भगवान से प्रार्थना करके कोई उत्तर न मिलने पर यह निष्कर्ष-नहीं निकाल लेना चाहिए कि वे हैं ही नहीं।'।

बलराम - 'परन्तु इतनी प्रार्थना करने के बाद भी मैं उन्हें क्यों नहीं देख पाता?'

श्रीरामकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा, 'क्या सचमुच ही तुम ईश्वर को अपनी सन्तानों के समान ही प्रिय मानते हो?'

बलराम ने स्वीकार किया, 'नहीं महाराज, मैंने ईश्वर के लिए कभी इतने आकर्षण का बोध नहीं किया।'।

तब ठाकुर ने आश्वासन के स्वर में मधुर वाणी से कहा, 'भगवान को अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय समझकर उनसे प्रार्थना करो। मैं तुमसे सच कहता हूँ - उन्हें अपने भक्त अत्यन्त प्रिय हैं। वे भक्तों को निश्चित रूप से दर्शन देते हैं। कभी-कभी तो वे ढूँढ़ने के पहले ही मिल जाते हैं। यदि कोई भगवान की ओर एक कदम आगे बढ़ता है, तो वे उसकी ओर दस कदम बढ़ाते हैं। भगवान से अधिक आत्मीय और प्रिय दूसरा कोई भी नहीं है।'

बलराम बड़े प्रभावित हुए। ठाकुर का हर शब्द उनके हृदय में घर कर गया। उनकी प्रार्थना की तीव्रता बढ़ती गई। उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन में बड़ी उपलब्धियाँ कीं।

स्वामी ब्रह्मानन्द कहते हैं, 'तीव्र व्याकुलता और सच्चे हृदय के साथ भगवान से प्रार्थना करो। भगवान को स्पष्ट बता दो कि तुम केवल उन्हीं को चाहते हो। सन्देह बिल्कुल मत करो, ईश्वर निश्चय ही विद्यमान हैं। विनम्र लोगों पर निश्चय ही उनकी कृपा होगी। भक्ति और बालसुलभ विश्वास के साथ उनसे प्रार्थना करने पर वे निश्चय ही दर्शन देंगे। पुरानी भूलों को याद कर-कर के और यह सोचकर कि बहुत दिनों तक भगवच्चिन्तन नहीं कर सके - चिन्तित मत होना। वे दयामय हैं, तुम्हारी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देंगे। बाल-सुलभ सरलता से उन्हें पुकारो। वे तुम्हें अपनी गोद में उठा लेंगे। पर बाल-सुलभ विश्वास के बिना कोई भी ईश्वर का दर्शन नहीं पा सकता।'

ईश्वर तुम्हारी प्रार्थना का उत्तर देंगे

श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में आश्रयप्राप्त उनके एक शिष्य थे स्वामी अद्भुतानन्द। वे श्रीरामकृष्ण देव की ज्ञानगर्भित बातें सुनते और निष्ठापूर्वक उनकी सेवा करते थे। मूलतः वे एक ग्रामीण बालक थे, परन्तु त्याग, तपस्या, आत्मसमर्पण और ठाकुर के प्रति भक्ति में

वे किसी से कम नहीं थे। उनकी आध्यात्मिक सिद्धि भी उनके नाम के समान ही 'अद्भुत' थी। श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के पश्चात् उन्होंने अपना सारा समय प्रार्थना और ध्यान में बिताया। वे शास्त्रों के तत्त्व की सुस्पष्ट व्याख्या करने में सक्षम थे। इन सिद्ध महात्मा की बातें परम संशयग्रस्त अज्ञेयवादियों के भी मन के सन्देह को मिटाकर उसमे भगवद्भक्ति भर देती थीं। अपने जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने पुण्यतीर्थ काशी में बिताए थे।

स्वामी अद्भुतानन्द एक दिन कुछ भक्तों को ईश्वर और आध्यात्मिक जीवन के बारे में बता रहे थे। सहसा वे मौन हो गए। उन्होंने एक विशेष दिशा की ओर देखा और बोले, 'अरे, तुम वहीं से प्रणाम कर रहे हो! मैंने तुम्हें यहाँ आने को कहा था। कोई बात नहीं!' फिर वे पूर्ववत् बातें करने लगे। भक्तगण विस्मित होकर बोले, 'महाराज, आपने किसे सम्बोधित किया?' स्वामी अद्भुतानन्द ने कहा, 'अरे, मैं कोलकाता के उस भक्त को उत्तर दे रहा था।' इतना कहकर उन्होंने पूरी कहानी बता दी -

कुछ दिन पूर्व कोलकाता के एक भक्त अपने व्यवसाय के सिलसिले में वाराणसी आए थे। वे अद्भुतानन्द जी से मिले, उन्हें प्रणाम किया और कहा कि वापस लौटने के पूर्व वे पुनः मिलने आएँगे। पर अप्रत्याशित कारणों से उन्हें सहसा ही लौटना पड़ रहा था। वे वहाँ से लगभग ४ मील दूर स्थित रेलवे स्टेशन से ही अद्भुतानन्द जी को अपना मानसिक प्रणाम निवेदित करते हुए अपने वचन-भंग की त्रुटि के लिए क्षमा माँग रहे थे। इधर अपने शिष्यों से बातचीत कर रहे स्वामी अद्भुतानन्द ने उस भक्त की प्रार्थना सुनकर उसका समुचित उत्तर दिया था। भक्त की सरल पुकार सुनी जाती है और उसका उत्तर मिलता है - इस बात को प्रमाणित करने के लिए क्या और भी कुछ कहना होगा?

बनारस में विभूति बाबू नामक एक सज्जन एक दिन कुछ वयोज्येष्ठों के साथ बातचीत के दौरान विश्वनाथ मन्दिर के बारे में अवज्ञापूर्ण स्वर में बोले, 'क्या कहा ! भगवान शिव वहाँ रहते हैं? यह मात्र एक भ्रम और अन्धविश्वास है।' शाम को वे स्वामी अद्भुतानन्द के दर्शनार्थ गए। उनके वहाँ पहुँचते ही स्वामी अद्भुतानन्द गरज पड़े, 'कैसी मूर्खता है ! भगवान विश्वनाथ के अस्तित्व की अनुभूति करने के लिए तुमने कौन-सी साधनाएँ की हैं? क्या ईश्वर की अनुभूति के लिए अपेक्षित पवित्रता और व्याकुलता तुममें है?' विभूति बाबू भौचक्के रह गए। उन्होंने अपनी सन्देहपूर्ण उक्ति के लिए खेद व्यक्त करते हुए विनम्रतापूर्वक अद्भुतानन्द जी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी अद्भुतानन्द तब मुस्कुराते हुए बोले, 'विश्वनाथ मन्दिर में जाओ और पूजा-अर्चना करके प्रसाद ले आओ।'।

इस प्रकार भगवान के चरणों का स्पर्श पा चुके सन्त ने दूरस्थ भक्त की प्रार्थना को सुन लिया और एक अन्य व्यक्ति के संशय को समझ लिया। तो फिर क्या सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर हमारी प्रार्थनाओं को नहीं सुनेंगे? क्या वे भक्त की पुकार अनसुनी कर देंगे?

स्वामी अद्भुतानन्द ने कहा था, 'निश्चय ही वे हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर देंगे।'।

उन्होंने एक भक्त को जगन्नाथ-पुरी का अपना अनुभव इस प्रकार बताया था, 'इस मन्दिर में सर्वत्र भगवान विद्यमान हैं। भक्तों की भक्ति-भावना के अनुरूप भगवान उन पर कृपा करते हैं। मैंने भी निश्छल भाव से प्रार्थना की थी, "हे प्रभो, मुझे अपना वह दिव्य-चिन्मय रूप दिखा दीजिए, जिसे देखकर श्रीचैतन्य देव हर्षातिरेक से अश्रुपात किया करते थे।"' प्रभु ने मेरी यह प्रार्थना सुनी। वे हमारी सभी प्रार्थनाएँ सुनते हैं।'।

स्वामी अद्भुतानन्द बोले, 'हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं, परन्तु क्या हम कभी भगवान को भी ठग सकते हैं?' उन्होंने आगे कहा, 'ईमानदारी, निःस्वार्थता और सज्जनता ही किसी व्यक्ति को अध्यात्म-राज्य में प्रवेश करने की योग्यता प्रदान करते हैं।' वे कहते, 'निःस्वार्थ भाव से परोपकार हेतु प्रयत्नशील लोग ईश्वर की कृपा प्राप्त करते हैं।'।

श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, 'भगवान चींटी तक की पग-ध्वनि सुन सकते हैं, तो क्या वे हमारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे?' तुम्हारी व्याकुलता तीव्र हो जाने पर वे निश्चय ही तुम्हारी पुकार सुनेंगे।

नेत्रज्योति वापस मिल गई

पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर जिले के बालीतक ग्राम में चितरंजन मोहन्ती रहते थे। वे बी. ए. (आनर्स) की उपाधि प्राप्त करके वासुदेवपुर में अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। १९६८ ई. में उन्हें टायफाइड हो गया, जिससे वे अन्धे हो गए। इसके बाद उन्हें वह नौकरी छोड़ देनी पड़ी। चिकित्सा का खर्च चुकाने के लिए उन्हें अपनी छोटी-सी सम्पत्ति भी बेच देनी पड़ी। अन्य कोई विकल्प न देख उन्हें अपना पैतृक गाँव छोड़कर भिक्षाटन से जीवन-निर्वाह करने हेतु सुदूर उड़ीसा के बालासोर जिले में जाना पड़ा। १९६९ ई. में श्रावण मास में ६ दिनों तक उन्होंने चन्दनेश्वर मन्दिर में प्रार्थना की। अन्तिम रात भगवान शिव उनके स्वप्न में प्रकट होकर बोले, 'तुम अपने पूर्वजन्म में अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। एक दिन जब तुम्हारी माँ हर-गौरी पूजन की तैयारी कर रही थी, तो लापरवाहीवश तुम्हारा पाँव पूजन-सामग्री पर पड़ गया। इस पर तुम्हारी माँ ने क्रोधपूर्वक तुम्हें शाप देते हुए कहा था, "इतने प्रकाश में भी तुम पूजन-सामग्री नहीं देख पाते। तुम अन्धे हो जाओ।" तुम्हारे पूर्वजन्म के माता-पिता अब

इस बालासोर जिले के बामपदा में हैं। अब वे गणनाथ बेहरा और लक्ष्मी देवी के नाम से जाने जाते हैं। शिवरात्रि के शुभ दिन बामपदा के पास के जरीश्वर मन्दिर के सरोवर में स्नान करो और उसी के जल से गणनाथ बेहरा के घर में हर-गौरी पूजन करो। वे दोनों तुम्हें स्पर्श करें। इससे तुम्हारी नेत्र-ज्योति लौट आएगी।'

चितरंजन ने भगवान शिव के कथनानुसार कार्य करने हेतु अन्य लोगों की सहायता ली। इसलिए बहुत-से लोग इस घटना के बारे में जान गए। शिवरात्रि के दिन उन्होंने मन्दिर के सरोवर में स्नान करके पूरी भक्ति के साथ हर-गौरी का पूजन किया। उनका पूजन देखने के लिए हजारों लोग जुट गए। सबके समक्ष ही बेहरा दम्पति ने चितरंजन को स्पर्श करके आशीर्वाद दिया। और इसके साथ ही उनकी नेत्रज्योति वापस आ गई। भगवान की कृपा को कौन समझ सकता है!

लोगों ने भक्तिभाव से अभिभूत होकर दो दिनों तक वहाँ हर-गौरी उत्सव मनाया और हर-गौरी मन्दिर बनवाने का भी संकल्प लिया। गणनाथ बेहरा और उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी ने चन्दनेश्वर में मन्दिर में जाकर विशेष प्रार्थनाएँ कीं। गणनाथ बेहरा उड़ीसा सरकार के लोक-निर्माण विभाग में एक कर्मचारी थे। उनके माध्यम से नेत्रज्योति लौटने की इस चमत्कारिक घटना का विवरण उड़िया साप्ताहिक 'राष्ट्रदीप' के २१ अप्रैल १९७० के अंक में प्रकाशित हुआ। 'द टुथ' नामक अंग्रेजी अखबार में भी यह घटना प्रकाशित हुई। यहाँ पर इसे कोटा वसुदेव कारन्थ द्वारा लिखित कन्नड़ ग्रन्थ 'ईश्वर में विश्वास करो' से उद्धृत किया गया है। इस पुस्तक में ऐसी अनेक घटनाएँ वर्णित हैं।

हमारे शास्त्र बताते हैं कि हमें अपने वचन और कर्म से किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। माँ के अभिशाप से होनेवाली वह त्रासदी सबके लिए एक सबक है। ईश्वर में विश्वास रखने के कारण चितरंजन

उन्हीं की कृपा से अपनी नेत्रज्योति वापस पा सके थे। उनकी भक्ति ने उन्हें भगवत्कृपा के साथ-ही-साथ नेत्रज्योति भी प्राप्त कर दी।

एक बार एक व्याख्यान के दौरान श्रोताओं के समक्ष मैंने इस घटना का वर्णन किया। सभा समाप्त होने के बाद उच्च सरकारी पद पर सेवारत एक हरिजन श्रोता ने मुझसे मिलकर अपना एक ऐसा ही अनुभव मुझे बताया। उनकी भी नेत्रज्योति चली गई थी और चिकित्सकों ने उन्हें अन्धा जानकर उनकी चिकित्सा बन्द कर दी थी। परन्तु उस व्यक्ति ने इस निराशाजनक परस्थिति में भी निरन्तर दो वर्षों तक भगवान से प्रार्थना की और उनका अन्धापन चमत्कारिक रूप से जाता रहा। उनकी आन्तरिक प्रार्थना और धैर्य बड़े प्रेरणादायी थे।

चलते रहो, चलते रहो

एक बार अर्धेड़ आयु के एक सज्जन श्रीरामकृष्ण से मिलने आए। उनका ईश्वर से विश्वास प्रायः उठ चुका था। उन्होंने श्रीरामकृष्ण से कहा, 'इस समय मेरी आयु ५५ वर्ष की है। पिछले १४ वर्षों से मैं भगवान की खोज में लगा रहा। मैंने श्रद्धापूर्वक अपने गुरु के निर्देशों का पालन किया। मैंने तीर्थयात्रा की, असंख्य साधु-सन्तों से मिला, परन्तु कुछ भी हाथ नहीं लगा। उलटे मेरी मानसिक शान्ति ही चली गई। मैंने यथासाध्य प्रयत्न किया, परन्तु अब मैं भगवान से प्रार्थना करने में भी समर्थ नहीं हूँ। क्या मेरे लिए अब भी कोई आशा है?'

श्रीरामकृष्ण ने मुस्कुराकर कहा, 'क्या तुम पूरी निष्ठा और व्याकुलता से केवल इतनी प्रार्थना कर सकते हो - "हे प्रभो, यदि सचमुच ही आपका अस्तित्व हो, तो कृपया मुझे दर्शन देकर मेरे दुःख मिटा दीजिए?"' विश्वास रखो और प्रार्थना करते रहो। तत्काल परिणाम के लिए लालायित मत रहो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी।'

उस व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण देव के कथन का सत्यापन करने का निश्चय किया। एक वर्ष बाद वह फिर आकर श्रीरामकृष्ण देव से मिला और उनके सम्मुख साष्टांग प्रणाम करते हुए बोला, 'महाराज, आपने मुझे सन्मार्ग दिखाकर बचा लिया।' अब वह अवसादमुक्त होकर रहने लगा, क्योंकि भगवान में उसका विश्वास पुनः दृढ़ हो गया था।

केवल अटल विश्वास से ही साधना फलवती हो सकती है। छोटे पौधे को लगाने के बाद उसके पनपने और फलने-फूलने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। चेतना के रूपान्तरण के लिए धैर्य ही कुंजी है। अतएव उठो, बढ़े चलो, लक्ष्य की प्राप्ति किए बिना रुको मत !

हर साँस में प्रार्थना करो

रसिकलाल दक्षिणेश्वर में एक मेहतर था। श्रीरामकृष्ण के पास सैकड़ों लोगों को आते हुए देखकर वह आहें भरते हुए कहता, 'ये लोग कितने भाग्यवान हैं, जो श्रीरामकृष्ण की दिव्य वाणी सुन पाते हैं ! मैं एक अभाग्यवादी हूँ। अपनी जाति के कारण मैं उनके पास नहीं जा सकता।' ऐसा सोचकर वह खेद किया करता था।

जैसे-जैसे ठाकुर के प्रति उसकी श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गई, वैसे-वैसे श्रीरामकृष्ण की वाणी को सुनने की उसकी इच्छा तीव्रतर होती गई। एक दिन जब श्रीरामकृष्ण पंचवटी से अपने कमरे की ओर आ रहे थे, तो रसिकलाल अपनी व्याकुलता को सँभाल न सका। वह ठाकुर के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके सिसक-सिसककर रोते हुए बोला, 'प्रभो, मेरा क्या होगा?' श्रीरामकृष्ण ने रसिक को पहचान लिया। वे उससे स्नेहपूर्वक बोले, 'अरे ! रसिक ! उठो बेटा।' ऐसा कहकर वे समाधिमग्न हो गए।

रसिक ने अपनी प्रेम-भक्ति की अश्रुधारा से ठाकुर के चरण धो डाले। श्रीरामकृष्ण उसकी भक्ति से द्रवित होकर उसे आश्चस्त करते

हुए बोले, 'तुम बिलकुल चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारी सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ। अपना कर्तव्य पूर्ववत् करते रहो। सुबह-शाम पूरी निष्ठा और भक्ति के साथ ईश्वर से प्रार्थना करो।'।

इस आशीर्वाद से रसिक का जीवन ही बदल गया। उसने श्रीरामकृष्ण के निर्देशों का अक्षरशः पालन किया। वह हर साँस में भगवन्नाम जप करने लगा। श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के कुछ वर्षों बाद रसिकलाल का भी अन्तकाल आ गया। वह तेज बुखार से पीड़ित था। एक दिन दोपहर में उसने अपनी पत्नी से स्वयं को घर के परिसर में स्थापित तुलसी के बिरवे के पास पहुँचाने को कहा। पत्नी ने दुःखी मन से रसिक की इच्छा पूरी कर दी। अपने अन्त समय में रसिक एक दिव्य व्यक्ति प्रतीत होने लगा। उसने विस्मयपूर्वक कहा, 'अरे, आप अपनी प्रतिज्ञानुसार आ गए', और हर्षातिरेक से विह्वल होकर अन्तिम साँस ली।

रसिक ने पूछा था, 'हे प्रभु, मेरे भाग्य में क्या है?' ठाकुर ने निश्चय ही उत्तर दिया होगा, 'तुम कृतकृत्य हो जाओगे।'।

भगवान द्वारा बालिका की पुकार का उत्तर

स्वामी ब्रह्मानन्द के सेवकों में से एक, स्वामी निर्वाणानन्द, जो कि बाद में रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष हुए थे, ने एक घटना का वर्णन किया था -

'वर्ष १९१८ की बात है। श्रद्धापूर्वक "महाराज" के रूप में सम्बोधित किए जानेवाले स्वामी ब्रह्मानन्द, तब कोलकाता के बागबाजार में स्थित बलराम बोस के घर में निवास कर रहे थे। उनका सेवक होने के नाते उस समय मैं भी उनके साथ था। उस दिन महाराज अपना दोपहर का भोजन समाप्त करके अभी-अभी उठे थे। सामान्यतः इस समय वे विश्राम करते थे।

‘मैं उनके कमरे के बाहर एक बेंच पर बैठा था। तभी एक युवती अपने भाई के साथ आ पहुँची। युवती महाराज के दर्शन की अनुमति माँगने लगी। मैंने बताया कि इस समय महाराज का दर्शन कर पाना सम्भव नहीं होगा।

‘वह रोने लगी। उसे स्वामी सारदानन्द जी ने भेजा था। उसने कहा, “मैं केवल महाराज को प्रणाम करके चली जाऊँगी। कृपया मुझे उनका दर्शन करा दीजिए।”

‘उसकी व्यथा से द्रवित होकर मैं महाराज के पास जाकर बोला, “शरत् महाराज ने इस युवती को यहाँ भेजा है। वह केवल प्रणाम करके ही चली जाना चाहती है।” स्वामी सारदानन्द जी का नाम सुनकर वे उससे मिलने को राजी हो गए।

‘बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि दण्डवत् प्रणाम करते हुए वह युवती भावुक होकर सिसकेने लगी। महाराज सहसा भावसमाधि में स्थित होकर मौन और निश्चल हो गए। थोड़ी देर बाद वे युवती को देखकर बोले, “उठो, बेटी, बताओ क्या हुआ।” वह युवती तब भी रो रही थी। वह खड़ी हो गई, पर कुछ देर तक कुछ भी नहीं बोल सकी। महाराज के कमरे में टँगे श्रीरामकृष्ण के चित्र की ओर इंगित करते हुए युवती बोली, “उन्होंने मुझे आपके पास आने को कहा है।”

‘वह अपनी आपबीती सुनाने लगी। १४ वर्ष की आयु में उसका विवाह हुआ था। विवाह के दो सप्ताह बाद ही उसके पति की मृत्यु हो गई। उसका भविष्य अति अन्धकारमय प्रतीत होने लगा था। घोर निराशा में वह फूट-फूटकर रोती और निरन्तर ईश्वर से प्रार्थना करती, “हे प्रभो, मेरा क्या होगा? मैं एकाकी और असहाय हूँ। मैं अब क्या करूँ? कृपा करके मुझे मार्ग दिखाइए।”

‘लगभग एक वर्ष के बाद, एक रात श्रीरामकृष्ण उसके स्वप्न में प्रकट होकर बोले, “रोओ मत। मेरा पुत्र राखाल बागबाजार में रहता

है। उसके पास जाओ। वह तुम्हारी सहायता करेगा।” वह श्रीरामकृष्ण या राखाल के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी। वह सोचने लगी – “बागबाजार कैसे जाऊँ?” उसने अपने स्वप्न के बारे में अपनी ससुराल में किसी से कुछ नहीं बताया था। उसने अपनी माँ के पास जाकर सब कुछ बता दिया। उसकी माँ श्रीरामकृष्ण के बारे में जानती थी। माँ से उनके बारे में जानकर, युवती अपने भाई के साथ बागबाजार आई। वहाँ उसने पूछा कि यहाँ पास में कोई साधु रहते हैं क्या? उसे पता चला कि रामकृष्ण संघ के कई संन्यासी उद्बोधन-आश्रम में रहते हैं। स्वामी सारदानन्द उस समय वहीं रह रहे थे। उसने उनसे श्रीरामकृष्ण-विषयक अपना स्वप्न बताया। तब स्वामी सारदानन्द ने उसे बलराम मन्दिर में महाराज के दर्शनार्थ भेज दिया।

‘वह युवती दो घण्टे से भी अधिक समय तक महाराज के साथ रही। अन्ततः महाराज ने मुझे बुलाया। मन्दिर में प्रविष्ट होते ही मुझे पता चल गया कि युवती की मंत्रदीक्षा हो चुकी है। महाराज ने मुझे उसके और उसके भाई के लिए भोजन लाने को कहा। इस दर्शन के बाद वह युवती प्रायः ही महाराज के दर्शनार्थ आने लगी। १९२२ में महाराज के देहत्याग के बाद भी मैंने एक या दो बार उसे मठ में देखा था।’

स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उसे मंत्रदीक्षा और अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ने के लिए दिशा-निर्देश देकर कृतार्थ कर दिया। कातर प्रार्थना से उसने आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी उन्नति की और बाद में कई अन्य महिलाओं का मार्गदर्शन भी किया। उसकी व्याकुल प्रार्थना के उत्तर में ईश्वर ने उसे अपने धाम का पथ दिखा दिया था।

दिव्य नशा

श्रीरामकृष्ण देव ने जिन स्वेच्छाचारी लोगों को बचाया था, कालीपद घोष भी उनमें से एक थे। वे एक शराबी और विषयी व्यक्ति

थे। स्वामी अद्भुतानन्द जी ने अपनी स्मृतियों में बताया है कि श्रीरामकृष्ण देव ने कैसे कालीपद घोष के जीवन का कायापलट कर दिया था।

एक रात गिरीश बाबू कालीपद के साथ दक्षिणेश्वर आए। कालीपद बड़ा नशेबाज था, घर में पैसा-कौड़ी कुछ भी नहीं देता था, सब कुछ शराब में उड़ा देता था। परन्तु उसकी पत्नी बड़ी सती-साध्वी थी। बहुत दिनों पूर्व एक बार वह ठाकुर के पास आयी थी। सुना है कि अपने पति का मन ठीक करने के लिए उसने ठाकुर से कोई दवा माँगी, परन्तु ठाकुर ने दवा न देकर उसे माँ (सारदा देवी) के पास भेज दिया। माँ ने उसे पुनः ठाकुर के पास भेजा। इस प्रकार उन्हें तीन बार इधर से उधर जाना पड़ा था। अन्त में माँ ने पूजा के एक बेलपत्र पर ठाकुर का नाम लिखकर कालीपद की पत्नी को दिया और उसे खूब भगवन्नाम-जप करने की सलाह दी।

कालीपद की पत्नी ने १२ वर्षों तक भगवन्नाम का जप किया। पहली बार कालीपद से मिलने पर ठाकुर ने कहा था, 'यह आदमी अपनी पत्नी को १२ वर्षों तक कष्ट देकर यहाँ आया है।' इस पर कालीपद चौंक गए, परन्तु चुप रहे।

तब ठाकुर ने उनसे पूछा, 'तुम क्या चाहते हो?'

कालीपद ने निर्लज्जतापूर्वक कहा, 'क्या आप मुझे थोड़ी-सी शराब दे सकते हैं?'

ठाकुर ने मुस्कुराकर कहा, 'हाँ, दे सकता हूँ। परन्तु मेरी शराब में इतना नशा है कि तुम उसे सह नहीं सकोगे।'

कालीपद ने इसे सत्य समझकर कहा, 'विलायती सुरा है क्या? तो वही दे दीजिए थोड़ी-सी। गला तर कर लूँ।'

ठाकुर ने हँसते हुए कहा, 'अजी, यह विलायती सुरा नहीं, शुद्ध देशी मदिरा है। यह शराब जिस-तिस को नहीं दी जाती, क्योंकि हर

कोई इसे पचा नहीं सकता । यदि कोई यह शराब एक बार भी चख ले, तो फिर उसे विलायती शराब फीकी लगने लगेगी । क्या तुम विलायती शराब छोड़कर मेरी यह देशी शराब पीने को राजी हो?’

कालीपद ने कुछ क्षणों तक सोचा । फिर उसने कहा, ‘वही सुरा मुझे दीजिए, जिसे पीने पर मैं सारा जीवन नशे में डूबा रह सकूँ ।’ इसके बाद ही ठाकुर ने उसे छू दिया । कालीपद रोने लगा । बहुत प्रयास करके भी उसे शान्त करना सम्भव नहीं हुआ ।

वस्तुतः उन्होंने ईश्वर-प्रेम का नशा पा लिया था । उनके जीवन ने एक नया मोड़ ले लिया । उन्हें उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त हो गई । स्वामी गम्भीरानन्द जी ने अपने सारगर्भित ग्रन्थ ‘श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका’ में श्रीरामकृष्ण के इन महान भक्त के चरित्र का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है ।

ऐसे प्रखर भक्ति-विश्वास और ऐसी व्याकुलता से सम्पन्न प्रार्थना अवश्यमेव फलीभूत होती है । अपनी सदाचारी पत्नी की कातर प्रार्थना से कालीपद ने नया जीवन प्राप्त कर लिया ।

आन्तरिक व्याकुलता

कर्नाटक के एक महान सन्त जगन्नाथदास का पहले का नाम श्रीनिवास था । इस महा विद्वान के एक विनम्र भगवद्भक्त के रूप में परिवर्तन की कहानी बड़ी रोचक है । उनका जन्म उत्तरी कर्नाटक के एक गाँव में १६४९ ई. में हुआ था । जीवन के प्रारम्भिक काल में ही उन्होंने संस्कृत भाषा में प्रवीणता प्राप्त कर शास्त्रों में अद्वितीय विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी । वे काफी विख्यात हो चुके थे । उनके पास अध्ययन को अनेक छात्र आया करते थे । विद्वत्ता ने उन्हें अहंकारी बना दिया । वे भगवान के भक्तों को मूर्ख कहकर उनकी खिल्ली उड़ाने में भी संकोच नहीं करते थे । उन्होंने विजयदास नामक एक

धर्मात्मा की भी निन्दा की और उनका उपहास किया। सन्त वसवेश्वर ने कहा है - 'किसी महात्मा का अपमान करना, अपने जीवन में विपत्ति को आमंत्रण देने के समान है। यह वैसा ही है मानो किसी नाग के सिर से अपना गाल खुजलाना और कमर के चारों ओर बोझ बाँधकर कुएँ में कूदना।'।

श्रीनिवास को शीघ्र ही साधु के अपमान का फल मिला। उन्हें तपेदिक रोग हो गया। वे भोजन नहीं ग्रहण कर सकते थे और दुर्बल हो गए। वे असहाय और पीड़ित थे। अन्त में उन्होंने अपने पड़ोस के हनुमान-मन्दिर में ४८ दिनों तक विशेष पूजा-प्रार्थना करने की प्रतिज्ञा की। हनुमान जी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि विजयदास का अपमान करने के फलस्वरूप ही उन्हें वह भयानक व्याधि हुई थी। तथापि उपचार का अभी भी मौका था। उन्हें उस सन्त के सम्मुख आत्मसमर्पणपूर्वक क्षमा याचना करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। तब उनका रोग ठीक हो जाएगा।

श्रीनिवास को सबक मिल गया था और वे अनुताप करने लगे। विद्वत्ताजन्य उनका गर्व चूर-चूर हो गया और वे विनम्र बन गए। दुर्बल होने के कारण वे एक पालकी में बैठकर विजयदास के पास गए और उनसे क्षमा माँगते हुए बोले, 'आपकी महानता से पूर्णतः अनभिज्ञ रहने के कारण अपने ज्ञान से अहंकारोन्नत होकर मैंने आपका अपमान किया। मैं पापी हूँ। मुझे क्षमा करके मेरा उद्धार कीजिए।' विजयदास से क्षमायाचना करके वे रोने लगे। दयालु हृदय विजयदास ने उन्हें क्षमा करके आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए अपने शिष्य गोपालदास के पास भेज दिया। गोपालदास ने श्रीनिवास से सब बातें जानकर उन्हें मंत्रदीक्षा देने के बाद खाने को प्रसाद दिया।

तपेदिक का जो रोगी कल तक चावल का एक ग्रास भी नहीं निगल सकता था, उसी ने आज मक्के की दो रोटियाँ खाकर उन्हें

पचा लिया। कुछ ही दिनों में श्रीनिवास पूर्णतया स्वस्थ हो गए। उनके संन्यास लेने की इच्छा व्यक्त करने पर गोपालदास बोले, 'पण्ढरपुर जाकर पाण्डुरंग विठ्ठल का नाम जपते हुए चन्द्रभागा नदी में स्नान करो। भगवान की कृपा से तुम्हारे नाम का एक प्रस्तर-फलक तैरते हुए तुम्हारे पास आएगा, उसे ले लेना - वही तुम्हारा संन्यास-नाम होगा - और फिर भगवन्नाम जप करना।' गोपालदास द्वारा कथित चमत्कार अक्षरशः सत्य हुआ। अब श्रीनिवास जगन्नाथदास हो गए। उन्होंने भगवान की महिमा का गुणगान किया, तीर्थ-स्थानों का भ्रमण किया और एक महान भगवद्भक्त बन गए।

गृहस्थ भी भगवान को पा सकते हैं

जब सन्त ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंडावली में ठहरे हुए थे, उस समय एक गृहस्थ भक्त ने उनसे पूछा, 'हम गृहस्थ हैं। हमें अपने परिवारों का ध्यान रखना पड़ता है। हम निरन्तर भगवान राम का नाम-जप या ध्यान नहीं कर सकते। हम मन को थोड़े समय के लिए भी ध्यान में केन्द्रित नहीं कर सकते। हम भगवान का कैसे दर्शन कर सकेंगे? बताइए कि हम जैसे लोगों के लिए मुक्ति का क्या उपाय है?'

महाराज ने उत्तर दिया, 'अपनी पत्नी और बच्चों को देखकर सोचो कि भगवान श्रीराम ने ही देखभाल करने के लिए तुम्हें यह परिवार दिया है। उनके प्रति सारे कर्तव्य पूरे करके भगवान का स्मरण करते रहो। अपने परिवार और घर-बार से सम्बन्धित कोई भी चीज देखने पर यह स्मरण करो कि ये सारी चीजें भगवान की हैं और भगवान से तुम्हें उनकी जिम्मेदारी मिली है और तुम्हें अपने किए हुए कर्तव्यों का लेखा-जोखा भगवान को देना है। जब तुम बारम्बार मन में यह भाव लाने का प्रयास करोगे, तो धीरे-धीरे यह आदत हो जाएगी। यह तुम्हारी चेतना का एक अंश बन जाएगी। क्रमशः तुम "यह सब मेरा है" का

भाव छोड़ दोगे और “यह सब भगवान श्रीराम का है” का भाव आत्मसात् कर लोगे । यदि तुम ६ माह तक यह साधना करते रहो, तो निःसन्देह तुम भगवान की कृपा प्राप्त कर लोगे ।’

प्रार्थना में कातर भाव तथा व्याकुलता बढ़ने पर सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति घटती जाती है और हम भगवान के पास द्रुतगति से बढ़ते जाते हैं । भगवान भक्त की संन्यास या गृहस्थ अवस्था को नहीं, अपितु उसके मन और हृदय को देखते हैं ।

छोड़ काम, पकड़ो राम

आध्यात्मिक जीवन में शीघ्र उन्नति करने की इच्छा रखनेवाले दीक्षाप्राप्त भक्तों में से भी वस्तुतः बहुत कम लोग ही सफल हो पाते हैं । यद्यपि उनमें से अधिकांश दृढ़ संकल्प के साथ तथा श्रद्धापूर्वक आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ करते हैं, तथापि वे मार्ग की विभिन्न बाधाओं तथा विफलताओं के कारण हतोत्साहित हो जाते हैं । आध्यात्मिक जीवन की सही समझ रखनेवाले लोग भी सन्तों तथा किसी सिद्ध महात्मा के मार्गदर्शन तथा पवित्र आध्यात्मिक परिवेश में रहने के बावजूद पुराने संस्कारों द्वारा पथ से विचलित हो जाते हैं । इसके फलस्वरूप ऐसे साधक ईश्वरानुभूति के लक्ष्य से च्युत हो जाते हैं । काम साधक का एक प्रबल शत्रु है । यह काम मन, इन्द्रियों और बुद्धि में निवास करता है । भगवद्गीता हमें काम को त्यागने की शिक्षा देती है । इन्द्रिय-निग्रह या संयम अत्यावश्यक है । वैराग्य, ईश्वर के लिए तीव्र व्याकुलता, हार्दिक प्रार्थना, भगवन्नाम-जप तथा ध्यान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन हैं । कुछ लोगों का मत है कि योगासन, हठयोग, औषधि तथा प्राणायाम के बिना ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव नहीं है । इस विषय में श्रीरामकृष्ण की सलाह ध्यान देने योग्य है । इससे असंख्य आध्यात्मिक साधकों को सहायता मिली है ।

श्रीरामकृष्ण के एक महान शिष्य, स्वामी योगानन्द, पन्द्रह वर्ष की आयु से ही दक्षिणेश्वर जाने लगे थे। एक दिन मन्दिर के सामने एक हठयोगी तरह-तरह के आसन दिखा रहा था। योगानन्द जी उसे जिज्ञासावश देखते रहे। उन्होंने सोचा कि श्रीरामकृष्ण भी काम-वासना को दूर करने हेतु कुछ आसनों या औषधियों की सलाह देंगे। श्रीरामकृष्ण ने ऐसी किसी भी चीज की सलाह न देते हुए कहा, 'भगवन्नाम जप करने से काम-वासना स्वयं ही घटती जाती है।' योगानन्द जी को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, 'यदि नामजप से काम-वासना को वशीभूत करने में सहायता मिलती, तो अनेक लोग वासना-मुक्त हो गए होते। परन्तु क्या वे लोग सचमुच काम से मुक्त हैं?' दूसरी बार दक्षिणेश्वर आने पर जब वे हठयोगी के आसनों को देख रहे थे, तो श्रीरामकृष्ण उनके पास आए। वे योगानन्द की बाँह पकड़कर बोले, 'हठयोग की साधना करने से मन केवल देह पर ही केन्द्रित रहता है, भगवच्चिन्तन नहीं कर पाता। व्याकुलतापूर्वक भगवान से प्रार्थना करो। जहाँ राम, तहाँ काम नहीं। सतत राम का ही चिन्तन करो।' श्रीरामकृष्ण द्वारा बताए इस उपचार को योगानन्द ने आजमाया। मन को भगवान में एकाग्र करके और भगवन्नाम जप करके उन्होंने ठाकुर के कथन की सत्यता का अनुभव किया। उन्होंने काम-वासना पर विजय प्राप्त कर ली। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए कुछ योगासनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। हमारे मन और शरीर पर निश्चित रूप से इन योगासनों का लाभकारी प्रभाव पड़ता है। पर यह समझ लेना परम आवश्यक है कि ईश्वरप्राप्ति के लिए तोत्र व्याकुलता ही मन को पवित्र करती है। इस व्याकुलता के बिना बाह्य साधनाएँ इन्द्रिय-निग्रह में अधिक सहायक नहीं होतीं।

सभी साधु-सन्तों का यह अनुभव है कि ईश्वर के लिए तोत्र व्याकुलता और प्रेम के बिना मनुष्य के बुरे संस्कार दूर नहीं हो

सकते। ईश्वर के लिए यह व्याकुलता और प्रेम केवल आन्तरिक प्रार्थना से ही उत्पन्न होता है। प्रार्थना का अर्थ कुछ मंत्रों और स्तुतियों का यंत्रवत् उच्चारण मात्र नहीं है। दीर्घकाल तक कठोर साधना और ईश्वर के लिए व्याकुलता के द्वारा ही हम काम पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

प्रयत्न सफल होता है

सन्तों का कहना है कि हमें सभी परिस्थितियों में ईश्वरीय सहायता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए और पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। यदि हम दिन में एक-दो घण्टे भजन-स्तुति गाएँ और बाकी समय यथेच्छाचार में बिताएँ, तो इससे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। स्वास्थ्य के नियमों की उपेक्षा करके क्या कोई नीरोग रहने की आशा कर सकता है? इसी प्रकार यदि हम अपने अन्तर में एक आध्यात्मिक प्रवाह बनाए रखना चाहते हैं, तो हमें पूरे दिन सतर्क रहना होगा। गीता कहती है कि भगवान के भक्त को कर्मकुशल होना चाहिए। किसी कार्य को सफल बनाने में पाँच तत्त्वों का योगदान होता है - अनुकूल परिवेश, परिश्रमी कर्ता, इन्द्रिय-निग्रह, बारम्बार प्रयत्न और भगवत्कृपा। निष्ठापूर्वक भगवान को चाहनेवाले तथा अध्यवसायी लोग ही लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। एक कहावत है - 'ईश्वर उन्हीं की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।' ईश्वर ने हर व्यक्ति को बुद्धि तथा कार्यक्षमता प्रदान की है। यदि हम अकर्मण्यता के कारण अपनी क्षमतानुसार चेष्टा न करें, तो इससे भगवान खुश नहीं होंगे। सन्तों का कहना है कि हमें ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिए कि वे हमें जीवन के भार को वहन करने की शक्ति प्रदान करें और शेष उनकी इच्छा पर छोड़ देना चाहिए। और यह नियम पूर्णतः ईश्वर-निर्भर रहनेवाले सिद्ध

महात्माओं पर ही लागू नहीं होता। अतीत काल में भी भाग्य के ऋषि-मुनियों ने मनोविज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान, ज्योतिष और राजनीतिक-चिन्तन जैसे क्षेत्रों में उच्च ज्ञान अर्जित किया था। ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या वे लोग केवल भाग्य पर ही निर्भर रहे, या परिश्रम करते रहे? हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि अत्यन्त उद्यम और खोजी वृत्ति के थे। कभी-कभी हम मरकट वैराग्य को सच्चा वैराग्य मानकर तथा भावातिरेक को भक्ति मानकर स्वयं को धोखा देते हैं। हमें ध्यान रखना होगा कि विवेक, विचार तथा आत्मविश्लेषण से युक्त प्रार्थना ही हमें सफलता के पथ पर अग्रसर करा सकती है।

एक बालिका के छोटे भाई ने चिड़ियों को पकड़ने के लिए एक फन्दा बनाया। चिड़ियों को फँसाकर उन्हें कष्ट देना ही उसका खेल था। परन्तु बालिका को उसके इस कार्य से पीड़ा होती थी। उसने उसका यह क्रूर खेल छुड़ाने का प्रयास किया। कुछ ही दिनों में वह अपने भाई के मन को बदलने में सफल हुई। इस पर आश्चर्यचकित अपनी माता को उसने बताया, 'माँ, पहले मैंने प्रार्थना की कि मेरा भाई एक अच्छा बालक बन जाए। फिर मैंने प्रार्थना की कि उसके फन्दे में कोई चिड़िया ही न फँसे। इसके बाद मैंने चिड़ियों को पकड़ने हेतु बनाए उसके सारे फन्दों को ही नष्ट कर दिया।'।

हमें अपने उद्यम से अपनी प्रार्थना को सबल कर लेना चाहिए। चलो, हम अपनी पुरानी आदतों को छोड़कर जीवन के नए अर्थों का अनुसरण करें।

सांत्वना के शब्द

एक भक्त के संकटों से द्रवित होकर, एक सन्त ने उसे दिलावा देने के लिए निम्नलिखित बातें कही थीं। इसमें प्रार्थना का सार-संक्षेप निहित है -

‘भगवान सर्व-शक्तिमान और दयालु हैं। उनके चरणों में शरणागत भक्तों को जरा भी डरने की जरूरत नहीं। अपनी वर्तमान कठिनाइयों को भगवान की कृपा का प्रसाद समझो। आज की परेशानियाँ जीवन भर नहीं रहेंगी। वे पुल के नीचे से बहनेवाले जल के समान चली जाएँगी। अधीर मत बनो। चिन्तित मत होओ, धैर्य रखो। जीवन में आनेवाली सभी कठिनाइयों का एक तात्पर्य होता है। उनका कोई-न-कोई कारण रहता है। जो बीत गया, उसके लिए खेद मत करो। ईश्वर सब कुछ देखते हैं। वे तुम्हारी प्रार्थना का प्रत्येक शब्द सुनते हैं। प्रार्थना करने पर भी आकांक्षित वस्तु न मिले, तो ईश्वर को दोष मत दो। कोई भी प्रार्थना निष्फल नहीं जाती। बिजली के तार में से होकर बहनेवाली विद्युत्-धारा अदृश्य रहती है, पर चमकता हुआ बल्ब उसकी उपस्थिति की पुष्टि करता है। इसी प्रकार भगवान की कृपा श्रद्धा-भक्ति के तार में से होकर बहती रहती है। ईश्वर के नाम का जप करके कोई भी इसका अनुभव कर सकता है। अतः भगवन्नाम का जप करो। सोना आग में तपकर शुद्ध होता है। कठिनाइयों से घिर जाने पर ही हमें बोध होता है कि यह संसार दुःखों से परिपूर्ण है। ईश्वर के चरणों के सिवा हमारे लिए अन्य कोई भी सच्चा आश्रय नहीं है। ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण के अलावा हमारे लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। जब भी संकट आए, ईश्वर से प्रार्थना करो। ईश्वर निश्चित रूप से तुम्हें उद्धार का मार्ग दिखाएँगे। जैसे एक मुख्य विद्युत्-उत्पादन केन्द्र में पैदा हुई बिजली की ही विभिन्न स्थानों पर आपूर्ति की जाती है, वैसे ही ईश्वर के चरणों का स्पर्श कर चुके सन्त सर्वत्र आध्यात्मिक जागृति फैलाते रहते हैं।

तुम्हारे घर में जल की आपूर्ति का नल तो होगा। उसी के समान ईश्वर की कृपा महात्माओं के माध्यम से लोगों के पास पहुँचकर उन्हें कृतार्थ करती है। जैसे सभी घरों में एक साथ ही जल-आपूर्ति की जा सकती है, वैसे ही ईश्वर सभी लोगों की प्रार्थनाओं को एक साथ ही

सुनकर उसका उत्तर दे सकते हैं। परन्तु धर के निवासियों द्वारा जल खोलने पर ही जल मिलता है और उसके नीचे वर्णन पृथ्वी पर हो रहा भरता है। आशाकारिता और सच्चे विनय के द्वारा ही हम भगवान् की पात्रता अर्जित कर सकते हैं। नित्य-निरन्तर उनका नाम जप करते रहो। मंत्र का प्रत्येक जप तुम्हें भगवान् के निकट ले जाता है। सर्वदा ईश्वर का स्मरण करते रहने से निश्चित रूप से उनकी कृपा होगी। हमारे चारों ओर वायु विद्यमान है, पर हम उसे देख नहीं सकते। परन्तु पत्ता हिलते ही हमें वायु की उपस्थिति का बोध होता है। सन्त-महान्यात्रियों के जीवन तथा उपदेश हमें भगवान् की उपस्थिति का बोध कराने में मदद करते हैं। भगवान् एक चींटी की पदचाप भी सुनते हैं, तो फिर वे तुम्हारी प्रार्थना का उत्तर क्यों नहीं देंगे? यह ब्रह्माण्ड एक अदृश्य तथा सर्वव्यापी दिव्य शक्ति द्वारा पूर्णरूपेण नियंत्रित है। सर्वदा उनसे प्रार्थना करके शान्ति और परमानन्द प्राप्त करो। तुम्हारी सारी परेशानियाँ दूर हो जाएँगी। तुम्हें सुख और प्रसन्नता का बोध होगा। जल में घुली हुई चीनी दिखाई नहीं पड़ती। परन्तु जल की मिठास उसमें चीनी की उपस्थिति का संकेत करती है। भगवान् और उनका नाम अभिन्न हैं। उनके नाम का जप करते रहने पर हमें निश्चय ही उनकी उपस्थिति का बोध होगा। जब हम किसी बच्चे को तैरना सिखाते हैं, तो उसकी कमर में एक रस्सी बाँध देते हैं, ताकि वह डूब न जाए। इसी प्रकार ईश्वर हम लोगों को जीवन रूपी समुद्र में डालने के पूर्व हमारे चारों ओर अपनी कृपा की डोर बाँध देते हैं। बच्चे के डूबने का खतरा उपस्थित होने पर तट पर बैठे लोग रस्सी खींचकर उसे पानी से बाहर निकाल देते हैं। भक्त के संकटग्रस्त होने पर भगवान् भी उसे डूबने नहीं देते। बस में चाहे जितनी भी भीड़ क्यों न हो, उसमें चालक के लिए तो जगह रहती ही है। इसी प्रकार, तुम चाहे जितने भी व्यस्त क्यों न होओ, प्रार्थना और जप के लिए कुछ समय अवश्य ही निकालो।

भगवान का गुणगान करो। संसार में निन्दक लोग तो हमेशा ही रहते हैं। उनकी बातों पर ज्यादा ध्यान मत दो। केवल भगवान का चिन्तन करो। इससे तुम्हारा मंगल होगा।'

प्रार्थना कैसे करें?

यदि हम पूरी सच्चाई के साथ ईश्वर के सम्मुख अपना हृदय खोल दें, तो हम निश्चय ही अपने प्रति उनके प्रेम का अनुभव करेंगे। भक्त इस प्रकार भगवान से प्रार्थना करता है - 'हे जगदम्बा, मैं कुछ भी नहीं जानता, मैं अज्ञानी हूँ। इस मिथ्या भवसागर में खेलते हुए मैंने अपना जीवन बर्बाद कर डाला। अब मुझे अपनी गलती का बोध हुआ है। तुम सर्वव्यापी हो। एकमात्र तुम्हीं मेरी गलतियों को क्षमा करके मुझे सत्यपथ पर चला सकती हो। सभी प्रकार की कठिनाइयों तथा कष्टों का सामना करने हेतु मुझे शक्ति प्रदान करो। मैंने सचमुच ही अनेक गलतियाँ की हैं। परन्तु, माँ, मुझे क्षमा करो और उच्चतर बोध प्रदान करो। मैं तुम्हारी सन्तान हूँ। मुझे तुम्हारी गोद की सुरक्षा चाहिए। सचमुच मैं तुम्हीं को चाहता हूँ। इस संसार में रहने के लिए धन तो मुझे अवश्य चाहिए, परन्तु माँ, इस जन्म-मृत्यु के चक्र को तोड़ने हेतु मुझे तुम्हारे चरण-कमल रूपी चिर सम्पदा की परम आवश्यकता है। माँ, मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे सदाचार के पथ पर चलाओ। तुम मुझे अपनी लीला तथा महिमा को समझने की क्षमता प्रदान करो। मुझे अपना दिव्य चिन्मय रूप दिखाओ और पवित्रता के मार्ग पर ले चलो। मैं जब भी प्रार्थना करूँ, तुम पास आकर मेरी रक्षा करो। प्यारी माँ, तुम अपने स्नेह और प्रेम से मुझे शुद्ध कर दो। माँ, मेरे जीवन में एक आध्यात्मिक पुनर्जागरण ला दो। मैं सदा के लिए तुम्हारा ही हूँ। मुझे गोद में उठा लो। मेरा हाथ पकड़कर मुझे बचा लो। मुझ पर दया करो।'

इस प्रकार की प्रार्थना से धीरे-धीरे ईश्वर के लिए व्याकुलता बढ़ती है और अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। आँसुओं के समुद्र में ही भगवत्कृपा का जहाज चलता है। जैसे गुलाब का पुष्प अपने सौन्दर्य के साथ ही सुगन्ध भी बिखेरता है, वैसे ही भगवत्कृपा से आन्तरिक सुख तथा बाह्य समृद्धि आती है।

भगवान् भक्त के हृदय में निवास करते हैं

भक्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या जैसी मानसिक अशुद्धियों से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करता है। एक साधक इस क्षणिक संसार की किसी चीज की आकांक्षा नहीं करता। आन्तरिक प्रकाश एवं शान्ति ही उसका एकमात्र लक्ष्य होता है। उसकी आकांक्षा रहती है कि ईश्वर उसके हृदय में निवास करके उसे चलाते रहें। गोस्वामी तुलसीदास की निम्नलिखित प्रार्थना का यही सन्देश है -

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये

सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे

कामादि-दोष-रहितं कुरु मानसं च ॥

- 'हे सबके हृदयवासी प्रभो, मैं आपसे सच सच कहता हूँ, मेरी अन्य कोई इच्छा नहीं है। मुझे अपने चरणों में निर्भरा भक्ति प्रदान कीजिए और मेरे हृदय को काम आदि दोषों से मुक्त करके अपना स्थायी निवास बना लीजिए।'

भगवत्-सान्निध्य का अभ्यास

ब्रदर लारेन्स का चरित्र ज्वलन्त रूप से दर्शाता है कि भगवत्-सान्निध्य के अभ्यास से ईश्वर की प्राप्ति होती है।

लारेन्स का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। वे साधारण लोगों के बीच पले और बड़े हुए। वे अपने कार्य में अधिक दक्ष न थे, पर उनमें एक असाधारण गुण था। उन्हें ईश्वर में दृढ़ विश्वास था। ईश्वर में अपने इस विश्वास तथा उनके लिए व्याकुलता के द्वारा वे एक महान सन्त बन गए। अठारह वर्ष की आयु में ही उन्होंने भगवान की महिमा का बोध कर लिया था। वह घटना बड़ी साधारण-सी थी। जाड़े के दिनों में उन्होंने देखा कि पतझड़ के बाद सारे वृक्ष ठूँठ-जैसे खाली हो गए हैं। उन्होंने सोचा कि कुछ ही दिनों में ईश्वर की कृपा से ये सूने वृक्ष हरी-भरी पत्तियों से भर जाएँगे और यह बोध होते ही उनका मन ईश्वर के चिन्तन में डूब गया। उन्होंने धर्म-ग्रन्थों को पढ़कर अपना आध्यात्मिक जीवन आरम्भ किया। परन्तु दार्शनिक वाद-विवाद से परिपूर्ण धर्म-ग्रन्थों को पढ़कर उनका अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता गया। कोरी विद्वत्ता उन्हें विशेष उपयोगी नहीं लगी। उन्होंने पुस्तकों को तिलांजलि दे दी। उन्होंने बताया था, 'ईश्वर के लिए सब कुछ छोड़कर और केवल उन्हीं के प्रेम के लिए व्याकुल होकर मैं इस प्रकार रहने लगा मानो पूरे जगत में केवल ईश्वर और मेरा ही अस्तित्व हो।' यह बात सामान्य-सी लग सकती है। परन्तु लारेन्स चेतावनी देते हैं, 'सच पूछिए, तो १० वर्षों तक मुझे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कई बार मैं ठोकर खाकर गिर पड़ा। पर मैंने अपना प्रयास जारी रखा। कुछ काल तक तो ऐसा लगा मानो सभी प्राणी, युक्ति एवं स्वयं ईश्वर भी मेरे प्रतिकूल हैं और मेरे पास केवल विश्वास का ही सम्बल रह गया था।' परन्तु लारेन्स ने निश्चय कर लिया था, 'चाहे जो भी हो, आनेवाले दिनों में चाहे जितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न आएँ, मैं केवल भगवत्प्रेम के लिए ही सब कुछ करता रहूँगा।' उनका जीवन गीता के इस सन्देश का ज्वलन्त निदर्शन था - 'तुम जो भी करो, सब कुछ मुझ ईश्वर के लिए

करो ।' ब्रदर लारेन्स कहते हैं, 'हमें सब कुछ केवल भगवत्-प्रेम के लिए ही करना चाहिए ।' ईश्वर से उपहार पाने के लिए नहीं, अपितु केवल उन्हीं को पाने के लिए वे उनके प्रीत्यर्थ एक-तिनके को उठाकर भी स्वयं को धन्य मानते थे । लारेन्स भगवान की महिमा का स्मरण करते हुए और व्याकुलतापूर्वक प्रार्थना करते हुए ईश्वर के प्रीत्यर्थ ही अपना प्रतिदिन का कार्य सम्पन्न किया करते थे । भगवत्-सान्निध्य के आनन्द का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा था - 'जबकि मैं इस बात को लेकर चिन्तित था कि मेरा जीवन शायद पीड़ा तथा कठिनाइयों में ही बीतेगा, सहसा एक दिन मुझे अवर्णनीय आनन्द और शान्ति का अनुभव होने लगा । मैंने पाया कि मेरा रूपान्तरण हो गया है । मेरी पीड़ित अन्तरात्मा में एक महान आन्तरिक शान्ति छा गई । मेरा मन भी उस शान्ति से अभिभूत हो उठा । तब से मैं सरलता तथा विश्वास, विनम्रता तथा प्रेम के साथ ईश्वर में रमण करने लगा ।'

लारेन्स का पूर्व नाम निकोलस हरमन था । वे पहले सेना में थे, परन्तु अपने कार्य में निपुण न होने के कारण उन्हें अपने उच्च-अधिकारियों की नाराजगी झेलनी पड़ी । अयोग्यता के कारण उन्होंने सेना की नौकरी छोड़ दी और पेरिस के एक मठ में प्रवेश ले लिया । वहाँ वे इस आशा से गए थे कि ईश्वर उन्हें सुधार देंगे । वे शारीरिक रूप से अपंग थे और लँगड़े होने के कारण वे रसोईघर में कार्य करते थे । परन्तु वह कार्य उन्हें पसन्द नहीं था । प्रारम्भ में रसोईघर की अफरा-तफरी से वे झल्ला उठते । कभी-कभी उन्हें अपने शारीरिक बल तथा क्षमता से भी अधिक परिश्रम करना पड़ता था । पर वे ईश्वर-प्रीत्यर्थ निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्यों को पूरा करते रहे, एक-दो वर्ष नहीं, अपितु ६० वर्षों तक !

कोई भी कार्य शुरू करने से पूर्व वे उत्कण्ठापूर्वक प्रार्थना करते - 'हे प्रभो, आप मेरे इतने घनिष्ठ हैं ! आपकी इच्छानुसार ही मैं अपने

सारे कर्तव्य सम्पन्न कर रहा हूँ। आपकी मदद के बिना मैं असहाय हूँ। हे पिता ! मेरी यही प्रार्थना है कि मैं कभी आपके सान्निध्य से वंचित न होऊँ।' वे ईश्वर की सहायता प्राप्त करने का रहस्य प्रकट करते हुए कहते हैं, 'हमें एकान्त में, सहज भाव से ईश्वर को पुकारना चाहिए। हमें निश्छल, स्वाभाविक तथा सहज रीति से उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। कोई सत्कार्य करने का अवसर मिले, तो हमें ईश्वर से विनती करनी चाहिए कि वह सफल हो।' प्रार्थना के माध्यम से लारेन्स ने जिस उच्च मानसिक अवस्था की उपलब्धि की थी, उनके अपने शब्द ही उसका संकेत देते हैं, 'मेरी प्रार्थना और कार्य के समय भिन्न-भिन्न नहीं थे। रसोईघर में ही, जब अनेक लोग एक साथ ही अनेक चीजें माँग रहे होते थे, तो उस कोलाहल के बीच भी मैं मन की पूर्ण प्रशान्ति के साथ ध्यान व प्रार्थना करता हुआ भगवत्-सान्निध्य का अनुभव करता रहता था।'

लारेन्स एक भक्त होने के साथ-ही-साथ एक कर्मयोगी भी थे। जब वे कहते, 'एक निश्चय करके, पूरी आन्तरिकता से आत्मसमर्पण करो' - तो इसका तात्पर्य यह नहीं था कि व्यक्ति सब कुछ छोड़कर निर्जन में चला जाए। व्यक्ति को छोटे-मोटे कार्य करने में भी हिचकिचाना नहीं चाहिए। वे कहते हैं, 'ईश्वर कार्य की मात्रा और प्रकार को नहीं, अपितु उसे सम्पन्न करने में नियोजित हमारे भक्ति-प्रेम को देखते हैं। साधना में हमारी प्रगति स्थान या कार्य के परिवर्तन पर निर्भर नहीं करती। सबसे अच्छा तो यही है कि हम जहाँ हैं, वहीं रहकर ईश्वर-प्रीत्यर्थ अपने सारे कर्तव्य सम्पन्न करते रहें।'

एक विद्वान भी ईश्वर के बारे में उतने अधिकारपूर्वक नहीं बोल सकता, जितने अधिकारपूर्वक सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति करनेवाला व्यक्ति बोल सकता है। ईश्वर की प्राप्ति कर चुके महात्माओं की वाणी लोगों के हृदय को छू लेती है। लारेन्स कहते हैं, 'मनुष्य भले ही

वर्षों तक व्यर्थ के तर्क-वितर्क करता रहे, परन्तु ईश्वर अपने सरल तथा विनम्र भक्तों के समक्ष ही सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्त्वों और अपनी महिमा को प्रकट करते हैं।' वे विनम्रतापूर्वक, पर दृढ़भाव से कहते हैं, 'अब विश्वास का प्रश्न नहीं है, क्योंकि मैं प्रति क्षण ईश्वर को देखता हूँ। अब मैं ईश्वर का दर्शन तथा अनुभव कर सकता हूँ। द्वार को खटखटाइए, खटखटाते रहिए और मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि यदि आप निरुत्साहित नहीं हुए, तो यथासमय वे द्वार खोल देंगे और सहसा ही वह सब कुछ प्रदान करेंगे, जो उन्होंने इतने दीर्घकाल से रोक रखा था।' इस प्रकार वे साधकों को प्रोत्साहन प्रदान करते हैं।

भला कौन ऐसी निश्छल पुकार की उपेक्षा कर सकता है?

ध्यान कैसे करें

ध्यान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें मन अविच्छिन्न तैलधारा के समान ईश्वर की ओर प्रवाहित होता है। जप सधन होकर ध्यान में परिणत हो जाता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि ध्यान के लिए हृदय ही श्रेष्ठ स्थान है। कहते हैं कि ज्ञानमार्ग के साधक भौहों के बीच और भक्त अपने हृदय में ध्यान करते हैं। प्रारम्भिक साधकों के लिए निःसन्देह हृदय ही ध्यान का सर्वोत्तम स्थान है। परन्तु यह हृदय है क्या?

सावधानी से विचार करने पर हम अनुभव करते हैं कि हृदय तीन प्रकार के होते हैं। दैहिक हृदय के बारे में हर कोई यह जानता है कि उससे शरीर के सभी भागों में रक्त-संचार होता है। यह सत्य है कि यदि यह हृदय अपना कार्य करना बन्द कर दे, तो हमारे सभी शारीरिक क्रिया-कलाप भी बन्द हो जाएंगे। परन्तु जब हम यह कहते हैं, 'मैं अपने हृदय से बोल रहा हूँ' या 'उसका हृदय पवित्र है' या

‘तुम्हारी बातें हृदय से निकल रही हैं’ – तो हमारा आशय उस हृदय से होता है जो भावना का स्रोत है। यह हृदय का दूसरा प्रकार है। प्रेम, भक्ति, निःस्वार्थता, दया, सेवाभाव तथा विनम्रता – ये उदारता और सदाशयता के लक्षण हैं। तीसरे प्रकार का हृदय आध्यात्मिक हृदय है। इसे ‘अनाहत चक्र’ भी कहते हैं। (योगशास्त्र में स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों के सन्धि-स्थान को ‘चक्र’ या केन्द्र कहा जाता है।)

जब हम हृदय में ध्यान करने की बात कहते हैं, तो हमारा अभिप्राय होता है कि हमें अपना मन आध्यात्मिक हृदय पर केन्द्रित करना चाहिए। हममें से अधिकांश लोगों की मानसिक ऊर्जा काफी-कुछ अपने दैहिक तथा जैविक जरूरतों की पूर्ति के प्रयास तथा अपने ‘अहं’ के संरक्षण में लगी रहती है। आध्यात्मिक जागरण के लिए ‘मूलाधार’ में प्रसुप्त ‘कुण्डलिनी शक्ति’ को जाग्रत करना जरूरी है। मन को सभी बन्धनों से मुक्त कर लेना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि ध्यान करते समय हमारे मन को अनाहत चक्र के स्तर तक ऊपर उठ जाना चाहिए। रमण महर्षि के शब्दों में – ‘यदि हम “मैं” के उद्गम की खोज जारी रखें, तो इस चक्र या आध्यात्मिक हृदय तक पहुँचना सम्भव हो सकता है।’

पर यह प्रक्रिया आसान नहीं है। यह ‘मैं’ कौन है? और कहाँ से उत्पन्न होता है? जाग्रत अवस्था में ‘मैं’ अनेक लोगों के सम्पर्क में आता है। गहन निद्रा के समय वह कहाँ चला जाता है? जागने पर ‘मैं’ कहाँ से आ जाता है? ‘मैं’ के उत्स को ढूँढ़ने का प्रयास करते हुए हम एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, जहाँ से हम और आगे नहीं जा सकते। यही आध्यात्मिक हृदय है। परन्तु बहुत-से लोगों के लिए इस खोज में अध्यवसाय के साथ लगे रहना कठिन हो जाता है। भगवान से प्रार्थना करना एक अधिक सहज उपाय है।

प्रार्थना ध्यान का अनुपूरक है। तीव्र प्रार्थना की सहायता से ध्यान सहज हो जाता है। ध्यान शुरू करने के पूर्व १०-१५ मिनट तक एकाग्र-चित्त होकर प्रार्थना करना उत्तम है। जैसे आकाश के मेघाच्छन्न होने पर वर्षा होती है, वैसे ही प्रार्थना में व्याकुलता आ जाने पर मन ऊपर उठकर भावनात्मक हृदय के स्तर को पार करके आध्यात्मिक हृदय तक पहुँच जाता है। तब आँखों में अश्रु भर जाते हैं। यह ईश्वर के लिए तीव्र व्याकुलता की शुरुआत है। यही ध्यान की परिपूर्णता है।

आध्यात्मिक जागरण

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सोये इस आध्यात्मिक केन्द्र को जगाना सम्भव है। इसके लिए मन की शुद्धि, कठोर ब्रह्मचर्य तथा ईश्वर के लिए तीव्र व्याकुलता की आवश्यकता होती है। विवाहित जीवन में भी पति-पत्नी संयम का मार्ग अपनाकर इस आध्यात्मिक जागरण को प्राप्त कर सकते हैं। नित्य कम-से-कम दो या तीन घण्टे आन्तरिक प्रार्थना तथा ध्यान का अभ्यास करने से साधक कुछ ही वर्षों में ईश्वरीय कृपा की अनुभूति कर सकता है। हममें से अधिकांश लोग बिना किसी नियम का पालन किए कुछ मिनट ध्यान में बैठकर ही शिकायत करने लगते हैं कि प्रार्थना और ध्यान के बावजूद हमें आध्यात्मिक जीवन में कुछ हासिल नहीं हुआ। हमें यह समझ लेना चाहिए कि आध्यात्मिक जागरण प्राप्त करने के लिए हमें अपने प्रयासों में निष्ठा और ईमानदारी लानी होगी।

आजकल ध्यान तथा योग के बारे में कई प्रकार के भ्रम फैले हैं। केवल एकाग्रता को ही ध्यान नहीं समझ लेना चाहिए; दोनों में भेद है। ध्यान एक सचेतन, सक्रिय तथा आत्म-निर्देशित प्रक्रिया है। इसमें मन सौम्य, शान्त तथा सजग रहता है। यह विश्राम या निद्रा

की अवस्था नहीं है। ईश्वर के लिए तीव्र व्याकुलता तथा मन की शुद्धि के बिना ध्यान का अभ्यास करना वैसा ही है, जैसे कि ईंधन-रहित कार को चलाने का प्रयास करना। तीव्र व्याकुलता के साथ प्रार्थना और ध्यान का अभ्यास करने पर आध्यात्मिक जागृति आती है। तब सूर्य की किरणों के स्पर्श से खिलते हुए कमल की भाँति हमारा हृदय-क्रेन्द्र प्रकट हो उठता है और साधक में दैवी सम्पदा की वृद्धि होने लगती है। दिव्यता की यह झलक साधक को न केवल प्रोत्साहित करती है, अपितु उसमें अध्यात्म-पथ पर अग्रसर होने के लिए अपेक्षित अद्भुत आत्मविश्वास तथा उत्साह भी भर देती है।

इसे बुद्धि का जागरण कहा जाता है। यही गायत्री-मंत्र का सारतत्त्व है।^१

आन्तरिक बल का भण्डार

प्रार्थना आन्तरिक बल तथा ऊर्जा का एक अक्षय स्रोत है। प्रार्थना से व्यक्ति की चेतना का कायाकल्प हो जाता है। वैस्कुलर सर्जरी (नलिका-शल्यचिकित्सा) में अपने महत्वपूर्ण कार्यों के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित डॉ. अलेक्सिस कैरल का दृढ़ मत है कि प्रार्थना के द्वारा व्यक्ति आध्यात्मिक शक्ति के इस स्रोत का दोहन कर सकता है। उन्हीं के शब्दों में, 'प्रार्थना व्यक्ति द्वारा उत्पन्न की जा सकनेवाली ऊर्जा का सर्वाधिक सशक्त रूप है। यह उतनी ही

^१ यहाँ पर मैं अपने पाठकों को स्वामी यतीश्वरानन्द द्वारा लिखित 'ध्यान और आध्यात्मिक जीवन' नामक एक प्रामाणिक ग्रन्थ पढ़ने की सलाह दूँगा। प्रार्थना, जप तथा ध्यान का निष्ठापूर्वक अभ्यास करनेवाले साधकों को इस ग्रन्थ में अतिशय मूल्यवान दिशा-निर्देश प्राप्त होंगे और आध्यात्मिक अभियान के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करने के उपायों की जानकारी भी मिलेगी।

वास्तविक शक्ति है, जितनी कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति । एक चिकित्सक के तौर पर मैंने ऐसे लोगों को देखा है, जो अन्य सभी प्रकार के उपचारों के विफल हो जाने पर प्रार्थना के सौम्य प्रयास द्वारा रोग तथा निराशा से उबर सके हैं । रेडियम की भाँति ही प्रार्थना भी ज्योतिर्मय तथा स्वयंजनित ऊर्जा का एक स्रोत है । ... प्रार्थना करते समय हमारा सम्पर्क ब्रह्माण्ड-विधातृ अनन्त प्रेरक शक्ति से जुड़ जाता है । उस अवस्था में याचना करने पर ही, हमारी मानवीय कमियों की पूर्ति हो जाती है और हम सबल तथा स्वस्थ हो उठते हैं । ... आकुल प्रार्थना के क्षणों में जब हम भगवान को पुकारते हैं, तब हमारे शरीर और आत्मा दोनों का ही कायाकल्प हो जाता है ।’

यदि वैज्ञानिकों ने अपने प्रयासों को प्रार्थना की अनन्त शक्ति के अर्जन तथा उपयोग में लगाया होता, तो इससे मानवजाति को काफी लाभ पहुँचा होता ।

‘मैं’ नहीं, ‘तू’

इस संसार में सज्जनों को बेईमान संसारी लोगों के हाथों दुःख भोगने पड़ते हैं । परन्तु अध्यात्म-जगत या ईश्वरीय राज्य में ये विनम्र तथा सज्जन साधक ही ईश्वरीय कृपा प्राप्त करते हैं । अहंकार, प्रसिद्धि, पद, सम्पदा आदि हमें विनम्र नहीं बनने देते । ये भगवान का विस्मरण करा देते हैं । ‘मैं’, ‘केवल मुझसे ही’, ‘केवल मेरे लिए’ – ऐसे भ्रम हमें उन्मत्त बनाकर संसार-चक्र में धकेल देते हैं । इस अहंकार के कारण ही हमारी आध्यात्मिक उन्नति रुक जाती है । सांसारिक चीजों में लुब्ध व्यक्ति कभी ईश्वर को नहीं पा सकता । क्या यह सूर्योदय देखने की आशा में पश्चिम की ओर चलने के समान नहीं है? श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, ‘जैसे पर्वत की चोटी पर वर्षा का जल नहीं टिकता, वैसे ही अहंकारी लोग भगवत्कृपा नहीं पा सकते ।

अध्यात्म-जगत में अग्रसर होने का अर्थ है - “मैं” के भाव या अहंकार से दूर जाना ।’

प्रार्थना ही अहंकार-नाश के लिए सर्वाधिक सशक्त हथियार है । एक साधक की प्रार्थना रहती है, ‘हे प्रभो ! मेरे अहं का नाश करके स्वयं को प्रकट करो, मेरे हृदय-कमल में निवास करो ।’ यही प्रार्थना की पराकाष्ठा है ।

प्रार्थना की तीव्रता बढ़ने पर क्रमशः ‘मैं’ और ‘मेरा’ के भाव लुप्त होते जाते हैं । मन स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों के स्तर से उठकर ईश्वर में डूब जाता है । तदुपरान्त हम अपने हृदय में भगवत्-सान्निध्य का अनुभव करने लगते हैं । जब हमें अपने अन्तर की गहराइयों में सर्व-शक्तिमान प्रभु की उपस्थिति का सच्चा बोध होने लगता है, तब हम स्वयं को दुर्बल प्राणी कैसे समझ सकते हैं? जब अपने हृदय में ही हम सर्व-शक्तिमान ईश्वर के सान्निध्य की अनुभूति करते हैं, तब हम कैसे इस जगत की किसी भी चीज से डर सकते हैं?

भगवान क्या सचमुच हैं?

किसका ईश्वर? कौन ईश्वर? वह कहाँ हैं? क्या धर्मान्धता, कट्टरता तथा असहिष्णुता स्वयं को ही दण्ड देना नहीं है?

वर्षों पूर्व जब मैंने मिचेल का चाँद पर उतरना पढ़ा था, तो यह जानकर मैं पुलकित हो उठा था कि मिचेल ने चन्द्रमा से पृथ्वी को देखा था और पृथ्वी उन्हें एक गेंद जैसी प्रतीत हुई थी । कैसी अद्भुत बात है ! हमारी आवास यह पृथ्वी करीब १००० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से अपनी धुरी पर घूमती है । इन घूर्णनों के दौरान करोड़ों मानव जन्म लेते हैं और कुछ काल यहाँ निवास करके पुनः अदृश्य हो जाते हैं ।

यह कोई कल्पना-कथा नहीं, अपितु एक बोधगम्य सत्य है और हमारे आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की कृपा से अब कोई भी

इससे इनकार नहीं कर सकता । इसी प्रकार सामान्यतया सूक्ष्म ब्रह्माण्ड कहे जानेवाले पदार्थ के सूक्ष्म अस्तित्व के बारे में भी हमें अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है ।

आधुनिक विज्ञान हमें पदार्थ के सूक्ष्मतर पहलू में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है । विस्तार में न जाकर, पदार्थ के वास्तविक स्वरूप के बारे में एक ही वक्तव्य पर्याप्त होगा - परमाणु एक ऐसा कण है, जिसका व्यास एक मिलीमीटर का करीब १ करोड़वाँ भाग होता है । प्रत्येक परमाणु इलेक्ट्रान, प्रोट्रान व न्यूट्रान नामक उप-परमाणुओं से बना है और यह अदभुत ब्रह्माण्ड मूलभूत सूक्ष्म कणों-रूपी इन ईंटों से बना है ।

नभ-मण्डल के बृहत् तारों की गति, परमाणुओं में सूक्ष्म इलेक्ट्रान की गति और मनुष्यों, पशुओं तथा वनस्पतियों के भौतिक शरीरों की प्रक्रियायों में एक पूर्ण व्यवस्थित क्रम और स्पष्ट सामंजस्य दिखाई देता है ।

पश्चिम के आधुनिक वैज्ञानिकों ने भौतिक साधनों के माध्यम से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अखण्डता प्रदर्शित की है । इससे एक कदम आगे बढ़ें, तो यह सम्पूर्ण जगत की एकता के भाव तथा उस परम आध्यात्मिक तत्त्व की ओर भी संकेत करता है; जिसमें हम रहते, चलते-फिरते और जीवन-धारण करते हैं । विश्व के सामंजस्य का अनुध्यान उस परम सत्ता के सार्वभौम आस्तित्व को प्रकट करता है ।

महान वैज्ञानिक आइंस्टीन इस एकता और सामंजस्य का वर्णन इन शब्दों में करते हैं, 'मेरा धर्म उस असीम सर्वोच्च सत्ता की विनम्र स्तुति में निहित है, जो हमारे दुर्बल मस्तिष्कों द्वारा ग्रहण किए जा सकनेवाले विवरणों के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करता है । उस परम सत्ता के अस्तित्व पर गहन भावनात्मक दृढ़ विश्वास ही मेरा ईश्वर सम्बन्धी विचार है ।'

प्रकृति की क्रियाओं तथा उसके प्रत्येक अंग में जीवन और बुद्धितत्त्व (चेतना) का अनुभव करने में समर्थ होने के लिए महान पवित्रता तथा अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। श्रीरामकृष्ण देव के एक प्रमुख शिष्य स्वामी रामकृष्णानन्द जी कहते हैं - 'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही सर्वज्ञता से परिपूर्ण है।'

उपनिषद् घोषणा करते हैं, 'वे एक ईश्वर सभी प्राणियों में छिपे हैं। वह सर्वव्यापी तथा सभी जीवों की अन्तरात्मा हैं। वे ही सभी कर्मों के प्रेरक हैं और सभी प्राणी उन्हीं में निवास करते हैं। वे साक्षी हैं और प्रकृति के तीनों गुणों से अतीत शुद्ध चैतन्य हैं।'

तेजोबिन्दु उपनिषद् (१.२९) कहता है, 'दृष्टि को बोधमयी बनाकर विश्व को ईश्वरमय देखो।' आकाश तथा जगत में चारों ओर हम जो कुछ देखते हैं, उनका गहन चिन्तन ही 'बोधमयी दृष्टि' है और निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित आन्तरिक चिन्तन सर्वव्यापी परमात्मा को व्यक्त करता है।

'हिमालय, महासागर, नदियाँ तथा सभी दिशाएँ जिसकी महिमा का उद्घोष करती हैं, हम पवित्र उपहार के साथ उन ईश्वर की उपासना करें।' (ऋग्वेद १०.१२१.३) सभी दिशाओं का अर्थ है ऊर्ध्व और चतुर्दिक अर्थात् आकाश और विश्व। इस प्रकार इस श्लोक का निहितार्थ यह है कि प्रकृति सर्वत्र ईश्वर की महिमा का उद्घोष करती है, ताकि हम उन्हें जान सकें।

ऋग्वेद, उपनिषदों और भगवद्गीता आदि हिन्दू धर्मशास्त्रों के ऋषि-मुनियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि से यह अनुभव किया कि इस ब्रह्माण्ड में एक मूलभूत एकता है। वे घोषित करते हैं कि सर्वोच्च आध्यात्मिकता की दृष्टि से समग्र मानवता एक है।

वह मूलभूत तत्त्व (ईश्वर) किसी एक ही अभिव्यक्ति में समाप्त नहीं हो जाता। वह विभिन्न व्यक्तियों के रूप में प्रकट होता है। यह

किसी एक ही रूप में पूर्णतया समाहित नहीं हो जाता। हिन्दुओं में पूर्णता-प्राप्ति के लिए विभिन्न पथों की स्वीकृति और सहिष्णुता के भाव के पीछे इस बहुआयामी अभिव्यक्ति के सिद्धान्त की अनुभूति निहित है।

एक रोचक बात यह है कि धार्मिक एकता लाने में विज्ञान हमारी काफी मदद कर सकता है।

फ्रिट्ज काप्रा के अनुसार, 'ब्रह्माण्ड की मूलभूत एकता आधुनिक भौतिक विज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहस्योद्घाटनों की केन्द्रीय विशेषता रही है।' प्राच्य-विद्या निरन्तर उस परम अखण्ड सत्ता की ओर संकेत करती हैं, जो सभी वस्तुओं के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है और सभी वस्तुएँ जिसका अंश हैं। हिन्दू धर्म में इसे ब्रह्म, बौद्धधर्म में 'धर्मकाय' तथा ताओ धर्म में 'ताओ' कहा जाता है।

विभिन्न धर्मों के बीच संघर्ष का मूल कारण धर्मों के आध्यात्मिक आयाम के बारे में समझ का अभाव है। १८९३ में शिकागो में आयोजित विश्वविख्यात धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ने अपने समापन भाषण में कहा था, 'यदि इस महासभा ने दुनिया के समक्ष कुछ प्रदर्शित किया है तो वह यह है - इसने यह सिद्ध कर दिया है कि साधुता, पवित्रता तथा दयाशीलता किसी सम्प्रदाय-विशेष की बपौती नहीं है और प्रत्येक धर्म में ही अति उन्नत चरित्र के नर-नारियों का जन्म हुआ है। समस्त प्रतिरोधों के बावजूद शीघ्र ही प्रत्येक धर्म की पताका पर लिखा होगा - "संघर्ष नहीं - सहयोग; विनाश नहीं - ग्रहण; मतभेद और कलह नहीं - समन्वय और शान्ति।"'

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विश्व-धर्म-महासभा संसार के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। इसने धर्ममतों के बीच आपसी समझ के आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिसमें हाल के वर्षों में भी

कुछ प्रगति हुई है। इसका उद्देश्य केवल इतना था कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच बेहतर समझ और सहयोग का मार्ग निकाला जाए। एक तरह से यह १९वीं सदी के अन्त में प्रस्तुत भावी शताब्दियों के लिए एक धार्मिक कार्यसूची थी। धर्मों के सामान्य आधार के बारे में हम सभी जानते हैं कि वे सभी विश्वास के समान नमूने प्रकट करते हैं। वे प्रेरित शास्त्रों में विश्वास, संस्थापक के वैशिष्ट्य, ब्रह्माण्ड की नीति-व्यवस्था, मरणोत्तर जीवन आदि पर आधारित हैं। वे सन्तों तथा अतीन्द्रिय अनुभूतियों को महत्व देते हैं। वे सभी, सत्य, पवित्रता, दानशीलता, प्रेम, विनम्रता और अन्य सदगुणों की शिक्षा देते हैं।

सभी धर्मों का दृढ़ मत है कि मनुष्य एक उच्चतर नियति का अधिकारी है, जिसे मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। सभी धर्म यह मानते हैं कि ईश्वर-प्रेम, हृदय की पवित्रता और नैतिक पूर्णता के द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

हाल के वर्षों में तुलनात्मक धर्म के अध्ययन ने एक नया मोड़ ले लिया है। अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि किसी धर्म का समालोचक बनकर नहीं, अपितु विश्वासी बनकर ही उस धर्म का सम्यक् बोध किया जा सकता है। तात्पर्य यह कि धर्म का आन्तरिक परिदर्शन ही उसकी सत्यता का सही आकलन प्रदान कर सकता है। धर्म को समझने का यह मार्ग धर्म का phenomenological (प्रत्यक्षवादी) अध्ययन कहलाता है।

यही भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन तथा उपदेशों द्वारा निर्दिष्ट सभी धर्मों में आपसी सद्भाव की पृष्ठभूमि है। १९वीं सदी के धर्म-समन्वय के इन मसीहा ने हिन्दू धर्म, इसलाम तथा ईसाई धर्म के उपदेशों के सार-तत्त्व की उपलब्धि करने के बाद यह घोषणा की कि

सभी महान धार्मिक परम्पराएँ साधकों को उन्हीं एक ईश्वर तक पहुँचाती हैं। उनका आदर्श वाक्य था, 'जितने मत उतने पथ।' वैदिक धार्मिक परम्परा घोषित करती है - 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' - 'सत्य एक है। ज्ञानी लोग उसका विविध प्रकार से वर्णन करते हैं।' इसी के अनुयायी के रूप में श्रीरामकृष्ण की विविध धर्मों के प्रति उदारता एवं स्वीकृति का भाव होना स्वाभाविक था।

श्रीरामकृष्ण के भाव को समझने के लिए एक बात हमें स्पष्ट रूप से ध्यान में रखनी होगी। उनके लिए धर्म का अर्थ उसके आध्यात्मिक सार-तत्त्व से था। परमेश्वर की खोज तथा उसके सहायक साधन ही धर्म के सार-तत्त्व हैं।

उन्होंने धार्मिक एकता की तुलना एक विशाल सरोवर से की, जिसमें से जल लेने के लिए लोग विभिन्न मार्गों से आते हैं। सरोवर तक पहुँचनेवाला हर व्यक्ति जल प्राप्त करता है। अपने रास्ते को दूसरों से श्रेष्ठ बताकर आपस में झगड़ना व्यर्थ है। इसी प्रकार सच्चिदानन्द-रूपी सरोवर तक पहुँचने के अनेक मार्ग हैं। हर धर्म एक मार्ग है। यदि आप सच्चे तथा निश्छल हृदय से किसी भी मार्ग का अनुसरण करेंगे, तो आखिरकार शाश्वत परमानन्द के जल तक पहुँच जाएँगे।

लोगों के मन में एक भ्रान्तिपूर्ण धारणा है कि हिन्दू धर्म बहु-देववादी है। यह सच नहीं है। विभिन्न देवी-देवता एक ही परमेश्वर की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। जल का कोई अपना रूप नहीं है। पर जमकर बर्फ बन जाने पर यह कोई भी रूप ले सकता है। हम जानते हैं कि बर्फ जल के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। ईश्वर एक सामान्य मानव की तरह मनुष्य नहीं हैं, परन्तु वे हमारे परम आत्मीय बन सकते हैं। वे हमारी इच्छा के अनुरूप कोई भी आकार ग्रहण कर सकते हैं। ईश्वर सर्व-शक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी हैं और वे भक्तों के अन्तरंग विचारों को भी जानने में समर्थ हैं।

जो लोग धर्म के नाम पर संकीर्ण व कट्टर विचारों का प्रचार करते हैं और अन्य धर्म के अनुयायियों द्वारा स्वीकृत ईश्वर तथा उनकी उपासना की विभिन्न धारणाओं के बारे में द्वेष फैलाते हैं, वस्तुतः वे पूर्ण सत्य के विषय में अपने अज्ञान के कारण स्वयं को तथा अपने नासमझ अनुयायियों को हानि ही पहुँचाते हैं। यदि कोई कहे कि मेरी पुस्तक में लिखा है कि 'पृथ्वी चपटी है' और प्रबल आग्रह के साथ उसका प्रचार करे, तो क्या यह सच्चाई से मुँह फेरना नहीं होगा?

हमारा विश्वास है कि जीवन तथा सत्य के विषय में एक सर्वांगीण दृष्टिकोण के आधार पर ही विश्व-शान्ति की समस्या का स्थायी समाधान पाया जा सकता है। धर्म अब भी संघर्ष, घृणा, हिंसा तथा युद्ध का एक प्रमुख स्रोत बना हुआ है।

सभी विश्व-धर्मों के लिए सत्य से उद्भूत इस सार्वभौमिक नैतिक निष्कर्ष तक पहुँच जाना आवश्यक है कि ईश्वर, ब्रह्म, अल्ला, गॉड आदि कहे जानेवाले परम आध्यात्मिक सत्ता में समग्र मानवता एक है। ऐसा एकत्ववादी नैतिक सिद्धान्त ही विश्व में शान्ति एवं सौहार्द की स्थापना में सहायक होगा।



जीने की कला

'जीना सीखो' का द्वितीय भाग

पूर्वी और पाश्चात्य - दोनों जगत् के पाठकों के लिए यह एक अति उत्तम पुस्तक है।

इसकी गहन बोधयुक्त सार्वभौमिक प्रस्तुति और इसके उदात्त विषय-वस्तु के कारण हम अपने सभी पाठकों को इसे पढ़ने की सलाह देते हैं।

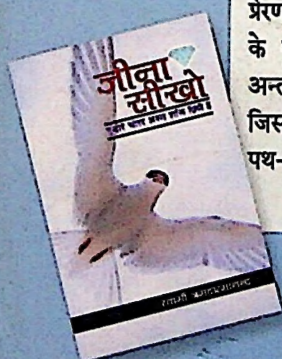
- 'ग्लोबल वेदान्त', अमेरिका
(आंग्ल संस्करण की समीक्षा से)

'जीने की कला' का प्रकाशन सचमुच ही एक अति सुखद समाचार है। यह पुस्तक व्यक्ति के हृदय की संकीर्णता को उन्मुक्त कर देती है।

- 'द हिन्दू', मद्रास
(आंग्ल संस्करण की समीक्षा से)

अत्यन्त पठनीय और वास्तव में रोचक! इस मनमोहक तथा प्रेरणादायी ग्रन्थ में लेखक ने सफल जीवन बिता चुके लोगों के जीवन की रोचक घटनाओं, दृष्टान्तों, उदाहरणों तथा अन्तर्दृष्टियों के साथ एक ऐसा जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है, जिससे युवकों को उत्कृष्टता तथा सफलता की प्राप्ति के लिए पथ-निर्देश तथा उत्प्रेरणा मिलेगी।

- मूल कन्नड संस्करण का एक पाठक



₹ 85

SpiritualLife

STRENGTH IS LIFE

ISBN 81-7505-264-3



www.advaithashrama.org